



THE FREE INDOLOGICAL COLLECTION

WWW.SANSKRITDOCUMENTS.ORG/TFIC

FAIR USE DECLARATION

This book is sourced from another online repository and provided to you at this site under the TFIC collection. It is provided under commonly held Fair Use guidelines for individual educational or research use. We believe that the book is in the public domain and public dissemination was the intent of the original repository. We applaud and support their work wholeheartedly and only provide this version of this book at this site to make it available to even more readers. We believe that cataloging plays a big part in finding valuable books and try to facilitate that, through our TFIC group efforts. In some cases, the original sources are no longer online or are very hard to access, or marked up in or provided in Indian languages, rather than the more widely used English language. TFIC tries to address these needs too. Our intent is to aid all these repositories and digitization projects and is in no way to undercut them. For more information about our mission and our fair use guidelines, please visit our website.

Note that we provide this book and others because, to the best of our knowledge, they are in the public domain, in our jurisdiction. However, before downloading and using it, you must verify that it is legal for you, in your jurisdiction, to access and use this copy of the book. Please do not download this book in error. We may not be held responsible for any copyright or other legal violations. Placing this notice in the front of every book, serves to both alert you, and to relieve us of any responsibility.

If you are the intellectual property owner of this or any other book in our collection, please email us, if you have any objections to how we present or provide this book here, or to our providing this book at all. We shall work with you immediately.

-The TFIC Team.



श्रीमद्देवचन्द्रजी रचित

विहरमान जिन स्तवन - बीशी सार्थ

परमपूज्या श्रीमती प्रवर्तिनी सुवर्णश्रीजी महाराज
साहब की शिष्या जतनश्रीजी महाराज व
विज्ञानश्रीजी महाराज के
उपदेश से

प्रकाशक

सुखसागर सुवरण भगडार

महावीर मण्डल, बीकानेर

वीर संवत्
२४७६

विक्रम संवत्
२००७

सुख संवत्
६५

प्रथमावृत्ति १०००

मूल्य २)

निवेदन

ध्यान रखिये

पैरों तले व अपवित्र स्थानों में डालकर,
थूक लगाकर और अज्ञान वालकों के हाथों
में देकर पुस्तकों की आशातना नहीं करिये ।



इस पुस्तक का पुनः पुनः स्वाध्याय करिये,
स्तवनों को गाइये
व उनके अर्थ पर मनन करिये ।



इसे दूसरों को पढ़ने के लिये दीजिये, पढ़कर
उन्हें सुनाइये । इससे आपको आध्यात्म-ज्ञान व
भक्ति प्रसारित करने का महान् लाभ होगा ।



बीकानेर
एजुकेशनल प्रेस में मुद्रित

स

म

र्प

ण

परमपूज्य परमोपकारी
गुरु महाराज श्री सुखसागरजी
की
पवित्र स्मृति
में
सादर सम्पित

५

आज्ञानुवर्तिनी
विचक्षण श्री

प्रत्यक्ष प्रभावक पुज्य गुरुमहाराज.



5 भेरुदानजी वोथरा के पुत्र सुखलालजी की धर्मपत्नी वेरागन चंचलवाई तरफसे भे
 गाम गोगोलाच (नागोर)
 जन्म सवत १८७६ सरसा दीक्षा सवत १९०६ जयपुर - स्वर्ग सवत १९४० फलोदी

स

म

र्प

ण

परमपूज्य परमोपकारी
गुरु महाराज श्री सुखसागरजी
की

पवित्र स्मृति
में

सा द र स म र्पि त

॥

आज्ञानुवर्तिनी
वि च क्ष ण श्री

अनुक्रमणिका

प्रास्ताविक कुछ	...	१-१८
१. श्री सीमंधर जिन स्तवन बालावबोध	...	१
२. श्री युगमंधर जिन स्तवन	"	१३
३. श्री बाहु जिन स्तवन	"	२८
४. श्री सुबाहु जिन स्तवन	"	४२
५. श्री सुजातस्वामी जिन स्तवन	"	५३
६. श्री स्वयंप्रभ जिन स्तवन	"	६६
७. श्री ऋषभानन जिन स्तवन	"	८३
८. श्री अनन्तवीर्य जिन स्तवन	"	९३
९. श्री सूरप्रभ जिन स्तवन	"	१०५
१०. श्री विशाल जिन स्तवन	"	१२४
११. श्री वज्र धर जिन स्तवन	"	१३४
१२. श्री चन्द्रानन जिन स्तवन	"	१४६
१३. श्री चन्द्रबाहु जिन स्तवन	"	१७०
१४. श्री भुजंग स्वामी जिन स्तवन	"	१७६
१५. श्री ईश्वरदेव जिन स्तवन	"	१८६
१६. श्री नमिप्रभ जिन स्तवन	"	१९८
१७. श्री वीरसेन जिन स्तवन	"	२०६
१८. श्री महाभद्र जिन स्तवन	"	२२२
१९. श्री देवजसा जिन स्तवन	"	२३०
२०. श्री अजितवीर्य जिन स्तवन	"	२३६
२१. कलश	...	२४७

श्रीमद्देवचन्द्रजी रचित अप्रकाशित स्तवन संग्रह

संग्राहक—अगरचन्द नाहटा

१.	ऋषभ स्तवन	२५३
२.	शीतल जिन स्तवन	---	---	२५४
३.	लीमट्टी शान्ति जिन स्थापना स्तवन	२५६
४.	पार्श्वनाथ गीत	--	...	२६०
५.	श्री मौनेकादशी नमस्कार	...	---	२६१
६.	श्री पद्मनाभ जिन स्तवन	२६२
७.	अष्ट रुचि सज्जाय	२६४
८.	पद	२६६
९.	मेरे पित क्युं न आप विचारो	२६७
१०.	चारित्र सुख वर्णन द्वादश दोधक	२६७
११.	हीयाली	२६८
१२.	उदय स्वामित्व पंचाशिका	२६६

प्रास्ताविक कुछ

अन त ज्ञानी दृष्ट भूगोल में असंख्यात द्वीप समुद्रों का वर्णन आता है । उनमें भी मनुष्यों का निवास जबूद्वीप, धातकी खंड, आधा पुष्कर द्वीप ऐसे ढाई द्वीपों में है । ढाई द्वीपों के महाविदेहों की विजयों में बीस विचरते हुए तीर्थंकर भगवान अपना परम पावन धर्म शासन प्रवृत्तिमान कर रहे हैं उन बीस विहरमान भगवानों के स्तवन अध्यात्म रसिक महापण्डित श्रीमद्देवचन्द्रजी महाराज ने अपनी ओजपूर्ण सरस भाषा में गाये हैं । जो इस प्रस्तुत पुस्तक में पाठकों की सेवा में उपस्थित हैं ।

महापण्डित श्रीमद्देवचन्द्रजी महाराज कौन थे ? कब हुए ? कहाँ हुए ? ये प्रश्न सहजिक भाव से पैदा होते हैं । “पुरुष विश्वासे वचन विश्वासः”—इस लोकमान्य सूत्रानुसार उनके प्रति विश्वास पैदा कराने के लिये उन प्रश्नों के उत्तर अध्यात्म-योग निष्ठ प्रभावक आचार्य श्री बुद्धिसागर सूरिजी महाराज ने महापरिश्रम से संपादित अपने—श्रीमद्देवचन्द्र भाग पहले और दूसरे में बड़े विस्तार से दिये हैं । इसी प्रकार का विशिष्ट प्रबन्ध श्रीयुत मणिलाल मोहनलाल पादराकर ने भी “श्रीमद्देवचन्द्र जी जीवन चरित्र” नाम की पुस्तक में किया है । साधारण रूप से जैन समाज का ब्रह्मा २ श्रीमद्देवचन्द्रजी महाराज के नाम से परिचित है ।

राजस्थान के बीकानेर इलाके में ओसवाल लूणिया गोत्र के साह तुलसीदासजी और उनको धर्मशीला धर्मपत्नी श्रीमती धन्नाबाई रहते थे । स० १७४६ में उनके शुभ स्वप्न सुचित पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ । नाम देवचन्द्र रखा गया । उपाध्याय राज सागरजी के पुनीत उपदेश से १७५६ में मां बाप की आज्ञा से श्री देवचन्द्रजी दीक्षित हुए । श्रीजिनचन्द्रसूरिजी से बड़ी दीक्षा प्राप्त हुई । राजविमल नाम रखा पर लोकों में देवचन्द्र नाम ही अधिक प्रसिद्ध हुआ । बिलाडा में आपने सरस्वती मंत्र जाप से सिद्धि प्राप्त की । स्व पर शास्त्रों के विशद अभ्यास से जैन दर्शन के प्रौढ़ विद्वान हुए । स० १७६६ में ध्यान-दीपिका और १७६७ में द्रव्य प्रकाश नाम के अद्भुत ग्रंथों की रचना की ।

माईजी और अमाईजी नाम की सेठ विमलदास की पुत्रियों के प्रबोधार्थ आगमसार नामक ग्रंथ की रचना की । पाटण में पूर्णिमागच्छीय भावप्रभसूर के सदुपदेश से श्रीमाल वंशीय तेजसी जेतसी ने सहस्रकूट जिन बिंब स्थापन किये । श्रीदेवचन्द्रजी ने सहस्रकूट जिन बिंब परिचय पूछने पर सेठ ने अपनी अनभिज्ञता दिखाते हुए ज्ञानविमल सूरिजी से प्रश्न किया उनने भी कहा कि शास्त्रों में तो इसका अवा-पता नहीं है, तब श्रीमान ने सहस्रकूट का शास्त्रीय परिचय कराया । तब सूरिजी बहुत प्रसन्न हुए । दोनों में अद्भुत धर्म-स्नेह का उद्भव हुआ । क्रियोद्धार किया । १७७८ में नागौरी सराय

अहमदाबाद में भगवती सूत्र का व्याख्यान किया । लोगों को प्रभु पूजा में स्थिर किये ।

अहमदाबाद में श्रीशक्तिनाथजी की पेल में सहस्रकूट जिन बिब की प्रतिष्ठा की । १७७६ में खभात में चौमासा किया । सिद्धाचल पर जीर्णोद्धार का कारखाना खुलवाया । प्रतिष्ठित श्रावकों ने ८१ ८२-८३ में श्रीमान के सदुपदेश से चतुर सलावटों से सिद्धाचल पर जीर्णोद्धार करवाया । १७८८ में श्रीमान के गुरुदेव श्री दीपचन्द्रजी पाठक का स्वर्गवास हुआ । अहमदाबाद के सुषा श्रीरत्नचन्द्रभट्टारी की प्रार्थना से स्नेह मिटाया । विरोधी राजा के साथ युद्ध में भंडागीजी ने गुरु के आशीर्वाद से विजय प्राप्त की । धोलका में एक योगी ने श्रीमान से जैनदर्शन पाया । जामनगर में जिन पूजा विरोधियों से विजय पाई । पडधरी के ठाकुर को धर्मानिष्ठ बनाया । राणाबाव के राजा का भगंदर रोग आपके आशीर्वाद से शांत हो गया । भावनगर के महाराजा को आपने सत्संग से धर्मानुरागी बनाया । पालीताना में प्लेग को शान्त किया । लीम्बडी, धांगध्रा और चूहा में प्रभु प्रतिमा की आपने प्रतिष्ठाएं करवाईं ।

श्रीमान देवचन्द्रजी महाराज के शिष्य मनरूपजी एवं न्याय शास्त्र के पाठक पंडित विजयचन्द्रजी थे । मनरूपजी के शिष्य वक्तूजी और रामचन्द्रजी थे । सं० १८१२ में अहमदाबाद में गच्छ नायक आचार्य ने आपकी अद्भुत आत्म शक्ति अनुपम पाण्डित्य-सफल उपदेककर विधि को देखकर बड़ेस मारोह

के साथ आपको वाचक पद प्रदान किया। अहमदाबाद में ही स० १८१२ भादो महीने की अमावस्या के दिन आत्म ध्यान में लीन होते हुए परमेष्ठी स्मरण करते हुए, सूत्र पाठों को सुनते हुए आपका स्वर्गवास हुआ। सघ ने आपका भारी सन्मान किया।

वाचक श्रीदेवचंद्रजी ने अपनी प्रकाण्डप्रतिभा से छोटे मोटे कई ग्रंथ सस्कृत, प्राकृत, गुजराती, हिन्दी आदि अनेक भाषाओं में निर्माण किये, जिनका संग्रह—श्रीमद्देवचंद्र भाग १ और २ में श्रीमान के अनन्य अनुरागी अध्यात्मयोगनिष्ठ प्रभावक आचार्य श्री बुद्धिसागर सुरिजी महाराज ने किया है। अध्यात्म ज्ञान प्रसारक मंडल पादरा से जिनका प्रकाशन हुआ है। उन्हीं ग्रंथ रत्नों में यह “विहरमान जिन वीसी”—अपना विशिष्ट स्थान रखती है। आपके ग्रंथों की अनेक विशिष्टताओं को बताने का यह स्थान नहीं है। केवल प्रस्तुत “बीसी” की ही कुछ खुशियां बताना ठीक मानता हूँ।

श्रीमान ने सीमंवर स्वामी के पहले स्तवन में—आध्यात्मिक साम्यवाद की झांकी दिखाई है—जैसे—

जे परिणामिक धर्म तुम्हारे, तेहवो अमचो धर्म।

श्रद्धा भासन रमण वियोगे, वलग्यो विभाव अधर्म॥

भगवान के समान ही अपना धर्म बताना, यह जैन दर्शन का साम्यवाद है। उस ढंग की श्रद्धा-दर्शन और प्रवृत्ति के अभाव में ही विषमता दीखती है। वह भी नैमित्तिक होने से मिट सकती है—इसीलिये तो श्रीमान ने गाया कि—

शुद्ध निमित्त रमे जब चिद्वन—

कर्त्ता भोक्ता धरनो ॥

×

×

×

×

शुद्ध देव आलंवन करतां—

परि हरियें पर भाव ॥

×

×

×

×

आनम गुण निर्मल नीपजतां—

ध्यान समाधि स्वभावे ।

पूर्णानंद सिद्धता साधौ

देवचद्र पद पावे ॥

विषमता मिटने पर आत्मगुणों में निर्मलता होने से ध्यान समाधि प्राप्त होती है । उसीसे पूर्ण आनन्द की सिद्धि होती है । तभी आत्मा परमात्मा हो जाता है ।

दूसरे श्रीयुगमंधर प्रभु के स्तवन में—कर्त्तृत्व—कारण और कार्य की चर्चा बड़े सुन्दर भावों में निरूपित की गई है । ईश्वर कर्त्तृत्व को न माननेवाले जैन दर्शन की पुण्य पद्धति इन्हीं शब्दों में श्रीमान ने बताई है—

कार्य रुचि कर्त्ता थये रे

कारक सवि पलटाय रे । दयाल० ।

आतम गते आतम रमे रे,

निज घर मंगल थाय रे । दयाल० ।

कर्त्ता—आत्मा मोक्ष कार्य की रुचिवाला होता है, तभी सभी कारक आत्म रूप हो जाते हैं । आत्मा जब आत्मा में

रमण करता है तभी आत्मा में मगल हो जाता है ।

अगर यही बात है तो ईश्वर को क्यों मानना चाहिये ?
इसके जवाब में श्रीमान फरमाते हैं--

त्राण शरण आधार छो रे,

प्रभुजी भव्य--सहाय । दयाल० ।

देवचंद्र पद नीपजे रे,

जिन पद कज सुपसाय रे । दयाल० ।

त्राण—शरण और आधार रूप भगवान को मानकर भव्यात्मा देवचंद्र पद पैदा करते हैं । उपकारी के उपकार को याद करना कृतज्ञता मानी जाती है । जैनदर्शन भगवान को निमित्त रूप से मानने की प्रेरणा करता है । इसीलिये मंदिर और तीर्थों में भगवान की स्थापना की जाती है ।

तीसरे श्रीबाहु तीर्थकर भगवान के स्तवन में जैन दर्शन की परम अहिंसा का स्वरूप श्रीमान ने इस प्रकार गाया है--

द्वय थकी छ्वाय ने,

न हणै जेह लगार प्रभुजी ।

भाव दया परिणाम नो,

एहिज छै आधार प्रभुजी ॥

जैन दर्शन पृथ्वी १ पानी २ आग ३ वायु ४ वनस्पति ५ और चलते फिरते-जस ६ इन छह जीव निकायों को मनसा वाचा कर्मणा न मारने का उपदेश देता है । जब कि दूसरों की अहिंसा केवल मानव प्राणी तक ही सीमित है । किसी भी जीव को किसी भी तरह से न मारना--भाव दया है । भाव दया ही

परमात्म पद का आधार है ।

आज का लुद्र मानव अपने स्वार्थ के खातिर बंदर, हिरण, कुत्ते, मछली आदि को मारना अपना कर्त्तव्य मानने लगा है । तब जैन दर्शन छोड़ो जीवनिकायों की रक्षा करने का उपदेश फरमाता है ।

जैन दर्शन में तीर्थ कर भगवान जब तक जीवित रहते हैं तब तक अरिहंत रूप में अपने पूर्वकृत पुण्य कर्म फलों को भोगते हैं । भव्यात्माओं को धर्म को आराधना में सहायक होते हैं । ऐसे उन परमोपकारी प्रभु के नाम गुणों के स्मरण से मिथ्या दोषों का नाश होता है ।

इससे यह सिद्ध होता है कि अनादि अनंत ऐसा कोई ईश्वर नहीं होता । जैन दर्शन मान्य ईश्वर का स्वरूप सादि अनंत भाव वाला होता है साथ ही ईश्वर को सहायक मात्र माना जाता है कर्त्ता रूप से नहीं । इसीलिये तो श्रीमान ने गाया है कि—

कर्म उदय जिनराज नो,
भविजन धर्म सहाय ।
नामादिक संभारतां,
मिथ्या दोष विलाय ॥

चौथे सुबाहु भगवान के स्तवन मे—भगवान के केवल ज्ञान का स्वरूप, अपनी स्थिति और भावना, साथ ही साधन विधान बताते हुए सीधा रास्ता बताया है जैसे कि—

जिनवर वचन अमृत आदरिये,

तत्त्व रमण अनुसरिये ।

द्रव्य भाव आश्रय परिहरिये ।

देवचंद्र पद वरिये ॥

राग द्वेष को जीतनेवाले को जिन कहते हैं उन जिनवर के वधनों का अनुसरण करना चाहिये । छोड़ने योग्य जानने योग्य और आदरने योग्य तत्त्वों को समझ कर द्रव्य भाव से पाप कारणों को त्याग देना चाहिये । तभी मोक्ष पद प्राप्त होता है । कितना सीधा रास्ता है ।

पांचवें सुजात स्वामी के स्तवन में नयों का विचार प्रौढ़ पाण्डित्य पूर्ण भाषा में बड़े सुन्दर ढंग से किया है ।

अंश नय मार्ग कहाया,

ते विकल्प भाव सुणाया ।

नय चार ते द्रव्य थपाया,

शब्दादिक भाव कहाया ॥

अनंत धर्मात्मक वस्तु की एक अंश की जानकारी एवं स्वरूप व्याख्या को नय कहते हैं । नैगमादिक चार नय द्रव्य पदार्थ को बताते हैं और शब्दादिक तीन नय पर्याय--अवस्था विशेष को बताते हैं ।

इसी स्तवन में अपेक्षा से पदार्थ को देखने की प्रेरणा करते हुए श्रीमान ने गाया है की ।

स्याद्वादी वस्तु कहीजे—

तसु धर्म अनंत लहीजे ।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रोफेसर आइंस्टिन का (रिसंटिविटी) अपेक्षावादी सिद्धान्त क्या नया है ? हजारों वर्ष पहले से ही जैनदर्शन ने प्रत्येक वस्तु को अनन्त धर्मात्मक बताई है और उसे समझने के लिये अपेक्षावाद—स्याद्वाद सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है । स्याद्वाद सायद्वाद या संशयवाद नहीं है । वह निश्चयात्मक रूप से वस्तु स्वरूप का प्रतिपादन करता है ।

छठे श्री स्वयंप्रभ स्वामी तीर्थंकर के गुणानुवाद में श्रीमान् ने जीवकर्म के संबंध को बताते हुए क्रमिक विकास का वर्णन किया है—

उपशम भावे हो मिश्र क्षायिकपणो ।

जे-निज गुण प्राग भाव ।

पूर्णावस्थाने नीपजावतो ।

साधन धर्म स्वभाव ।

प्रवाह रूप से अनादि कर्म संबंध के कारण निज गुणों की पूर्णावस्था का जो प्राक् अभाव था और इसी से ससार अवस्था बनी हुई थी । पर साधन धर्म के स्वभाव से कर्मों का उपशम क्षयोपशम क्षय होने पर क्रमिक विकास की पराकाष्ठा हो जाती है । तभी स सारी अवस्था का प्रध्वंस होकर अभाव हो जाता है । जिसको जैन परिभाषा में सूदि अनंत कहा है ।

सातवें श्री ऋषभाननप्रभु के स्तवन में प्रभु भक्ति में मस्त श्रीमान् ने अपने अंगों की सार्थकता बताते हुए कितने

सुन्दर भाव कहे हैं—

जे प्रसन्न प्रभु सुख ग्रहे—

तेहिज नयन प्रधान जिनवर ।

जिन चरणे जे नामिये,

मस्तक तेह प्रमाण जिनवर ।

अरिहा पद कज अरचिये

सलहीजे ते हृत्थ जिनवर

प्रभु गुण चितन में रमे,

तेहिज मन सुखयत्थ जिनवर ॥ श्री.

भक्त अपने जीवन को प्रभु भक्ति से ही सार्थक मानते हैं ।

भक्ति से भक्त भगवान बन जाता है ।

आठवें श्री अनंतवीर्य भगवान के स्तवन में—जीवशक्ति का स्वरूप बड़े सुन्दर ढंग से बताया है—

यद्यपि जीव सहु सदा,

वीर्य गुण सत्तावत रे ।

पण कर्म आवृत चल तथा,

बाल बाधक भाव लह त रे । मन० २ ।

जो कि सारे संसारी जीव वीर्य-गुण की सत्तावाले हैं, पर कर्मों से घिरे होने से वह वीर्य गुण विकारी, चंचल, बाधा पैदा करनेवाला हो रहा है । भगवान की भक्ति से वह वीर्यगुण विकार मुक्त होता है ।

नवमं श्री शूरप्रभू भगवान के स्तवन में भगवान की शूरता का ध्यान करने सुंदर शब्दों में श्रीमान ने किया है—

शूर जगदीशनी तीक्ष्ण अति शूस्ता,

तेणे चिरकाल नो मोह जीत्यो ।

अनादि काल के मोह को जीतना ही ज्ञानियों की दृष्टि में सच्ची वीरता होती है ।

दशवें श्री विशालप्रभुजी के स्तवन में प्रभु ने जैन दर्शन सम्मत कर्तृत्व भाव का श्रीमान ने सुन्दर निरूपण किया है—

भव अटवी अति गहन की

पारग प्रभुजी सत्यवाह रे ।

शुद्ध मार्ग देशक पणो,

योग क्षेमकर-नाह रे ॥ अरि० ।

संसार रूप मीमाटवी से शुद्ध मार्ग को बताते हुए भगवान् भव्यात्माओं के योगों में कल्याण करनेवाले सार्थवाह स्वामी हैं । जैन दर्शन को भगवान् उपदेश कर्तृत्व मानने में कोई आपत्ति नहीं ।

ग्यारहवें श्री वज्रधर भगवान् के स्तवन में श्रीमान ने अपनी दयनीय दशा का बड़े मार्मिक शब्दों में चित्रण किया है—

आश्रव बंध विभाव—

करू रुचि आपणी ।

भूल्यो मिथ्या वास—

दोष धूँ पर भणी ।

पार कर्मों को कर के पाप संस्कारों के बंधन से अपना स्वरूप भूलकर उल्टे काम में करता हूँ । उल्टे कामों का उल्टा

ही परिणाम होता है । तब इसका दोष मैं दूसरों को देता हूँ ।
आह ! कैसा आत्म प्रकाश है ?

अवगुण ढांकण काज करू जिन मत क्रिया,
न तजूं अवगुण चाल अनादिनी जे प्रिया ।
दृष्टि रागनो पोष ते समकित हूँ गणु,
स्यादवाद नी रीत न देखुं निजपणु ॥

यहाँ तो श्रीमान ने बहुत सीधे सादे शब्दों में अपना
साग दिल खोल दिया है—सम्यक्त्व का लक्षण है—सच्चा सो
मेरा—पर हमारी दशा इसके विपरीत हो रही है—मेरा सो
सच्चा—। जीवन निरूपण में स्याद्वाद से—सबकी अपेक्षा
समझने की शक्ति पैदा हो तभी परमपद का अनुगमन होता है ।

बारहवें श्रीचद्राननप्रभु के स्तवन में समाज की
वर्त्तमान दशा का चित्रण कितना स्वाभाविक किया है—

द्रव्य क्रिया रुचि जीवडा,

भाव क्रिया रुचि हीन ।

उपदेशक परम तेहवा,

शु करे जीव नवीन ॥ चद्र० । ३ ॥

प्रायः जीव भाव क्रिया से हीन दिखावटी क्रिया की
रुचिवाले हैं । उपदेशक भी उसी ढंग के हैं इस हालत में
जीव क्या नवीनता पैदा कर सकता है ।

इसी स्तवन में गुरु और धर्म की वर्त्तमान विडंबना
दिखाते हुए वाडाबधी के लिये कुछ नाराजगी भी- प्रदर्शित
की है—

गच्छ कदाग्रह साचवे
 माने धर्म प्रसिद्ध ।
 आत्म गुण अकषायता
 धर्म न जाणै शुद्ध ॥ चद्रा ॥

तेरहवें चन्द्रबाहु भगवान के स्तवन में श्रीमान् ने भगवान जब कि वीतराग हैं, भक्त और विरोधी पर समान भाव वाले हैं, तो उनकी पूजा वंदना से क्या लाभ ? इस प्रश्न का सुन्दर जवाब दिया है—

परमेश्वर आलबना,
 राच्या जेह जीव ।
 निर्मल साध्यनी साधना,
 साधे तेह सदीव ॥ चंद्र० ॥

वीतराग परमेश्वर की पूजा, वंदना भक्ति के आलबन को जो जीव स्वीकारते हैं वे कर्ममल रहित मोक्ष साध्य की साधना साधते हैं ।

चौदहवें श्री भुजग स्वामी भगवान के स्तवन में श्रीमान् आत्म द्रव्य के सामान्य विशेष गुण-पर्यायों की विवेचना करते हुए जड़ चेतन का सुन्दर विवेक कराया है—

जड द्रव्य चतुष्के हो
 कर्ता भाव नहीं ।
 सर्व प्रदेश हो के,
 वृत्ति विभिन्न कही ॥ २ ॥

चेतन द्रव्यने हो के,
 सकल प्रदेश मिले ।
 गुण वर्त्तना घर्त्ते हो के
 वस्तुने सहज घले ॥ ३ ॥

धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय आकाशास्तिकाय और
 पुद्गलास्तिकाय ये चार जड़ द्रव्य हैं। इन चारों जड़ द्रव्यों में
 कर्त्तृत्व भाव नहीं है । जड़ द्रव्यों के प्रत्येक प्रदेश में
 जुदी २ वृत्तियां हैं । पर चेतन द्रव्य में सारे प्रदेशों में
 एक वृत्ति की ही वर्त्तना होती है । इसमें कारण केवल
 वस्तु का अपना धर्म ही है । वस्तु स्वरूप समझाने की कितनी
 सुन्दर सारणी है ।

पन्द्रहवें श्रीईश्वर स्वामी तीर्थंकर के स्तवन में श्रीमान् ने
 भगवान् को अनंत शक्तिमान् बताते हुए जैनतंत्रों के मान्य
 सर्वशक्तिमत्त्व विशेषण को अमान्य किया है—

कर्त्ता भोक्ता हो भाव
 कारक ग्राहक हो ज्ञान चारित्रता ।
 गुण पर्याय अनंत,
 पाम्या तुमचा हो पूर्णता ॥

भगवान् के अपने गुण और उनकी अवस्थाएं अनंत
 पूर्ण होती हैं । संसार के सब पदार्थों की शान्ति का उनमें
 अभाव होता है । सर्वशक्तिमत्ता के रहते संसार में दुःख
 संताप आदि बने रहते हैं तो दो बातें सिद्ध होती हैं ।

पहली बात यातो विशेषण गलत है, या ऐसा कोई भगवान नहीं है । दूसरी बात अगर है तो वह निर्दयी या कंजूस है जिससे कि सर्वशक्ति के रहते शक्ति का सदुपयोग नहीं करता ।

सोलहवें श्री नमिप्रभु स्वामी के स्तवन में श्रीमान् ने नवतत्त्वों का विवेचन-कर्मवाद का स्वरूप और परमात्मा पद की विशेषता बड़े सुन्दर ढंग से व्यक्त की है ।

सतरहवें श्री वीरसेन भगवान के स्तवन में श्रीमान् ने ध्याता ध्यान और ध्येय की विशिष्टता बताने में कमाल कर दिया है ।

अठारहवें श्री महाभद्र भगवान् के स्तवन में भगवान के आध्यात्मिक साम्राज्य का वर्णन रूपकों में किया है । जिसमें क्षात्रिक अनंत वीर्य शक्ति अव्याबाध-समाधि कोश-स्वजाना, गुण संपत्ति से हरे भरे असंख्यात प्रदेश, चारित्र्य रूप किला, क्षमादिक धर्म-गुणों का सैन्यबल, आचाब उपाध्याय, साधु आवक आदि अधिकारी, सम्यग्दृष्टि जीवरूप प्रजा को बताने में श्रीमान् ने अपना ललित-कौशल व्यक्त किया है ।

उन्नीसवें श्री देवजसा भगवान के स्तवन में प्रभु दर्शन की लालसा, प्रभु के प्रति अनन्य प्रेमानुराग, व्यक्त करते हुए अपनी दशा का विचार और सम्यग्दृष्टि देवताओं से प्रार्थना बड़े मार्मिक भावों में की है—जैसे—

होवत जो तनु पांखड़ी

आवत नाथ हजूर लाल रे ।

जो होती चित्त आंखड़ी

देखत नित्य प्रभु नूर लाल रे ।

अपने स्नेही से मिलने के लिये शरीर में पाखों की मांगनी तो दुनियां करती है पर चित्त में आंखों की मांगनी करना श्रीमान् की अनुपम सुझ का ही परिणाम है ।

शासन भक्त जे सुरवरा,

विनवूँ शीष नमाय लाल रे ।

कृपा करो मुझ उपरे,

तो जिन वदन थाय लाल रे ।

बीसवें श्री अजितवीर्य भगवान के स्तवन में श्रीमान् ने अमृत क्रियानुष्ठान बताते हुए भव्यात्माओं को अमृतत्व के दर्शन कराये हैं—

जिन गुण अमृतपान थी रे मन० ।

अमृत क्रिया सुपसाय भवि० ।

अमृत क्रिया अनुष्ठान थी रे मन० ।

आत्म अमृत थाय रे भवि० ।

भगवान् के गुण अमृत पान से अमृत क्रिया को करके आत्मा अमृत हो जाता है । कितना सीधा रास्ता है ।

श्री अरिहंत भक्ति की अपूर्वता दिखाते हुए श्रीमान् ने कितना ठीक कहा है—

नाथ भक्ति रस भाव थी रे मन० ।

तृण जाणुं पर देव रे भवि० ।

चितामणि सुरतरु थकी रे मन० ।

अधिकी अरिहंत सेव रे । भवि० ॥ ६

मायावी देवों को कुछ न मानते हुए अरिहंत की सेवा को चितामणि और कल्पवृक्ष से भी बढ़ कर मानी है । ऐसा करके श्रीमान् ने अपने अनुपम विवेक को व्यक्त किया है ।

इस प्रकार यह “विहरमान जिन स्तवन वीसी” एक आध्यात्मिक पुरुष के अनुपम आध्यात्मिक भावों से संपन्न जैन दर्शन की विशिष्टता को दिखाती है ।

इसकी रचना श्री सिद्धाचल तीर्थाधिराज पर चतुर्मास करते हुए श्रीमान् देवचंद्रजी महाराज ने की है । आपकी गुरु परंपरा आपने इसी बीसी के अंतिम पद में इस प्रकार दी है ।

खरतर गच्छ जिनचंद सूरिवर,

पुण्य प्रधान मुण्डो ।

सुमतिसागर साधुरंग सुवाचक

पीधो श्रुत मकरदो ॥ जिन० ॥

राज सार पाठक उपकारी

ज्ञान धर्म दिण्डो ।

दीपचंद्र सह्रू गुणवतः

पाठछ धीर गयंदो ॥ जिन० ॥

देवचंद्र गणि आतम हेते

गाया बीस जिगांदो

×

×

×

इस बीसी के भाषों को समझाने के लिये दाहोद के रहनेवाले श्रावक पंडित मनमुखलालजी के शिष्य श्री सतोष चंदजी ने गुजराती अनुवाद किया है जो साथ ही छपा है । अनुवाद भी बड़े सुन्दर ढंग से किया गया है ।

इस बीसी को पढ़ने पर अध्यात्म रुत, जैन दर्शनानुरागी लोगों को भारी बोध लाभ प्राप्त होगा । श्रीमद्देवचन्द्रजी महाराज के साहित्य का विशिष्ट प्रकाशन अध्यात्म प्रसारक मंडल पदरा ने किया है । कुछ अपशिष्ट कृतियापशिष्ट रूप में इस बीसी के पृष्ठ भाग में अश्रित है । इस पुस्तक का प्रकाशन करके भी प्रकाशकों ने एक प्रकार से दर्शन की ही सेवा की है । इसी प्रकार दर्शन सेवा का लाभ हमारा समाज को मिलता रहे यही एक अभिलाषा रखता हुआ--

उपाध्याय कवीन्द्रसागर

बीकानेर (राजस्थान)

॥ उँ नमः सिद्धेभ्यः ॥

॥ अथ श्री महोपाध्याय देवचंद्रजी विर-
चित विरहमान जिन स्तवनानि बालावबोध
सहित ॥

॥ दोहरा ॥

जयति ज्योति शुद्धात्मनी, करति परम
उद्योत; दूर करे सहु विघ्नभय, करे,
अखिल सद्बोध. (१)

दुःखहर सुखकर सद्गुरु, “श्री मनसुख”
मति पूर;
स्वपर समय ज्ञाता सदा, मम मति
करे सनूर. (२)

स्याद्वाद जिन वचनने वंडुं धरि सन्मान
हृदय वदन राखुं सदा, सहज लहुं
शुभ ध्यान. (३)
देवचंद्र मुनिवर रचित, स्तवन वीश
अभिराम;

विरहमाम जिनवर तणां, अति गंभिर
गुणधाम.

(४)

पूर्ण अर्थ में नबि लह्यो, पण निजमति
अनुमान;

अथ लखुं हुं एहनो, हृदय धरि सन्मान. (५)

द्रव्यानुयोग दूरे करे, करम भरसनो खेल;
सुमति सखि आवी मले, लहे सुगुण
रंगरेल.

(६)

शिबमगमां पग ते धरे, करे सुतत्त्व
विचार;

शिव संपति शाश्वत लहे, तरे सहज
संसार.

(७)

ध्यावे ते पावे सदा, परम महोदय सार;
तिणे धरि धिर अप्रमत्तता, शिव साधो
जयकार.

(८)

प्रथम श्री सीमंधरजिन स्तवनं ॥ सिद्धचक्रपद
वंदो ॥ ए देशी ॥

॥ श्री सामंधर जिनवर स्वामी, वीनतणी
अवधारो ॥ शुद्ध धर्म प्रगटयो जे तुमचे,

प्रगटो तेह अम्हारो रे स्वामी, विनविंये
मन रंगे ॥१॥

अर्थ:-सहज अनंत सुख निधान शुद्धात्म
परिणति, तेनो घात करनार मिथ्यात अज्ञान अने
कषाय रूप अनादिकालना महान् शत्रुओने जेणे
सम्यकपराक्रम वडे जीत्या छे ते “जिन” मां वर
अर्थात् प्रधान-शिरोमणि तथा शारीरिक अने मान-
सिक अनंत असह्य दुःखना हेतुभूत आ भयानक
ससार समुद्रमां परिभ्रमण करी दुःखी यता दीन
जीवोनुं परम करुणाभाव वडे रक्षण करनार तथा
अन्य जीवोने पण अहिंसानो उपदेश आपी तेओ
पासे पण रक्षण करावनार तथा अबाध्य सिद्धांत
वडे संमोचीन् मोक्षमार्गनो उपदेश करी आत्मिक
सहज स्वतंत्र परमानंदना दातार होवाथी “स्वामी”
तथा अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख अने
अनंतवीर्यरूप आत्म लक्ष्मीना मालीक, देहातीत
आत्मसत्ताभूमिमां निरंतर विरहमान हे श्री सी-
मंघर देव ! आपने समर्थ जाणी आप प्रति अत्यंत
उलसित चित्ते नम्रभावे विनंती करुंछु के सरस

સંવર જલના, પ્રવાહ વડે જ્ઞાનાવરણાદિ કર્મ રૂપ મલ ધોવાઈ જવાથી સ્ફટિક મણિ સમાન અત્યંત શુદ્ધ કેવલજ્ઞાન દર્શનાત્મક જેમ આપનો સ્વધર્મ સર્વથા પ્રગટ-વ્યક્ત થયો છે, “તેમજ અમારો પણ સત્તાગતે રહેલો (જ્ઞાનાવરણાદિ કર્મ વડે લિપ્ત થયેલો) લોકાલોક પ્રકાશક અનંત સુખનિદાન આત્મધર્મ સંપૂર્ણ રીતે પ્રગટ થાઓ” એ ઉક્ત વિનંતી પ્રાર્થના હે ભગવંત ! અમો દીન ઉપર કરુણાદ્રષ્ટી કરી અવધારો-ચિત્તમાં ધારો ॥૧॥

જે પરિણામીક ધર્મ તુમારો, તેહવો અમચો ધર્મ ॥ શ્રદ્ધા ભાસન રમણ વિયોગે, વલગ્યો વિભાવ અધર્મરે ॥ સ્વામી૦ ॥૨॥

અર્થ:-સર્વે દ્રવ્ય “ઉત્પાદ ઠયય ધ્રોવ્ય યુક્તં સત્” લક્ષણવંત હોવાથી પ્રતિ સમયે પરમભાવ અનુયાયી નવા નવા પર્યાયે પરિણમે છે અર્થાત્ વર્તમાન પર્યાય તીરોમૃત થાય છે અને નૂતન પર્યાયનો આવીર્ભાવ થાય છે અને દ્રવ્ય ધ્રુવ રહે છે. તેથી આપનો આત્મ દ્રવ્ય, જ્ઞાન દર્શન ચારિત્રાદિ અનંત શુદ્ધ પર્યાય રૂપ નિરંતર પરિણમે છે-સહજ

પરમાનંદના અનુભવમાં નિમગ્નપણે વર્તે છે. તેમજ અમારો આત્મ દ્રવ્ય પણ કર્મોપાધિ નિરપેક્ષ શુદ્ધ દ્રવ્યાર્થિક નયે (શુદ્ધ સંગ્રહ નયે) આપના સદૃશ સત્ત વંત છે. “જારિસ સિદ્ધ સહાવો તારિસં ભાવો હુ સઠ્ઠ જીવાણ” તથાપિ અનાદિથી કનકોપલ ન્યાયે અશુદ્ધ હોવાથી શુદ્ધ પરિણતિની શ્રદ્ધા (પ્રતીતી), આસન (વિજ્ઞાન), રમણ-આચરણ સ્થિરતાનાં વિયોગથી મિથ્યાદર્શન, મિથ્યાજ્ઞાન, મિથ્યાચારિત્ર રૂપ અધર્મે પરિણમે છે. અર્થાત્ આત્માથી પરવસ્તુ જે પુદ્ગલ દ્રવ્યથી બનેલા વિલક્ષણ ધર્મવંત શરીરમાં, આત્મપણાની શ્રદ્ધા કરે છે. તેનેજ આત્મ રૂપ જાણે છે તેથી તે પૌદ્ગલીક ભાવસ પોતાના આત્મ પરિણામને સ્થિત કરે છે—તહીન કરે છે એટલે પુદ્ગલ દ્રવ્યમાં હૃષ્ટાનિષ્ટ કલ્પના કરી અનિષ્ટને દૂર કરવામાં અને હૃષ્ટને પ્રાપ્ત કરવામાં તથા સ્થિર રાખવામાં પોતાની આત્મ પરિણતિને નિરંતર રોકી રાખે છે ॥૨॥

વસ્તુ સ્વભાવ સ્વજાતિ તેહનો, મૂલ અભાવ ન થાય । પર વિભાવ અનુગત પરિણતિથી,

कर्म ते अवरायरे स्वामी ॥ वि० ॥३॥

अर्थः—द्रव्य, अस्तित्व नास्तित्व स्वभाववन्त होवाची अन्य द्रव्यनो परिणाम तेमां कदापि काले प्रवेश करी शके नहीं अने अस्तित्पणे रहेला जे अनंत अन्वय गुणो तेमांथी कोइनो पण कोई पण काले अभाव थाय नहीं कारण के द्रव्य मात्र द्रव्या-र्थिक नये नित्य छे अने “तदभावाव्ययं नित्यमं” एम नित्यनी व्याख्या श्री तत्त्वार्थ सूत्रमां प्रति-पादन करेल छे तथा वली “अणोणं पार्वसंता दिंता ओगास मण मणस्स । मेलंताविय णिच्चं, सग सग भावं ण विजहंति” ए न्याय अनुसार आत्मामां रहेला ज्ञान दर्शन चारित्रा-दिनो समूल अभाव थवानो बिलकुल असंभव छे तथा वली पंचास्ति द्रव्य मात्र उर्धता तथा तिर्यग-प्रचयवन्त होवाची पण तेमज सिद्ध थाय छे. परंतु अनादि अज्ञान वशे आत्म परिणतिने परकर्तृत्व, परभोक्तृत्व, परग्राहकत्व, परव्यापकत्व, पररमणता, परआधाराधेयता आदि परानुयायी पणे प्रवर्त्ताव-

થી શુદ્ધાત્મ પરિણતિ જ્ઞાનાવરણાદિ દુષ્ટ અષ્ટ
કર્મવ અવરાય છે—વ્યાધાત પામે છે એમ શુદ્ધ
પરિણતિનો વિયોગ રહે છે ॥૩॥

જે વિભાવ તે પણ નૈમિત્તિક, સંતતિ ભાવ
અનાદિ । પરનિમિત્તતે વિષય સંગાદિક, તે
સંયોગે સાદિરે સ્વામી ॥ વિ૦ ॥૪॥

અર્થ—મનોજ્ઞ અમનોજ્ઞ પુદ્ગલીક વિષયમાં
દૃષ્ટાનિષ્ટ કલ્પના કરવાથી, ધન ધાન્યાદિ સચિત્ત
અચિત્ત મિશ્ર પરિગ્રહમાં મમત્વ બુદ્ધિ ગ્રહણબુદ્ધિ
કરવાથી આત્મા રાગ દ્વેષ રૂપ વિભાવે પરિણમે છે
તેથી તે વિભાવ નૈમિત્તિક છે તથા સાદિ સાંત છે
તથાપિ પ્રવાહે સંતતિ અનાદિની છે. જેમ આપણે
વર્તમાન સમયે એક પુરુષને જોઈએ છીએ તે પુરુષ
તેના પિતાબહે ઉત્પન્ન થયેલ છે તેથી તે આદિ
સહિત છે અને તેનો નાશ પણ છે તેથી તે પુરુષ
સાદિસાંત ભાંગે છે પરન્તુ તે પુરુષ તેના પિતાથી
ઉત્પન્ન થયો છે તેમ તેનો પિતા પણ બલી તેના
પિતાથી ઉત્પન્ન થયો છે એમ તેનો વંશ અનાદિ
સિદ્ધ છે ॥૪॥

अशुद्ध निमित्ते ए संसरता, अत्ता कत्ता
परनो ॥ शुद्ध निमित्त मे जव चिदघन,
कर्त्ता भोक्ता घरनो रे स्वामी ॥ वि० ॥५॥

अर्थ:-ज्ञानावरणादि कर्म उदय रूप अशुद्ध
निमित्त पामी अज्ञान मिथ्यात कषाय रूप अशुद्ध
परिणामे परिणामी भव समुद्रमां संसरण-परिभ्रमण
कर्त्ता आत्मा परद्रव्यादिकना कर्त्तापणानुं ममत्व,
अभिमान करेछे अर्थात् में अमुक जीवने मारुन्यो,
अमुकने उगारुन्यो, अमुकने सुखी करुन्यो, अमुकने
दुःखी करुन्यो ने अमुक राखुन्यो, अमुकने चलाव्यो
तथा घटपटादिक में बनाव्या अथवा घर हाटादिकनो
में नाश करुन्यो, अमुक इष्ट पदार्थोनो में लाभ
मेलव्यो, तेअने में माहरा भोगमां लीधा. तेऊने
में राख्या, दूर जवा नहि दीधा, अमुक वस्तु में
शुभ मनोज्ञ करी, अमुक वस्तु में अशुभ अमनोज्ञ
करी. एम हुं करुं हुं, भविष्यतमां एम करीश ए
आदि पुद्गल रूप त्रण योगनी, क्रियामां ममत्व
करे छे एम अज्ञान वशे पर द्रव्यादिकनो कर्त्ता बनी
पुनः ज्ञानावरणादि नष्टां कर्म बांधे छे अने वली ते

બાંધેલા કર્મના ઉદય કાલે પણ ઉપર પ્રમાણે વર્તી
પુનઃ જ્ઞાનાવરણાદિ કર્મ બાંધે છે. એમ પરના કર્તા-
પણાનું મમત્વ કરી નિરંતર સાત આઠ કર્મ બાંધતો
આ સંસાર સમુદ્રમાં પરિભ્રમણ કરે છે અને જેન્ય
જરા મરણ તથા રોગ શોક ભય આદિ અનેક
દુઃસહ દુઃખનો અમાપ ભાર પોતાના શિરઊપર
ઉપાડી લે છે.

પણ ડ્યારે સમ્યક્જ્ઞાન સમ્યક્દર્શન સમ્યક્-
ચારિત્ર રૂપ શુદ્ધ નિમિત્તમાં રમણ કરે અર્થાત્ તેમાં
તલ્લીન થાય, પોતાની આત્મ પરિણતિને તેમાં સ્થિત
કરે, પર દ્રવ્યાદિથી ઉદાસિન્ન વૃત્તિ ધારણ કરે ત્યારે
પોતાનાજ સ્વભાવનો કર્તા ભોક્તાદિ થાય, નિર્મલ
પ્રશમરતિનો વિલાસ પામે અને રાગ સ્નેહથી રહિત
વર્તવાથી કર્મ રૂપ રજ તેને સ્પર્શ કરવા પામે નહિ
તથા પૂર્વે બાંધેલા સંચિત કર્મનો ક્ષય નિર્જરા
થાય ॥૬॥

જેહના ધર્મ અનંતા પ્રગટયા, જે નિજ
પરિણતિ વારિયા ॥ પરમાત્મ જિન દેવ અમો-
હી, જ્ઞાનાદિક ગુણ દરિયારે સ્વામી ॥૬॥

અર્થ:-આત્માનો પરમભાવ જે જ્ઞાન, તદનુ-
ચાવી દર્શન, ચારિત્ર, તપ, વીર્ય, કર્તૃતા, ભોક્તૃતા,
આહકતા, વ્યાપકતા, રક્ષણતા, રમણતા, આ-
ધારાધેયતા વિગેરે અનંત સ્વધર્મો જે અનાદિકાલથી
કર્મમલબદે લિપ્ત થયેલા હતા-બાધક ભાવે પરિણ-
મતા હતા, તે શુક્લધ્યાનની તિક્ષ્ણ આંધ્ર ઘડે
કર્મમલ ભસ્મ થઈ જવાથી સંપૂર્ણ પ્રગટ થયા અર્થાત્
નિરાબાધ—સ્વતંત્ર પણે પાંતપોતાના કાર્યભાવે
પરિણમવા લાગ્યા એટલે શુદ્ધ પરિણતિ રૂપ અનુ-
પમ લક્ષ્મીને વરયા-તેના સ્વામી થયા. તેજ
પરમાત્મ જિનેશ્વર દેવ, ક્રોધ માન માયા લોભ આદિ
બોન હીય કર્મની અઠાવીશ પ્રકૃતિથી રહિત તથા
જ્ઞાનાદિક ગુણના દરિયા અર્થાત્ જ્ઞાનાદિ ગુણના
અખૂટ નિધાન છે. એટલે જેમ દરિયામાંથી જલ
ઘૂટે નહિ તેમ તેમનામાંથી કોઈ પળ કાલે જ્ઞાનાદિ
ગુણો-પર્યાયો ઘૂટવાના-ક્ષીણ થવાના નથી, અનંત-
કાલ સુધી એક સરખી રીતે પરિણમ્યાંજ કરશે ॥૬॥

અવલંબન ઉપદેશક રીતે, શ્રી સામંધર
દેવ । મજીયે શુદ્ધ નિમિત્ત અનોપમ, તજીયે

भव भय देवरे स्वामी ॥ वि० ॥७॥

अर्थ-श्री सीमंघर देवमां साध्य पद पूर्ण पणे प्रगट होवाथी तेज पुष्ट-अनुपम निमित्त हेतु छे (साध्य साध्य धर्म जेमांहे होवे रे ते निमित्त अति पुष्ट, तथा च-पुष्ट हेतु जिनेंद्रोय, माक्ष सद्भाव साधने) तथा सर्वज्ञ अने वीतराग होवाथी आसमोक्षमार्गना साक्षा उपदेशक तथा सर्व आत्मरिद्धि संपूर्ण पणे प्राप्त होवाथी परम आधार भव समुद्रमां वृद्धता भव्य प्राणीयोने जहाज समान, भवाटवीमां सथ्यवाह समान छे. न्याय पूर्वक एम सिद्ध होवाथी तेउनी भक्ति करीये अर्थात् तेमनी आज्ञा आपणा शिर उपर चढावीए सन्मानीये. कह्यु छे के “आणाकारी भक्तो, आणा छेइऊ अभक्ताति” माटे तेमनी आणा प्रमाणे वर्त्तीए. मिथ्यात, अज्ञान, कषाय, प्रमाद, अविरति रूप भयंकर भव भ्रमणनी देवनो त्याग-परिहार करीये ॥ ७ ॥

शुद्ध देव अवलंबन करतां, परिहरीये

પરભાવ । આતમ ધર્મ રમણ અનુભવતાં,
પ્રગટે આતમ ભાવે સ્વામી૦ ॥૮॥

અર્થ-જે અજ્ઞાન કષાય વિષય આદિ દૂષણોથી
ભરપૂર છે અર્થાત્ જે સર્વે દ્રવ્યના ત્રિકાલવર્તી
પર્યાયોને હસ્તામલકવત્ પ્રત્યક્ષ પળે જાણી શકતા
નથી, પોતાના આત્મ દ્રવ્યને પણ સર્વ નયે પ્રત્યક્ષ
પળે જાણતા નથી તથા તેથી પોતાની આત્મ રિદ્ધિ
થી પરાંગમુક્ત હોવાથી નિરંતર જે વિષય કષાયને
આધિન વર્તે છે. ચાહ દાહમાં પ્રજ્વલીત થઈ રહ્યા
છે, ભવ સમુદ્રમાં બૂડેલ છે તેમાં દેવપણું કેમ મનાય
પણ જે અજ્ઞાન આદિ સમરત અધર્મ રૂપ દૂષણોથી
સર્વે નયે મુક્ત હોવાથી પરમ નિષ્કલંક શુદ્ધ દેવ છે.
તે શ્રી સીમંધર સ્વામીનું શરણ ગ્રહણ કરતાં પર-
દ્રવ્યની મમતા, ગ્રાહકતા, રમણતા આદિ સમસ્ત
પરભાવનો પરિહાર-ત્યાગ થાય અને જ્ઞાન દર્શન
ચારિત્ર રૂપ શુદ્ધાત્મ ભાવમાં રમણ કરતાં-તેમાં
તલ્લીન થતાં-તૃપ્ત થતાં-સંતુષ્ટ થતાં-તેનો આસ્વા-
દન અનુભવ લેતાં જ્ઞાનાદિ આત્મ ધર્મ, કમે લેપથી
રહિત-શુદ્ધ પ્રગટ થાય ॥ ૮ ॥

आत्म गुण निरमल नीपजतां, ध्यान
समाधि स्वभावे ॥ पूर्णानंद सिद्धता साधी,
देवचंद्र पद पावेरे स्वामी० ॥ ९ ॥

अर्थ-शुद्ध साध्य सन्मुख लक्ष राखी (यस्मात्
क्रिया प्रति फलन्ति न भाव शुन्या) धमे
शुक्लध्याननुं सेवन करतां तज्जन्य समाधिमां लीन
यतां आत्म गुण निर्मल अर्थात् मल रहित परम-
पवित्र थाय. एम पूर्णानंदमय सिद्ध पद साधी
देवमां चंद्रमा समान अर्थात् देवाधिदेवपदने प्राप्त
थइए ॥ ९ ॥

॥अथ द्वितीय श्री युगमंधर जिन स्तवन ॥
नारायणी देशी ॥

श्री युगमंधर विनवुरे, विनतडी अवधाररे
दयालराय ॥ ए पर परिणति रंगथारे, मुजने
नाथ उगाररे ॥ द० श्री० ॥१॥

अर्थ-प्राणातिपात विरमण, मृषावाद विरमण.

અદત્તાદાન વિરમણ, મૈથુન વિરમણ તથા પરિગ્રહ સંગ્રહ વિરમણ રૂપ પંચમહાવ્રત તથા ક્ષાંતિ, માર્દવ, આર્યવ, મુંત્તિ, તપ, સંયમ, શૌચ, સત્ય, અર્કિંચન તથા બ્રહ્મચર્ય આદિ સર્વે ધર્મોમાં અનુવૃત્તિ ધરાવનાર અહિંસા-દયા ધર્મ છે. જેમાં સર્વે ધર્મનો સમાવેશ થઈ જાય છે. ઉક્તંચ-સઘ્વાઝંબિ નડુંતં, જહ સાયરંમિ નિવડંતિ । તહ ભગ, વર્ડ અહિંસિં, સઘ્વે ધમ્મા સમિહ્લન્તિ ॥ તથા જેને સર્વ મતાવલંબીઝં સ્વિકારે છે-સન્માને છે “અહિંસા પરમો ધર્મ, હિંસા સર્વત્ર ગર્હિતા” પરન્તુ જૈન શિવાય અન્ય મતાવલંબીઝં અહિંસા-દયામાં વર્તી શકતા નથી કારણ કે તેઝં હિંસ્ય હિંસા તથા હિંસાના કારણોને યથાર્થ સંપૂર્ણ ઇલાખતાં નથી.

સર્વજ્ઞ તીર્થંકર દેવ દ્રવ્યહિંસા તથા ભાવહિંસા એમ હિંસાનાં બે પ્રકાર પ્રરૂપે છે-૧૫થીકાય, અપકાય, તેજસ્કાય, વાયુકાય અને વનસ્પતિકાય એમ પંચ સ્થાવરકાયિક એકેંદ્રિ જીવો તથા ચેંદ્રિય આદિ અસ જીવોનાં પાંચ ઇંદ્રિયો, મનોબલ, વચનબલ, કાયબલ,

શ્વાસોશ્વાસ તથા આયુપ્રાણ એ દશ દ્રવ્યપ્રાણને
 મારવું, કાપવું, છેદવું, દુઃખવવું તથા તેનો બિયોગ
 કરવો તે દ્રવ્યહિંસા છે, પોતાના દ્રવ્યપ્રાણની હિંસા
 કરવી તે સ્વદ્રવ્યહિંસા અને અન્ય જીવના દ્રવ્ય-
 પ્રાણની હિંસા કરવી તે પરદ્રવ્યહિંસા છે તથા તે
 કાયમાં મમત્ત્વ કરી રહેલા જીવોના જ્ઞાન, દર્શન,
 ચારિત્ર, તપ, વીર્ઘ ઉપયોગ વિગેરે ભાવપ્રાણનો
 મિથ્યાત્વ, અજ્ઞાન તથા કષાય વડે ઘાત કરવો તે
 ભાવહિંસા છે અર્થાત્ મિથ્યોપદેશાદિવડે કોઈ
 જીવના દર્શનગુણના ઘાત કરી મિથ્યાસ્વરૂપ પરિણ-
 માવવો, સમ્યક્જ્ઞાનથી ચૂકાવી અજ્ઞાન રૂપ પરિણ-
 માવવો તથા ક્ષમા ગુણનો ઘાત કરી ક્રોધ રૂપ
 પરિણમાવવો તથા વિનય ગુણનો ઘાત કરી માન
 રૂપ પરિણમાવવો તથા આર્યવ (સરલતા) ગુણનો
 ઘાત કરી માયારૂપ પરિણમાવવો મુક્તિ ગુણનો ઘાત
 કરી લોભ રૂપ પરિણમાવવો, એ વિગેરે તેની શુદ્ધ
 પરિણતિનો ઘાત કરી અશુદ્ધ પરિણામે પરિણમાવવો
 તે ભાવહિંસા છે. તેમાં પોતાના ભાવપ્રાણની સિંહા
 કરવી તે નિજભાવ હિંસા છે અને પરજીવના ભાવ-
 પ્રાણની હિંસા કરવી તે પરજીવ ભાવહિંસા છે અને

મિથ્યાસ્વ, અવિરતિ, કષાય, પ્રમાદ તથા યોગેનું
 સેવન કરવું તે હિંસાનાં કારણો છે તે કારણો સેવ-
 વાથી હિંસા થાય છે કહું છે કે “કારણ જોગે
 કારજ નિપજેરે, એમાં કોઈ ન વાદ । પણ કારણ
 વિણું કારજ સાધીએ રે, તે નિજ મતિ ઝુન્માદ”

એમ સ્વાદ્વાદ નય યુક્ત જિન પ્રરૂપિત દ્રવ્યહિંસા
 તથા ભાવહિંસાના સ્વરૂપથી અજાણ તથા તેના
 કારણોથી અજાણ મિથ્યાદ્રષ્ટી જીવો એક સમય
 માત્ર પણ અહિંસાભાવમાં વર્તી શકવાને અપમર્થ
 છે તથાપિ મોહમદ્યમાં લેખાન થયેલા હિંસામાં
 વર્તતા છતાં હમે દયા પાલીએ છીએ-દયાલુ છીએ
 એમ પોતાના જીવંદાગ્રથી જલ્પના તથા મનમાં
 કલ્પના કરે છે પણ તેથી શું ? સાંચી દયા પાલ્યા
 શિવાય તેના પરમોત્તમ ફલ મોક્ષ સુખને પામી શકે
 નહિ ।

પણ જે સ્વાદ્વાદ નય યુક્ત જિન પ્રરૂપિત દ્રવ્ય-
 હિંસા તથા ભાવહિંસાના સ્વરૂપનું તથા તેના કાર-
 ણોનું સમ્યક્જ્ઞાન ધરાવે છે-જે પરમોત્તમ ફલના
 ઉત્સુક છે હિંસાનું ફલ જે ભવભ્રમણ તેથી ઉદ્વિગ્ન

ખયભીત છે એવા સમ્પક્કદ્રષ્ટી જીવોજ અહિંસામાં
 વર્તી શકવાને સમર્થ છે “(પદ્મં નાણં તડ-
 દયા)” જે જે અંશે અહિંસાભાવમાં વર્તે છે તેને
 તેટલા અંશે અહિંસક કહિયે માટે થોડા ગુણસ્થા-
 નથી માંડી ઉપલા ઉપલા ગુણસ્થાનોમાં અહિંસક-
 દશા નય પ્રમાણ અધિકી અધિકી વર્તે છે પણ જે
 સમર્થ ! આપ હિંસાના સર્વે કારણોથી દૂર વર્તી
 હોવાથી સર્વોત્કૃષ્ટ તથા સર્વદા અહિંસક આવમાં
 વર્તો, છો રાગ દ્વેષ રહિત હોવાથી સર્વે જીવો
 ઉપર એક સરખી રીતે દયા રાખોછો, તેથી સર્વે
 દયાલુ જીવોમા આપ રાજા સમાન શિરોમણિ છો,
 તેથી જે દયાલુરાય શ્રી રુગમંધર દવામી ! કરુણા
 નિધાન તથા સમર્થ જાણી આપ પ્રતિ વિનંતી
 ઉચારું છું કારણકે દયાલુ તથા સમર્થ હોય તેજ
 સેવકની વિનંતિ મનોર્થને પરિપૂર્ણ કરે માટે સુજ
 સેવકની વિનંતી કરુણા ભાવે ચિત્તમાં ધારી-“એ
 પરપરિણતિ રંગથી સુજને નાથ હગાર”- જે નાથ !
 જે સ્વામી ! અનાદિ વિભાવ વશે પુદ્ગલ પર્યાપ
 જે શરીરાદિક તેમાં અહંપણું માની તેં જગર અત્યંત
 રાગ કરી તેમાં તણીન થક રહ્યો છું તથા તે શરી-

रादिकने प्रशस्त-हितकारी कुटुम्बी जनो मिश्रबर्ग
 नोकर चाकर तथा धन धान्य मणि औषधी आ-
 शास आदि अनेक पुद्गल पर्यायोमां तथा पंचेंद्रिना
 अनेक मनोज्ञ विषयमां राग वशे तल्लीन थह रह्यो
 छुं, तेने मेलववा राखवा माटे अनेक प्रयास करुं
 छुं, अनेक विकल्प जाल रचु छुं, तेनी तृष्णारूपा
 आगमां निरंतर प्रज्वलित थाऊं छुं, तेनो वियोग
 थाय ते माटे भय भोगवु छुं, तेना वियोगे शेरु
 संताप आक्रंद विगेरेनो भोक्ता बनुं छुं, अने पोतानी
 सहज अनंत स्वतंत्र, अप्रथग् भूत स्वक्षेत्रवर्ती
 अविनश्वर सुख निदान आत्म परिणतिथी वियोगी
 रहुं छुं माटे हे भक्त वत्सल प्रभु ! एवी दुष्ट परप-
 रिणतिना रंगथी मुजनै हवे शीघ्रमेव उगारो ॥ १ ॥

कारक ग्राहक भोग्यताये, में कीधी महा-
 रायरे, दयालराय ॥ पण तुज सरीखो प्रभु
 लहीरे, साची वात कहायरे, दया० ॥२॥

अर्थ--सर्वे द्रव्यो अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व,
 प्रमेयत्व अगुरुलघुत्व अने सत्त्व स्वभाषवंत होवा-
 धी पोताना गुणपर्यायोना कर्ता, ग्राहक, व्यापक

आदिपणे पोतानी सत्ताभूमिमां सर्वदा वर्त्ते छे,
तथा वली “क्षेत्र काल भावानाम् एक समुदा-
यित्वं द्रव्यत्वम्” क्षेत्र काल भावनं एक समुदा-
यिपणुं ते द्रव्यत्व छे माटे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव
परस्पर अभेद छे-अप्रथम भूत छे तेथी कोह द्रव्य
बीजा द्रव्यना क्षेत्र काल भावमां प्रवेश करवा
सर्वथा असमर्थ छे माटे निश्चय नये कोह द्रव्य
अन्य द्रव्यनो कारक कर्ता, भोक्ता, ग्राहक, व्यापक,
आधार, आधेय विगेरे थह शके नहि, तथापि जीव-
मां अनादि विभाव स्वभाव होवाथी हुं मिथ्यात
अज्ञान वशे परपरिणति-पुद्गल पर्यायो विषे कर्ता
भोक्ता, ग्राहक, व्यापक आदि बुद्धि करी मारी
आत्मीक स्वतंत्र रिद्धिधी वियोगी रखो पण हे
युगमंधर स्वामी ! आपने संपूर्ण नये पोताना परि-
णामना कर्ता, ज्ञाता तथा तेमांज रमण करना
तथा तेनोज आस्वादन-अनुभव लेनार होवाथी
साचा प्रभु जाणी आप प्रति हुं मारी साथी कथा
निवेदन करुं छुं ॥ २ ॥

यद्यपि मूल स्वभावमेरे, पर कर्तृत्व

विभावरे ॥ दयालराय ॥ अस्ति धर्म जे माह-
रोरे, एहनो तथ्य अभावरे ॥ दयाल-
राय ॥ श्री० ॥ ३ ॥

अर्थ-अनादि कालथी जां के माहरा ज्ञान
दर्शन चारित्ररूप आत्म गुणमां परकर्तृत्वादि विभा-
वनो सरलेश थयेलो छे तेथी हुं अनादिकालथी
परकर्तृत्वादि विभाव रूप परिणमं छुं तो पण सत्ता-
गते रहेला माहरा अस्तिधर्ममां-सामान्य स्वभाव-
मां खाखर ते विभावनो अभाव छे कारण के सा-
मान्य स्वभाव सदा निगवरण छे; माटे जो हुं मा-
हरा अस्तिधर्म तरफ लक्ष आपुं तेने प्रगट करवा
रुचि धरुं तो निश्चय कर्मजन्य उपाधि रूप विभा-
वनो समूल नाश करी संपूर्ण शुद्ध सुखनिधान
अस्तिधर्मनो भोगी थांड, सादिअनंतकाल सुधी
ए अवस्थामां अवस्थित रहुं ॥ ३ ॥

पर परिणामिकता दशारे, लहि पर काण
योगरे, दयालराय ॥ चेतनता परगत थईरे,
राची पुद्गल भोग रे, दयालराय ॥ श्री० ॥ ४ ॥

अर्थ-ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म तथा भावकर्मना उदय वशे पर परिणामिक दशाने प्राप्त थयो छुं, अर्थात् पर द्रव्यना परिणामने पोतानो परिणाम मानुं छुं एटले मन खचन अने कायानी क्रियाने आत्म क्रिया मानुं छुं तेथो मारी चेतनता पर परिणाम-मां व्यापी-परगत थई-पुद्गल पर्यायोने भोगववा-मां राची-आत्मक्त थई-लीन थई-त्यांज स्थित थई तेथी आत्म परिणामनो भोग लेवा अवकाश मल्यो नहीं ॥ ४ ॥

अशुद्ध निमित्त तो जड अत्रे, वीर्य शक्ति विहोने ॥ द० ॥ तुं तो वारज ज्ञानयारे, सुख अनंते लीने ॥ द० ॥ श्री० ॥ ५ ॥

अर्थ-आत्माने अशुद्ध परिणामे अर्थात् अज्ञान, मिथ्यात अने कषाय रूप परिणमवामां शुभाशुभ कर्मोदय वडे पुद्गल द्रव्य गुण पर्यायनो संबध ते निमित्त छे पण ते शुभाशुभ कर्मोदय, जड-चेतनता रहित तेमज वीर्य शक्ति रहित होवाथी तेउं आत्माने अशुद्ध परिणामे परिणमाववामां पोतानी मेले कारण बनवाने असमर्थ छे, तथा कारण पद तो

उत्पन्न पर्याय छे माटे ज्यारे कर्त्ता कार्य साधवानो रुचीवंत थइ तेने निमित्तमां वापरे त्यारे तेमां कारण पद उत्पन्न थाय छे. “ए कारका कर्तृराधिना”

जो आत्मा प्रमाद भावमां वर्त्ते तो ते शुभाशुभ कर्मोदय अशुद्ध परिणामनुं निमित्त थाय पण पोते सचेत थइ पोताना शुद्ध कार्यनो कर्त्ता थाय त्यारे कारकचक्र सुलटे अने शुभाशुभ कर्मोदये अशुद्ध परिणामे परिणमे नाहें तो ते पुद्गलो निमित्त पण थइ शके नहि. जेम कुंभार घट कार्यनो रुचिवान थाय नहि, तथा दंड चक्रादिने ते घट कार्य साधवामां वापरे नहि, तो दंड चक्रादि तेवारे घट कार्यना निमित्त कहेवाय नहि. पण छुं अनादि विभाव वशे राग द्वेषे परिणमवानी द्रढ टेबथी ते पुद्गल जडमां कारण पद उत्पन्न करी अशुद्ध परिणामे परिणमुं छुं, तेथी आत्मिक शुद्ध कार्य करवामां आत्म वीर्य अस्यंत हीन थइ रह्ये छुं, अर्थात् अनंतज्ञान अनंत-दर्शन अनंतसुखरूप अनुपम आत्म व्यक्तिथी रहित कंगाल बनी अस्यंत पराधिन, दरिद्र-दयामणि अवस्थाने भोगवुं छुं पण हे प्रभु ! तमे तो अनंत ज्ञान वीर्यना परिपूर्ण पणथी-पूर्ण व्यक्तिथी सहज,

अकृत्रिम, स्वतंत्र, एकांतिक, अंतातीत, अव्याबाध
आत्मीक सुखमां लीन-संतुप्त-निमग्न थइ रह्या
छो ॥ ५ ॥

तिण कारण निश्चय करथो रे, मुज निज
परिणति भोगरे । द० । तुज सेवाथी नीप-
जेरे, भांजे भव भय शोगरे ॥ द० ॥ श्री० ॥ ६ ॥

अर्थ-तैथी न्याय युक्त ज्ञानद्रष्टिथी मने एवो
निश्चय थयो छे के हे भगवंत ! कर्म रूप रजथी
सर्वथा निर्लेप स्फटिक समान तमारा संपूर्ण, निर्मल
पवित्र गुणोनुं सेवन करतां-भक्तिकरता माहरी आत्म
परिणति रूप अबाध्य अखूट स्वतंत्र पूर्णानंदमय
सहज आत्म संपदाना भोगनी मने प्राप्ति थशे
तथा. “भांजे भव भय सोग” अनादि कालथी
चार गतिरूप भवसमुद्रमां अज्ञान वशे अनेक
दुःसह दुःखो तथा तज्जान्य भय, शोक, संताप,
आक्रंद विगेरे सहं छुं, तेनो सहज लीलामात्रमां
नाश थशे ॥ ६ ॥

शुद्ध रमण आनंदता रे, ध्रुव निस्संग

स्वभाव रे ॥ द० ॥ सकल प्रदेश अमूर्त्ततारे,
ध्यातां सिद्धि उपायरे ॥ द० ॥ ७ ॥

अर्थ-अचल, अबाधित, निरावरण, शुद्ध
परमात्म पद रमण-अनुभवजन्य आनन्दने तथा
पोताना ध्रुव अर्थात् पोताना द्रव्य क्षेत्र काल भावे
सदा सत् (द्वयं गुण समुदाय, स्थितं ओगाह
वदृणा कालो । गुण पञ्चाय पवति भावो
निश्च वत्थु धम्मो सो) अनन्त अन्वय गुणना
पिंड तथा निस्संग-सकल परभाव, परिग्रहशी
असीत एवा आत्मभावने तथा अलेशी, अस्पर्शी,
अगंधी अवर्णी, अरसी, अक्रोधी, अमायी, अमानी,
अलोभी, अवेदी आदि अनेक व्यतिरेक गुणना
समूहरूप सकल प्रदेश अमूर्त्ति पिंड आत्म द्रव्यने
सर्वे परद्रव्यनी मूर्छाशी पोतानी आत्म परिणति
वारी पोतानी आत्म भूमिमां स्थित करी-लीन
करी पोतानी सर्वे वीर्य शक्ति एकत्र करी एकाग्र
चित्ते ध्यातां अमूर्त्त परमात्मपदनी सिद्धि थाय-
ध्याता ध्येयनी एकता थाय ॥ ७ ॥

सम्यक् तत्त्व जे उपदिश्योरे, सुणतां
तत्त्व जणायेरे ॥६०॥ श्रद्धा ज्ञाने जे ग्रह्योरे,
तेहिज कार्य करायेरे ॥६०॥ श्री० ॥८॥

अर्थ—द्रव्यना सर्व पर्यायना ज्ञान विनाना
एकांत वादीयो (मिथ्या वादीयो) (एकांते होइ
मिथ्यतो) ना विडंबनारूप भव भ्रमणना हेतुभूत
दुर्नयथी परिपूर्ण अज्ञान जन्य सिद्धांतथी उपजता
अज्ञानरूप अंधकारना समूहनो नाश करनार
सकलनय तथा प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाणथी अबाधित
स्याद्वाद युक्त, अव्याप्ति अतिव्याप्ति तथा
असंभवादि सकल दूषणो रहित जीवादि तत्त्वोक्त
सत्य स्वरूप प्रतिपादन करनार जिनेश्वरना परम
कल्याणकारी वचनो श्रवण मनन निदिध्यासन
करतां शंसय विपर्यय अने अनध्यवसाय रहित
तत्त्व स्वरूपनु सम्यक्ज्ञान थाय अने सम्यक्दर्शन
सम्यक्ज्ञान युक्त जो आत्म स्वरूप जाणीये—
ग्रहण करीये तोज परमात्म सिद्धिना साधक बनी
शकीए ज्यांसुधी आत्मद्रव्यनु सम्यक्ज्ञान सम्यक्
दर्शन थयुं नथी त्यांसुधी आदरेलुं चारित्र ते सम्यक्
विशेषणने प्राप्त थइ शके नहि अने सम्यक्चारित्र

વિના કદાપિ કાલે મોક્ષની પ્રાપ્તિ થઈ શકે નહિ.
 કહ્યું છે કે “વિરઆ સાવજ્ઞાતં, કષાય હીણા
 મહત્ત્વય ધરાવી । સમ્મદિઠી વિહુણા, કયાવિ
 મુરુત્ત્વં ન પાવંતિ” તથા “ નયગમ મંગ
 પમાણેહિ, જો અપ્યા સાયચાર્ય માવેણ ।
 મુણઈ મોરુત્ત્વ સરુત્ત્વં સમાદિઠ સો નેતં” ॥૮॥

કાર્ય રુચી કર્તા થયેરે કારક સવિ
 પલટાયરે ॥ ૬૦ ॥ આતમ ગતે આતમ રમેરે,
 નિજ ઘર મંગલ થાયરે ॥ ૬૦ ॥ ૬૧ ॥

અર્થ-જ્યાંસુધી જીવ મિથ્યાત ગુણસ્થાને વર્તે
 છે- સમ્યક્દર્શનની પ્રાપ્તિ થઈ નથી, ત્યાંસુધી
 અનાત્મ વસ્તુમાં આત્મબુદ્ધિ-અહંપણું માને છે
 અર્થાત્ પુદ્ગલ સ્કંધોથી બનેલું ચૈતન્યશૂન્ય જે શરીર
 તેમાં લોલીભૂતપણે પરિણમિ પોતાનું આત્મ અંગ
 માને છે તથા તે શરીરને જે પ્રશસ્ત, હિતકારી
 પદાર્થો-સ્ત્રી ધન કુટુંબાદિને પોતાનાં હિતકારી
 માને છે, તેજમાં રાગરસે રીક્ષે છે. સંસાર ભ્રમણ
 પરિપાટીને વધારે છે (જો અપસત્થો રાગો, વદ્ધર્ષ
 સંસાર ભ્રમણ પરિવાડી । વિસયાઈસુ સયણા-

ઇસુ ઈઠત્તં પુગ્ગલાઈસ) અને તે શરીરાદિને પોતા
 ના સાધ્ય જાણી નિરંતર તેને સાધવા માટે અનેક
 પ્રયાસ કરે છે-તેનેજ પોતાનું કાર્ય જાણે છે એમ
 અજ્ઞાન વશે પોતે પર કર્તૃત્વ ભાવે પરિણમે છે. તેથી
 કારકચક્ર શુદ્ધ સ્વભાવથી વિરુદ્ધ બાધકભાવે
 પરિણમે છે. પણ ડ્યારે આત્મા યોગ્ય કારણ વેહે
 સમ્યક્જ્ઞાનનો લાભ પામે, અનંત પરમાનંદમય
 સંપૂર્ણ સુખના હેતુ પરમાત્મ પદ રૂપ પોતાના શુદ્ધ
 સાધ્યને ડંલસે, ત્યારે પર સાધ્ય તરફથી અરુચી
 થાય અને પોતાનું શુદ્ધ સાધ્ય સાધવાની રુચી થાય
 શુદ્ધ કાર્ય કરવાનો અભિલાષી થાય ત્યારે જે
 કારકચક્ર બાધકભાવે અર્થાત્ આત્માના જ્ઞાન
 દર્શન સુખ વીર્યની ઘાત કરવા રૂપ કાર્ય પરિણમતું
 હતું તે સાધક ભાવે એટલે શુદ્ધ જ્ઞાન દર્શન સુખ
 વીર્ય સાધવા રૂપ પરિણમે એટલે આત્મ પોતાના
 શુદ્ધ પરિણામે વર્તે-તેમાં રમણ કરે-ત્યાંજ સ્થિત
 થાય એમ થતાં આત્માના સર્વ પ્રદેશો મંગલ થાય
 અર્થાત્ કર્મ રૂપ રજ ગતી જાય-અત્યંત સુખ
 નિધાનનો લાભ થાય ॥ ૯ ॥

ત્રાણ શરણ આધાર છોરે, પ્રભુજી મહ્ય
 સહાયરે ॥ ૬૦ ॥ દેવચંદ્ર પદ નીપજેરે, જિન

पदक्रज सुपसायरे द० ॥ श्री० १०॥

अर्थ-हे प्रभुजी ! आप चार गति रूप भव
अमणना दुःखथी त्राण अर्थात् रक्षण करनार तथा
महान् दुःखदायी ज्ञानावरणादि प्रचंड अष्ट कर्म
शत्रुउंथी डरता भव्य प्राणीउंने शरण छो तथा भव
समुद्रमां वृडता भव्य प्राणीउंने हस्तावलंबन रूप
छो तथा भव्य जीवोने मोक्षलक्ष्मी वरवामां परम
सहायभूत छो, तैथो हे गुण सागर ! आपना निमैल
चरण कमलना पसायथी देवमां चंद्रमा समान
परमात्म पदनी प्राप्ति थाय ए निर्विवाद छे ॥१०॥

(संपूर्ण)

॥ अथ तृतीय श्री बाहुजिन स्तवनं ॥

संभवजिन अवधारीये ॥ ए देशी ॥

बाहुजिणंद दयामयी, वर्त्तमान भगवान
प्रभुजी ॥ महाविदेहे विचरता, केवलज्ञान
विधान ॥ प्रभुजी ॥ वा० ॥१॥

अर्थ-महाविदेह क्षेत्रमां विहरमान वर्त्तमान
भगवान्, सङ्ख पङ्ख विद्वंसन धर्म युक्त पौद्गलीक
शरीरथी अत्यंत विलक्षण महान् आत्म सत्ता-

भूमिमां (अर्थात् जे भूमिमां अन्य कोइ पण द्रव्यनो प्रवेश थइ शके तेम नथी तेथी बीलकुल संकडांश वगरनी परम रमणीय स्वतंत्र एवी आत्म सत्ता-भूमिमां) निरंतर पोताना पर्यायोमां परिणमता पोताना गुण पर्यायो सहित सदा सत् लक्षणवंत होवाथी वर्त्तमान, आत्मीक अविचल अखंड लक्ष्मीनां स्वामी होवाथी भगवान, सामान्य कैवलीओमां इंद्र समान हे श्री बाहुस्वामी ! आप सर्व प्रदेशो सर्वे काले सर्व भावे दयामयी छो अर्थात् आपना सर्वे प्रदेशथी हिंसाना हेतुनो अभाव थयलो छे तथा हवे ते हेतुउंनो समूल क्षय होवांथी कोइ पण काले हिंसकभावे परिणमनार नथी तथा ज्ञानादि सर्वे धर्मो सर्वे नये पूर्ण पवित्र थया छे तेथी कोइ पण भाव हिंसकभावे परिणमे तेम नथी. तेथी आप सर्वांगे सर्वोत्कृष्ट अनुपम दयाना भंडार छो तथा जे ज्ञानमां जीवाजीव सर्वे द्रव्यो पोताना त्रिकालवर्त्ती सर्वे पर्यायो सहित प्रत्यक्षपणे भासे छे उक्तंच तत्त्वार्थे- (सर्वे द्रव्य पर्यायसु केवल-स्य) एहवा केवलज्ञानना निधान के० अखूट खाण छो. कारण के द्रव्य ते गुण पर्यायनुं भाजन छे, द्वितीयपर्याय तथा सामर्थ्यपर्यायनो आधार छे तेथी

કોઈ પણ કાલે દ્રવ્ય તે પર્યાયથી હીણ ક્ષીણ થાય નહિ. કારણ કે તીરોભાવે રહેલા પર્યાયો આવીર્ભાવે થાય છે અને તે પાછા તીરોભૂત થાય છે એમ પરાવર્તન ચક્રે પરિણમે છે. ઉક્તંચ- સંમતિ ગ્રંથે-“દબ્બં પજ્જાય વિઉચ્ચં, દબ્બં વિયુત્તાય પજ્જાયા નચ્છિ ઉપ્પાયબ્બય મંગાહ દવિય લરકણંણયં” તથાચ પંચાસ્તિકાય સમયસારે-“દબ્બં સલ્લરકણિયં, ઉપ્પાદબ્બય ધુવત્ત સંજુત્તં । ગુણ પજ્જાયા સયં વા, જં તં મસ્મંતિ સબ્બણહુ” ॥ ૧ ॥

દ્રવ્યથકી છકાયને; ન હણે જેહ લગાર ॥
પ્રભુજી ॥ ભાવદયા પરિણામનો, એહિજ છે
વ્યવહાર ॥ પ્રભુજી ॥ બા૦ ॥ ૨ ॥

અર્થ-પૃથ્વીકાય, અપકાય, તેજસ્કાય, વાયુકાય વનસ્પતિકાય અને ત્રસકાય એ છ કાયના જીવના દ્રવ્યપ્રાણને હણવા હણાવવા તથા હણતાની અનુ-મોદના કરવી એ દ્રવ્યહિંસા છે તે દ્રવ્યહિંસામાં ભાવહિંસાના કારણની મજના છે. તેથી ભાવ-હિંસાનો સ્યાગી દ્રવ્યહિંસા આદરે નહિ-થવા દે નહિ-સાવચેત પણે વર્તે-સમિતિ પૂર્વક વર્તે અર્થાત્

वकायना जीवोनी द्रव्यहिंसानो त्याग करवो ते
भावदयानो तथा भावदयाना परिणामीनो व्यवहार
छे. द्रव्यअहिंसा ते भावअहिंसानो व्यवहार-कारण
छे ॥ २ ॥

रूप अनुत्तर देवथी, अनंतगुणुं अभिराम
॥ प्रभुजी ॥ जोतां पण जग जंतुने न वधे
विषय विराम ॥ प्रभुजी ॥ वा० ॥ ३ ॥

अर्थ-सर्वे जीवोने आ संसार जन्य जन्म जरा
मरणादि रूप भयंकर दुःखथी छोडावी रत्नत्रय
पमाही अनंत आत्मीक परमानंदना भोक्ता करुं
एवी उत्कृष्ट भावदयाना योगे अत्यंत तीव्र शुभ
परिणाम वडे-सर्वोत्कृष्ट पुण्यानुबंधी पुण्यना उदये
हे बाहु जिनेंद्र ! आपनुं रूप लावण्य कांति, विजय
विजयंत जयंत अपराजीत अने सर्वार्थसिद्धि
विमानवासी देवो करतां पण अनंतगुणुं अभिराम,
अतिशययुक्त, सर्वोपरी, मनोहर, रमणीय, आ-
ह्लादकारी छे. उक्तंच-“जाकी देहदुतिसो दसौ
दिशा पवित्र भई; जाके तेज आगे सब तेज-
वंत रुके है । जाको रूप निरखी थकितु महा

रूपवत; जाकी वपुवाससो सुवास और लुके
 है ॥ जाको दिव्य धुनी सुनि श्रवनको सुख
 होत जाके तन लच्छन अनेक आइ दुके है ।
 तेइ जिनराज जाके कहे विवहार गुन, निहचै
 निरखि शुद्ध चेतनसों चुके है ॥ ” एवं अत्यंत
 देदिप्यमान अनुपम औदारिक आपनुं मनोहर रूप
 जोतां—निरखतां छतां पण विषयातुरताने अवकाश
 मलतो नथी परंतु आपनी शांत, दांत, गंभीर अने
 निश्चल मुद्रानुं दर्शन पामी विषयोर्थी उपशान्त
 चित्त थाय छे ॥ ३ ॥

कर्म उदय जिनराजनो; भविजन धर्म
 सहाय ॥ प्रभुजो ॥ नामादिक संभारतां,
 मिथ्या दोष विलाय ॥ प्रभुजी ॥ बा० ॥४॥

अर्थ—“सवि जीव करुं शासन रसी; इसि
 भाव दया मन उलसी” एहवा अत्यंत तीव्र शुभ
 वाग युक्त भावदयाना परिणाम वड़े बंधायला
 तीर्थकर नामकर्मना उदय वड़े हे त्रिलोक पूज्य !
 आ पारावार दुःखनिधान संसार समुद्रमां बृद्धता
 भव्य प्रणियोनो उद्धार करवा माटे सर्वे दूषणो

रहित अने पांत्रीश गुण सहित, नय निक्षेप पक्ष
 प्रमाण युक्त जीवा जीवादि तत्त्वानो सम्यक प्रकारे
 उपदेश आपो छो ए आपनो कर्म उदय निर्विवाद
 पणे “भवि जन धर्म सहाय” अनादि कालथी
 ज्ञानावरणादि कर्म रज वडे मलिन थएला-लिस
 थएला भव्य जीवोना आत्म धर्मने एवंभूत नये
 प्राप्त थवा सहाय-निमित्तभूत छे. तथा हे तीर्थ-
 नाथ ! आपना नामादिक चार निक्षेप संभारतां-
 स्मरण करतां-लक्ष्मां लेतां मिथ्यास्वादि दुष्ट
 दोषोनो तत्काल अत्यंत अभाव थाय. “ तीर्थ-
 संसार निस्तरणो-पायं करातीति तीर्थकृत्”
 इति वचनात्. जन्म मरण रूप संसार सागरथी
 तरी जवानो उपाय जे सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र्य
 ते तीर्थ छे. उक्तं च तत्त्वार्थ सूत्रे “ (सम्यग्दर्शन
 ज्ञान चारित्र्याणि मोक्ष मार्गः)” ते रत्नत्रयरूप
 तीर्थने भव्य जीवोना हृदयमां स्थापन करनार पुष्ट
 निमित्त होवथी आप तीर्थकर नामने संप्राप्त छो.
 तथा आपना निर्मल असंख्यात् आत्म प्रदेशमां ते
 रत्नत्रय भरपूर अभेद्य पणे वसी रह्यां छे ते
 स्थापनानिर्दोषो. तथा आपनो आत्म द्रव्य ते

જ્ઞાન દર્શન ચારિત્ર રૂપ ભાવનું સર્વદા કારણ છે તે દ્રવ્યનિક્ષેપો. અને ઘાતીકર્મના ક્ષયથી અનંત ચતુષ્ટય અનંત શુદ્ધ પર્યાય પળે પ્રગટ્યા તે આપનો ભાવ તે ભાવનિક્ષેપો. એમ આપના ચાર નિક્ષેપ આપથી તન્મય પળે એક ક્ષેત્રે રહ્યા છે. ઉત્તંચ-

“ ઇહ ભાવોચ્ચિય વચ્છુ, તય સુનેહિં કિંચ સેસેહિં, નામાદયો વિભાવા, જં તે વિહુ વચ્છુ પજ્જાયા ” તથા વલી-“અહવા વચ્છુભિહાણંણમં ઠવણાય જો તયાગારો । કારણયાસે દેવ્વં, કજ્જય વન્નં તયં ભાવો ॥ અને આપ પળે જીવ દ્રવ્ય છો અને હું પળે જીવ દ્રવ્ય છું માટે સ્વ જાતી છું તેથી આપનું સ્વરૂપ યથાર્થ પળે જાણતાં માર્હિરૂં સ્વરૂપ પળે યથાર્થ જણાય જો જાણઈ અરિહંતં, દવ્વ ગુણ પજ્જવતેહિં । સો જણાઈ અપ્પાણં, મોહો સ્વલુ જાઈ તસ્સ લયં ” અને પોતાના આત્મ સ્વરૂપની પ્રાપ્તિ થતાં મિથ્યાત્વ અજ્ઞાન આદિ દોષો તત્કાલ ચિલયમાન થાય, કર્મ-બંધનો નાશ થાય, મોક્ષ પદવીની પ્રાપ્તિ થાય. ઉત્તંચ-“ દર્શન માત્મ વિનિશ્ચિત, રાત્મ પરિ-

ज्ञान मिष्यते बोध । स्थिति रात्मनि चारित्रं
 कुत एतेभ्यो भवति बन्धः ॥ ” तथा “योगात्
 प्रदेश बन्धः स्थिति बन्धो भवति तू कषायात् ।
 दर्शन बोध चरित्रं, न योग रूपं कषाय रूपं
 च । ” ॥ ४ ॥

आत्म गुण अविराधना, भाव दया
 भंडार ॥ प्रभुजी ॥ क्षायिक गुण पर्यायमें,
 नवि पर धर्म प्रवार ॥ प्रभुजी ॥ बा० ॥५॥

अर्थ-ज्ञान दर्शन चारित्रादि अनंत आत्म
 गुणो ते भावप्राण छे अने ते भावप्राणनो विषय
 कषायादिके घात करवो ते भावहिंसा छे. अने ते
 भावप्राणनुं समिति गुप्ति आदि संवर बडे रक्षण
 करवुं घात न थाय एम अप्रमत्त भावसां वर्त्तवुं ते
 भावदया छे. ते भावदयाना आप भंडार-निधान
 छो. कारण के भावप्राणना घातक मिथ्यास्वादि
 दुष्ट हेतुंउनो आपना आत्म प्रदेशमांथी सर्वदा
 नाश थयो छे, क्षायिक लब्धिने पाग्या छो. तेथी
 आपनी सत्ताभूमिमां मिथ्यास्वादि दोषोनो रक्ष

માત્ર પણ પ્રવેશ-પ્રચાર થઈ શકે તેમ નથી અને તેથી
આપમાં આવહિસાનો બિલકુલ અભાવ છે તેથી
આપ નિર્બિવાદ પણે આવદયાના મંડાર છો ॥ ૫ ॥

ગુણ ગુણ પરિણતિ પરિણમે, વાધક ભાવ
વિહીન ॥ પ્રમુ૦ ॥ દ્રવ્ય અસંગી અન્યનો, શુદ્ધ
અહિંક પીન ॥ પ્રમુજી ॥ વા૦ ॥ ૬ ॥

અર્થ-આપનો આત્મ દ્રવ્ય જ્ઞાન દર્શન ચારિત્ર
દાન લાભ ભોગ ઉપભોગાદિ અનંત ગુણનો પિંડ
છે (દ્રવ્ય ગુણ (સમુદાઓ) તે સર્વે ગુણો
વાધકભાવ રહિત પોતાના શુદ્ધ પરિણામે પરિણમે
છે કારણ કે “સર્વે સપજ્જવા ગુણા, અપજ્જવે
જાણના નચ્છિ” પણ તે ગુણો જો વાધકભાવે
ઘટલે જ્ઞાન અજ્ઞાનપણે, દર્શન અદર્શનપણે, ચારિત્ર
મિથ્યાચરણ રૂપ પણ પરિણમે તો આત્મ સ્વગુણનો
રોધ કરે-શુભાશુભ કર્મવંધ કરે-આત્મીક સહજ
અવાધિત સુખની હાણી કરે “ (સાયાસાયં
દુઃસ્ખં, તઽવિરહંમિ ય સુહં જડસેનં । દેહિં-
દિયેસુ દુઃસ્કં, સુસ્ખં દેહિંદિયા ભાવો) ”

પણ આપના સર્વે ગુણો અબાધકભાવે પરિણમે છે
 તેથી આત્મ અનંત ગુણના આનંદના ભોક્તા છે,
 જ્યાંસુધી આત્મા બાધકભાવે પરિણમે ત્યાંસુધી
 અશુદ્ધ છે પણ જ્યારે સર્વે પરદ્રવ્યના રાગ-સંગ રહિત
 વર્તે ત્યારે શુદ્ધ છે, અહિંસક છે, કર્મબંધનો અકર્તા
 છે તથા પોતાના અનંત આત્મ વીર્ય વડે પુષ્ટ છે.
 ઉક્તંચ “ પરદઢવ રઝં વઙ્ગઙ્ગ; વિરઝં મુચેઙ્ગ
 મઠ કમ્મેહિંણસો જિન ઉવણસો. સમાસઝં
 વંધ મોલ્લવસ્સ ” ॥ ૬ ॥

ક્ષેત્રે સર્વ પ્રદેશમે; નહિં પરભાવ પ્રસંગ
 ॥ પ્રભુજી ॥ અતનુ અયોગી ભાવથી; અવ-
 ગાહના અભંગ ॥ પ્ર૦ ॥ વા૦ ॥ ૭ ॥

અર્થ-જેમ મોનું ત્રાણમાં પથ્થર માટી વિગેરે
 અનેક કુધાતુઝંથી મલેલું હોય છે પણ જ્યારે યોગ્ય
 યુક્તિ વડે તેને સર્વથા જૂઝું પાડી ગાલી શુદ્ધ મોનું
 કરી લઈએ ત્યાર પછી તે સોનાને કાટ લાગી શકે
 નહિ.

તેમજ અનાદિકાલથી આત્મ પ્રદેશે લાગેલા
 જ્ઞાનાવરણાદિ કર્મનો આપે શુક્લધ્યાન રૂપ અગ્નિ-

वडे सर्वथा नाश कर्यो छे, सर्वे प्रदेशो शुद्ध निर्मल परम पवित्र थया छो तेथी आपना कोइ पण प्रदेशो परभाव-राग द्वेषादिनो- विषय कषायादिनो रंच मात्र पण संश्लेष नथी, थवानो संभव पण नथी.

ज्यांसुधी आत्मा औदारिकादि शरीरमां तेमज मन वचन काय योगमां ममत्व करी वसे छे तेथी ते चल पुद्गल योगे आत्म प्रदेश सकंप थाय छे पण ज्यारे सर्वथा तेनुं ममत्व त्याग करे त्यारे शुद्धात्म भावे अरूपी भायक स्वरूप प्रगटे. उक्तंच आचारांगे-से णदीहे ण हस्ते ण वट्टे ण तंसे ण चउंरसे ण परिमंडले ण किन्हे ण नीले ण लोहिए ण हालिहे ण सुकिले ण सुरहिगंधे ण दुरहिगंधे ण तिन्ते ण कडुए ण कसाये ण अंविले ण महुरे ण कख्वेड ण मनुए ण गुरुए ण लहुए ण सीए ण उण्हे ण णिधे ण लुख्ख ण काऊ णं रूहे ण संग ण इत्थी ण पुरिसे ण अन्नहा परिणे सण्णे उवमा ण विज्जाए अरूवी संत्ता अपथस्स पयं णत्थि से ण सहे ण रूवे ण गंधे ण रसे ण फासे

इच्छेतावात तिबेमि ” एम अतनु अयोगी आत्म
अंग आत्म भावमां स्थिर थाय त्यारे कोइ पण
आत्म प्रदेश रंच मात्र पण सचल थाय नहि. अभंग
अवगाहनाने प्राप्त थाय. ॥ ७ ॥

उत्पाद व्यय ध्रुव पणे, सहजे परिणति
थाय ॥ प्रभुजी ॥ छेदन योजनता नहि,
वस्तु स्वभाव समाय ॥ प्रभु० ॥ बा० ॥ ८ ॥

अर्थ—स्वभाव भावे परिणमवामां अन्य द्रव्यनी
सहाय जोइति नथी. जेम अग्नि सहजे दाहकभावे
परिणमे छे तेम सर्वे द्रव्यो उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त
सदाकाल होवाथी सहजे पोताना स्वभाव पर्याय-
मां परिणमे. अन्य द्रव्यनी मदद जोइए नहि.
उक्तंच “ दवियदि गच्छदि ताइं, सबभाव
पज्जयइंजं; दवियं तं भणंते अणणभूदं तु
सत्तादो ” वस्तुने सहजे परिणमवामां कंइ पण
दूर करवानी तथा कंइ पण संयोग करवानी
आवश्यकता नथी कारण के द्रव्य तथा पर्यायनो
अभेद भाव छे. जेम अग्निने दाहक परिणाम
बगरनी तथा अग्नि बगर दाहक परिणामने आपणे

કદાપી કાલે જોતા નથી અર્થાત્ અગ્નિને જ્યારે
જોઈએ ત્યારે દાહક પરિણામ સહિતજ હોય છે
તેમ સર્વે દ્રવ્ય સદાકાલ પોતાના પરિણામે વર્તતાજ
હોય છે. પરિણામ વગર દ્રવ્ય અભાવ-શૂન્યપણાને
પામે. ઉક્તંચ-પજ્જય વિજુદં દઢ્ઠં દઢ્ઠવ વિજુદાય
પજ્જયાણચ્છિ દોણં અણાણભૂદં; ભાવં સમણા
પરૂવિંતિ ॥ ” વર્તમાન પર્યાયનો વ્યય થાય અને
નૂતન પર્યાયનો ઉત્પાદ થાય તો પણ દ્રવ્યાર્થિક
નયે દ્રવ્ય સદા ધ્રુવ છે. જેમ સોનાનું કહુ ભાંગી
મુકુટ વનાવીએ તેમાં કડાનો નાશ અને મુકુટનો
ઉત્પાદ થતા છતાં પણ સોનું દ્રવ્ય સદા ધ્રુવ છે.
ઉક્તંચ-“ ભાવસ્સ ણથિથિણાસો, ણથિથિ અભા-
વસ્સ ચેવ ઉપ્પાદો । ગુણ પજ્જયેસુ ભાવા,
ઉપ્પાદ વયે પકુઠ્ઠંતિ । ” ॥૮॥

ગુણ પર્યાય અનંતતા, કારક પરિણતિ તેમ
॥ પ્રમુજી ॥ નિજ નિજ પરિણતિ પરિણમે,
ભાવ અહિંસક એમ ॥ પ્રમુજી. ॥ બા૦ ॥૬॥

અર્થ-જ્ઞાન તે સમ્યક્જ્ઞાન રૂપ, દર્શન તે

सम्यक्दर्शन रूप, चारित्र्य ते स्वभावाचरण रूप
 एम ज्ञानानुयायी आपना अनंत गुणो पोताना शुद्ध
 परिणामे परिणमे छे कारण के आपनुं कारक चक्र
 ते शुद्ध अबाधक पणे सदा परिणमे छे (१) स्वधर्म
 कर्ता ते कर्त्तापणुं (२) स्वधर्म परिणाम ते कार्य
 (३) स्वधर्मानुयायी चेतना शक्ति ते करण (४)
 साध्य गुण शक्तितुं प्रगटुं ते संप्रदान (५) पूर्व
 पर्यायनुं निवर्त्तन ते अपादान (६) स्वगुणनो आधार
 आत्म सत्ताभूमि ते अधिकरण-एम गुण पर्यायनी
 तथा कारक परिणतिनी अनंतता छे तेथी कोइ पण
 आत्म धर्मने विराधक पणे रंच मात्र-समय मात्र
 पण परिणमता नथी तेथी आप सदा अहिंसक
 नामनुं सर्वोत्कृष्ट बिरुद्ध धरावो छो ॥ ९ ॥

एम अहिंसकता मर्या, दीठो तुं जिनराज
 ॥ प्र० ॥ रक्षक निज पर जीवोनो, तारण
 तरण जिहाम्न ॥ प्र० वा० ॥ १० ॥

अर्थ:-एम स्वपर जीवना द्रव्य भाव प्राणनुं
 रक्षण करनार तथा अगाध कषाय रूप जलथी
 भरेला संसार समुद्रमांथी तारण तरण जहाज
 रूप हे जिनेश्वर ! हे करुणा निधान ! आ जगत्
 त्रयमां सर्वांगे दयामय में आपनेज जोया ॥ १० ॥

પરમાત્મ પરમેસરુ, ભાવ દયા દાતાર
॥ પ્રભુજી ॥ સેવો ધ્યાવો એકને, દેવચંદ્ર
સુખકાર ॥ પ્રભુજી૦ ॥ વા૦ ॥ ૧૧ ॥

અર્થ:-આત્માનો પરમભાવ જે જ્ઞાન તેની શુદ્ધ-
તા તથા સંપૂર્ણતાને સર્વે નયે પ્રાપ્ત થયેલા હોવાથી
પરમાત્મા. તથા અનંત અવિનશ્વર સ્વાધીન પરમા-
નંદ મય શુદ્ધાત્મ એશ્વર્યતાને પ્રાપ્ત થયેલા હોવાથી
પરમેશ્વર, અને ભાવદયા રૂપ જે પરમધર્મ (આત્મ
ગુણ રક્ષણા તેહ ધર્મ, સ્વગુણ વિદ્વંસના તે
અધર્મ) તેના ઉપદેષ્ટા, દાતાર તથા ભવ અમણ
જન્ય શારીરિક તથા માનસિક દુઃખનો અત્યંત
અંત કરી સહજ પરમોત્કૃષ્ટ આત્મીક સુખના દાતાર
ત્રિલોક પૂજ્ય શ્રી બાહુજિનેશ્વરને સેવો, ધ્યાવો,
તેમના ગુણનું ધ્યાન કરો, તેથી એકાગ્ર ચિત્ત કરો,
એમ શ્રી દેવચંદ્ર મુનિ મિત્ર ભાવના વડે ભવ્ય જીવો
પ્રતિ હિત શિક્ષા આપે છે ॥ ૧૧ ॥

(સંપૂર્ણ)

॥ અથ ચતુર્થ શ્રી સુવાહુજિન સ્તવનં ॥

॥ માહરો વ્હાલો વ્રજચારી ॥ એ દેશી ॥

श्री सुबाहुजिन अंतर जामी, मुज मननो
विशरामी रे ॥ प्रभु० ॥ आत्म धर्म तणो
आरामी, पर परिणति निःकामी रे ॥ प्रभु
अंतरजामी ॥ श्री० ॥ १ ॥

अर्थ:-शुद्ध अने तिक्षण उपयोगमां परम
स्थिरता एकाग्रता धारण करी राग द्वेष रूप महान्
शत्रुओंने जीतेला हे श्री सुबाहु स्वामी ! केवलज्ञान
दर्शन उपयोग बड़े मारा तेमज सर्वे द्रव्योंना
अंतर्गत भावने 'द्रियादिकनी सहाय विना प्रत्यक्ष
जाणवा देखवावाला तथा सर्वदा परम संवरमां
लीन होवाथी अंतर्यामी छो.

स्त्री पुत्र मित्रादि परिजनो तथा धन धात्य
हिरण्य क्षेत्रादि परद्रव्यना मनोज्ञ पर्यायोने आप
सुख हेतु जाणता नथी परंतु तेउने जलना बुद्बुद्-
वत् तथा बिजलीना चमत्कारवत् क्षणीक, पराधीन
अतृप्तिना हेतु, तथा आत्म धर्म रोधक राग द्वेषना
निमित्त, संसार परिभ्रमणना निमित्त साक्षात् पणे
जाणो छो माटे ते विषयोनी आपने कामना केम
थाय ? कदापि न थाय; तथी आप सदा निःकामी

साहिब मलियो, तिणे सवि भवभय टलियो
रे ॥ प्रभु अंतरजामी ॥ ३ ॥

अर्थ--जो के हुं मोहादि वडे ठगायो, परपरिण-
तिमां तल्लीन थई रह्यो, पण हवे तमारा जेवा
साहेबनी वाणी सांभली मने प्रतित, थवाथी मारो
सर्वे भवभय दूर थयो. जो के मोह अज्ञान मिथ्या-
त्वादि दुष्टोए मने वश करी मारी ज्ञानादि संपदा
ठगी लीधी छे, माहरा सहज अनुपम सुख भोगथी
मने वियोगी कर्पो छे, तेथी हुं ते दुष्टोना वशमां
बडी अत्यंत कंगाल अवस्थाने भोगवुं छु.

परपर्याय--शरीर स्वजन परिजन तथा धन
धान्यादिमां अहं ममत्त्व करी तेनेज सुख तथा
सुख हेतु जाणी तेनीज इच्छा कामना करी जेम
खींचडामां बसतो कीडो लीमडाना रमनेज मधुर
मानी तेमां तल्लीन रहे छे, त्यांथी निकलवा चाहातो
नथी, तेम हुं तेमां तल्लीन थई रह्यो, तेथी विरत
थयो नहि, पण हवे हे करुणानिधे ! सर्वज्ञ अने
वीतराग आप जेवा समर्थ स्वामीनी मने प्राप्ति
थई--आपनु दर्शन पाव्यो तेथी अनंत रोग शोक
भय क्रोध मान माया लोभ अरति आदि के भरेला
भव समुद्रमां अमण करवानो भय दूर थयो. कारण

के ते भव भ्रमणी हवे अवधि आधी. उक्तंच-
 “अंतो मुहुत्त मित्तं पि फासिअं हुइ जेहिं
 सम्मत्तं, तेसि अवहु पुग्गल, परिअट्ठो चेव
 संसारो ” ॥ ३ ॥

ध्येय स्वभावे प्रभु अवधारी; दुर्ध्याता
 परिणति वारी रे ॥ प्र० ॥ भासन वीर्य एकता
 कारी; ध्यान सहज संभारी रे ॥ प्र० ॥
 श्री० ॥ ४ ॥

ध्याता ध्येय समाधि अभेदे; पर परिणति
 विछेदे रे ॥ प्र० ॥ ध्याता साधक भाव उछेदे;
 ध्येय सिद्धता वेदे रे ॥ प्र ॥ श्री० ॥ ५ ॥

अर्थ:-प्रभुपदने पोतानुं शुद्ध ध्येय जाणी
 पोताना हृदयमां स्थापना करी, दुर्ध्यान रूप परिष्-
 तिने निवारी, पोताना ज्ञान वीर्यनी संपूर्ण एकता
 अभेदता करनारुं सहज आत्म ध्यान संभारे; तेथी
 पर परिणतिनो समूला विच्छेद थाय, त्यारे ध्याता
 ध्येय समाधिमां तल्लीन थाय अने ध्येय पदनी
 सिद्धि प्राप्तिने वेदे-भोगवे. त्यारे ध्यातामांथी

छो. जे सुग्द प्राणीउं ते विषयोने सुख हेतु जाणे तेउंने नेनी कामना थाय अने तेज तेनी चाहरूप दाहमां प्रवेश करी पोताना आत्म भोगने दग्ध करे पण आप तो केवल सम्यक्ज्ञानी होवाथी शुभा-शुभ-शाता अशाता बनेना उदयने आत्मगुणना रोधक होवाथी दुःख रूपज जुउंछो तेथी आपने तेनी कामनानो बिलकुल संभव नथी, निरंतर निष्कामी छो. तथा शुद्धात्म ज्ञान दर्शन चारित्र गुणने स्वाधीन अविनश्वर तथा परमानंदना हेतु जाणी निरंतर तेमांज रमण करवावाला तथा तेनाज भोगमां परम संतुष्ट छो. एवी आपनी परमोत्कृष्ट अवस्था जोइ ते पद साधवानी मने रुची थइ तथा ते पद साधवानो समीचीन मार्ग पण आपे बताव्यो तेथो खरेखर मारा मनने परम विश्रामना हेतु आपजछो. ॥ १ ॥

केवलज्ञान अनंत प्रकाशी, भविजन कमल विकाशी रे ॥ प्र० ॥ चितानंदधन तत्त्व बिलासी, शुद्ध स्वरूप निवासी रे ॥ प्र० ॥ श्री० ॥ २ ॥

अर्थ--अनंत केवलज्ञान रूप सूर्यनो प्रकाश करी
भव्य जीवोना हृदयकमलने चिक्केश्वर करनार ज्ञाना-
नंदना समूह आत्म तत्त्वमां विलास करनार तथा
तेज शुद्ध स्वरूपमां निवास करनार छो.

अनादि कालथी ज्ञानावरणादि कर्मवडे आच्छा-
दित थयेला अनंत केवलज्ञान रूप जलहलाटमान
अद्वितीय सूर्यने, कर्म पडलनो नाश करी संपूर्णपणे
प्रकाशमान करी अज्ञानरूप अंधकार वडे आश्रित
थएला भव्य जीवोना हृदयकमलने ज्ञानकिरणो वडे
परम प्रफुल्लित करनार छो. रूप रस गंध स्पर्शादि
परद्रव्यना पर्यायनो भोग, रमण, आस्वाद, भूछा,
कामना बिगेरेनो समूह नाश करी राग-द्वेषादि
विभावो परिहार करी पोताना सहज अविनश्वर
ज्ञानसमूह आत्म तत्त्वमां विलास करनार अर्थात्
तेना भोगमां निमग्न छो. तेज शुद्धात्म स्वरूपमां
सदा निवास करो छो अर्थात् आपनो उपयोग
त्यांथी समय मात्र पण चलतो नथी-परद्रव्यादि
तरफ जतो नथी ॥ २ ॥

यद्यपि हूं मोहादिके छलियो, पर परिण-
तिशुं भलियो रे ॥ प्र० ॥ हवे तुज सम मुज

साहिब मलियो, तिणे सवि भवभय टलियो
रे ॥ प्रभु अंतरजामी ॥ ३ ॥

अर्थ-जो के हुं मोहादि वडे ठगायो, परपरिण-
तिमां तल्लीन थई रह्यो, पण हवे तमारा जेवा
साहेबनी वाणी सांभली मने प्रतित थवाथी मारो
सर्वे भवभय दूर थयो. जो के मोह अज्ञान मिथ्या-
त्वादि दुष्टोए मने वश करी मारी ज्ञानादि संपदा
ठगी लीधी छे, माहरा सहज अनुपम सुख भोगथी
मने वियोगी कर्षो छे, तेथी हुं ते दुष्टोना वशमां
पडी अत्यंत कंगाल अवस्थाने भोगवुं छु.

परपर्याय-शरीर स्वजन परिजन तथा धन
धान्यादिमां अहं ममत्त्व करी तेनेज सुख तथा
सुख हेतु जाणी तेनीज इच्छा कामना करी जेम
लींबडामां वसतो कीडो लीमडाना रमनेज मधुर
मानी तेमां तल्लीन रहे छे, त्यांथी निकलवा चाहातो
नथी, तेम हुं तेमां तल्लीन थई रह्यो, तेथी विरत
थयो नहिं, पण हवे हे करुणानिधे ! सर्वज्ञ अने
वीतराग आप जेवा समर्थ स्वामीनी मने प्राप्ति
थई-आपनु दर्शन पाव्यो तेथी अनंत रोग शोक
भय क्रोध मान माया लोभ अरति आदि के भरेला
भव समुद्रमां अमण करवानो भय दूर थयो. कारण

के ते भव भ्रमणी हवे अवधि आधी. उक्तंच-
 “अंतो मुहुत्त मित्तंपि फासिअं हुइ जेहिं
 सम्मत्तं, तेसि अवहु पुग्गल; परिअट्ठो चव
 संसारो ” ॥ ३ ॥

ध्येय स्वभावे प्रभु अवधारी; दुर्ध्याता
 परिणति वारी रे ॥ प्र० ॥ भासन वीर्य एकता
 कारी; ध्यान सहज संभारी रे ॥ प्र० ॥
 श्री० ॥ ४ ॥

ध्याता ध्येय समाधि अभेदे; पर परिणति
 विछेदे रे ॥ प्र० ॥ ध्याता साधक भाव उछेदे,
 ध्येय सिद्धता वेदे रे ॥ प्र ॥ श्री० ॥ ५ ॥

अर्थः—प्रभुपदने पोतानुं शुद्ध ध्येय जाणी
 पोताना हृदयमां स्थापना करी, दुर्ध्यान रूप परिष्-
 तिने निवारी, पोताना ज्ञान वीर्यनी संपूर्ण एकता
 अभेदता करनारुं सहज आत्म ध्यान संभारे; तेथी
 पर परिणतिनो समूह विच्छेद थाय, त्यारे ध्याता
 ध्येय समाधिमां तल्लीन थाय अने ध्येय पदनी
 सिद्धि प्राप्तिने वेदे--भोगवे. त्यारे ध्यातामांथी

साधकपद दूर थाय.

ज्ञानावरणादि सकल कर्मना संबन्धधी सर्वथा मुक्त केवलज्ञान दर्शन चारित्र्य वीर्यमय सहज आत्म गुणना समूह रूप श्री सुबाहु स्वामीना परमात्म पदने शुद्ध ध्येयं (ध्यावया लायक वस्तु) धारी-ज्ञान पूर्वक निश्चय करी, जन्म जरा मरण रूप संसार भ्रमणना हेतु भूत, शुद्ध परिणतिधी विमुख आर्त्त रौद्र परिणाम वारे--दूर, करे, (कारण के ज्यांसुधी दुर्ध्यान परिणाम वर्त्ते त्यांसुधी शुद्ध ध्यानने अवकाश मले नहि जेम तलीन वस्त्र ऊपर केशरनो रंग लागे नहि अने पर परिणामानुगत थयेला पोताना आत्म वीर्यने समेटी मात्र शुद्ध ज्ञान दर्शन चारित्र्य परिणाममां आत्म वीर्यने एकत्र तल्लीन करे-अभेद करे एवं सहज आत्म ध्यान आदरे, जेथी ध्येय समाधि अर्थात् शुद्धात्म अनुभव रूप निर्विकल्प निराकुल निरूपचरित स्वतंत्र परम समाधिमां मग्न-तल्लीन थाय; ते वारे आत्म परिणति मनोज्ञ अमनोज्ञ कोइ पण पर द्रव्यमां राग द्वेष रूप अशुद्ध परिणामे वर्त्ते (गमन करे) नहि, ते वारे ध्येय पदनी अर्थात् शुद्ध पर-मात्म पदनी सिद्धि थाय. तेना अचल अनंत भोग

ઉપભોગનો સ્વામી થાય. ઉક્તંચ-एको मोक्ष पथो.
 य एष नियतो, द्रज्ञाति वृत्त्यात्मक; स्तत्रैव
 स्थिति मेति यस्तमलिशं, ध्यायेच्चतं चेतसि,
 तस्मिन्नैव निरंतरं विहरति द्रव्यान्तराण्य
 स्पृशन् । सोवश्यं सम्यस्य सारमचिरान्नित्यो-
 दयं विन्दति ।

અર્થ:-સમ્યક્દર્શન જ્ઞાન ચારિત્રાત્મક મોક્ષ
 માર્ગમાં જે પુરુષ સ્થિત થાય છે, તેનેજ જે નિરંતર
 ધ્યાવે છે વલી તેનેજ જાણે, છે તેનેજ અનુભવે છે
 વલી તેનાજ વિષે વિહાર કરે છે-પ્રવર્તે છે પણ
 અન્ય દ્રવ્યમાં રંચ માત્ર સ્પર્શ કરતો નથી તે અરૂપ
 કાલમાં નિત્યોદય પરમાત્મ પદને પામે છે ત્યારે
 ધ્યાતામાંથી સાધક ભાવનો ઉચ્છેદ થાય છે; કારણ
 કે ધ્યેયની સંપૂર્ણ સિદ્ધિ થયા પછી સાધવાનું કંઈ
 બાકી રહ્યું નથી. જ્યાંસુધી કંઈ સાધવાનું બાકી
 હોય ત્યાંસુધી સાધક ભાવ કહેવાય જેમ (કારણ
 પદ ઉત્પન્ન, કાર્ય થયે ન લહ્યોગી). ॥૪॥ ॥૫॥
 દ્રવ્ય ક્રિયા સાધન વિધિ યાત્રી, જે જિન
 આગમ વાત્રી રે ॥ પ્ર૦ ॥ પરિણતિ વૃત્તિ-વિભાવે

રાચી, તિણ નવિ થાયે સાચી રે ॥ પ્ર૦ ॥
શ્રી૦ ॥ ૬ ॥

અર્થ:-શુદ્ધ ધ્યેય જે પરમાત્મ-મોક્ષ પદ તેનું
યથાર્થ સ્વરૂપ શ્રદ્ધાન પૂર્વક મેં ન જાણ્યું તથા
સાધ્ય સાપેક્ષ આચરણા ન આદરી ત્યાંસુધી માહરી
ચિત્ત વૃત્તિ વિભાવમાં રાચી રહી અર્થાત્ આ લોક
સંબંધી પંચ ઈન્દ્રિયોના મનોજ્ઞ ભોગ્ય પદાર્થો તથા
પરલોક સંબંધી સ્વર્ગાદિના ભોગમાં આશક્ત રહી-
તેની મનોકામના રહી તેથી આપના સત્ય પ્રમા-
ણિક આગમમાં બતાવેલી સમિતિ ગુપ્તિ પરિષદ
સહન તથા ચારિત્ર તપ નિયમાદિ પરમાત્મ પદની
સાધન ભૂત દ્રવ્ય ક્રિયાકંડ પણ વિષ ગરલ અને
અન્યોન્ય અનુષ્ઠાન રૂપ હોવાથી પરમાર્થ-મોક્ષ પદને
આપવા સમર્થ થઈ નહિ. જ્યાંસુધી સમ્યગ્જ્ઞાનની
પ્રાપ્તિ થઈ નથી ત્યાંસુધી સર્વે ક્રિયાકંડ શુદ્ધ ભાવ
વિનાની અશુદ્ધ વિષ ગરલ અન્યોન્ય અનુષ્ઠાન રૂપ
જાણવી ઉક્તંચ “ શુદ્ધ ક્રિયા તો સંપજે, પુદ્ગલ
આવર્તને અદ્ર રે ” ॥ ૬ ॥

પણ ભય નહિ જિનરાજ પસાયે, તત્ત્વ રસા-
યણ પાયે રે ॥ પ્ર૦ ॥ પ્રભુ ભગતેં નિજ

चित्त वसाये, भाव रोग मिट जाये रे

॥ प्रभु० ॥ श्री० ॥ ७ ॥

अर्थ:- पण हवे मने भय नथी कारण के जिन-
राजना वचन पसाये तत्त्व रसायणनी प्राप्ति थई
छे तेथी माहरुं चित्त प्रभुनी भक्तिमां वसवाथी
भाव रोग मटी जशे. पण हवे हे तरण तारण श्री
सुबाहु जिनेश्वर ! बन्नीश दोष रहित तथा वाणीना
पांश्रीश गुण सहित परमात्मरूप आपना वचनोना
पसाये ज्ञानावरणादि कर्म रोगने अस्थंत दूर करी
आत्म वीर्यनी संपूर्ण वृद्धि पुष्टि करनार देवतत्त्व,
गुरु तत्त्व, अने धर्मतत्त्वनी मने प्राप्ति थई छे तेथी
माहरी चित्त वृत्ति मनोज्ञ अमनोज्ञ पर द्रव्यथी
निवृत्त थई प्रभुनी आज्ञा पालवा रूप भक्तिमां लीन
थशे तेथी माहरा ज्ञानावरणादि सर्वे भाव रोगो
सूर्यथी जेम अधिकार नष्ट थाय तेम तत्काल विना-
प्रयासे नष्ट थई जशे. एवा निश्चयथी मारो भव
अमणनो अस्थंत भय दूर थयो छे ॥ ७ ॥

जिनवर वचन अमृत अनुसरिये, तत्त्व
रमण आदरिये रे ॥ प्र० ॥ द्रव्य भाव

आत्मव परिहरिये, देवचंद्र पद वरियेरे ॥ प्र० ॥
श्री० ॥ ८ ॥

अर्थ:-जिनेश्वरना अमृत समान वचन अनु-
सारे वर्त्तीए, तत्त्व रमणना ग्राहक थईए, द्रव्यास्त्रव
तथा भावास्त्रवनो त्याग करीए तो देवमां चंद्रमा
समान सिद्ध पद वरिये-

हे सुषाहु जिनेश्वर ! आप सर्वज्ञ अने वीतराग
होवाथी साचा आस छो. आपनांज वचन आचार
गति रूप अत्यंत भयंकर पारावार भव समुद्रथी
पार उतारी शिव स्थानके पहुँचाडवाने अद्वितीय
नौका समान छे तथा दुष्ट ज्ञानावरणादि कर्म रोग
बडे पीडाता दुर्बल आत्म वीर्यथी हीण थएलाने
ते रोग दूर करी आत्म वीर्ये संपूर्ण पुष्ट करवाने
अमृत समान छे. माटे जो आपना वचनने हमे
अनुसरीये-ते प्रमाणे वर्त्तीए अने शुद्धात्म तत्त्वनुं
रमण करीए-तेमां लीन थईए तथा अभिनिवेशादि
पांच मिथ्यात्व, हिंसादि पांच अव्रत, तथा क्रोधा
दिक कषाय, विकथादि प्रमाद तथा औदारिक काय
योग आदि योगनो परिहार करीए-राग द्वेषादि
विभावनो त्याग करीए तो नवां कर्म आवतां बंध
थाय अने पूर्व संचित कर्मनी निर्जरा थाय तेथी

देवमां चंद्रमा समान परमात्म पदनी प्राप्ति थाय
 अतीन्द्रिय अव्याबाध अनंत सुखनी प्राप्ति थाय
 उक्तंच “ पंचासब्ब बिरत्ता, विषय विजुत्ता
 समाहि संपत्ता, राग दोष विमुत्ता, मुणिणो
 साहंति परमच्छ ” ॥ ८ ॥

(संपूर्ण)

॥ अथ पंचम श्री सुजात स्वामी जिन स्तवन ॥

देहुं देहुं नणद हठीली ॥ ए देशी ॥

स्वामी.सुजात सुहाया, दीठा आणंद उपाया
 रे, मन मोहना जिनराया । जिणे पूरण तत्त्व-
 निपाया, द्रव्यास्तिक नय ठहराया रे, मन
 मोहना जिनराया ॥ स्वामी० ॥ १ ॥

पर्यायास्तिक नय राया, ते मूल स्वभाव
 समाया रे, मन मोहना जिनराया । ज्ञानादिक
 स्व परजाया, निज कार्य करण वरतायारे,
 मन मोहना जिनराया ॥ स्वामी० ॥ २ ॥

અર્થ:-હે સુજાત સ્વામી ! સર્વે સ્વપર્યાયનું
 કારણ દ્રવ્ય છે પણ દ્રવ્યનું કારણ અન્ય દ્રવ્ય હોઈ
 શકે નહિ તૈથી આપ સ્વયં સિદ્ધ છો. સ્વયં બુદ્ધ છો,
 સર્વ પર-દ્રવ્યની કામનાથી રહિત પરમ સંતુષ્ટ છો,
 તથા અહોંદ્રિય અવ્યાબાધ, અનુપમ, નિરૂપચરિત,
 સ્વાધીન, અપૃથગ્ભૂત, અનંત, સહજ, આત્મ સુખના
 નિરંતર ભોક્તા, અનુભવ લેનાર છો, સુખાત્મા છો,
 ઉક્તંચ “ જાદો સયં સ ચેદા, સવણદૂ સવ્વ
 ભોગ દરસીય । પપ્પોદિ સુહમણંતં, અવ્વાવાહં
 સગમ મુત્ત ” ॥ માહરા ચિત્તને સુહંકર લાગ્યા
 છો, અનંત ગુણના નિધાન આપ સ્વજાતિનું દર્શન
 થતાં અપૂર્વ આનંદ રૂપ જલ વડે માહરું ચિત્ત સરો-
 વર ભરપૂર થયું, અજ્ઞાન કષાયના પાત્ર પર દ્રવ્યા-
 દિની ચાહ દાહમાં નિરંતર પ્રજ્વલિત થતાં શુદ્ધાત્મ
 અનુભવ રૂપ સુગંધથી રહિત હરિહરાદિ કુદેવોને
 કરીરાદિ વૃક્ષોની પેઠે ત્યાગી શુદ્ધાત્મ અનુભવ રૂપ
 અનંત સુગંધથી ભરપૂર આપના પદ કમલમાં માહરું
 મન મોહિત થયું છે, ત્યાંથી રંચ માત્ર પણ યસવા
 ચાહાતું નથી; માટે હે જિનેશ્વર ! જગત્ ત્રયમાં
 આપજ ભવ્ય જીવોના મન મોહન છો. જે આપે
 અનાદિ કાલથી લાગેલા આત્મ ગુણ રોધક જ્ઞાના-

વરણાદિ કર્મ મલને બાહ્ય અભ્યંતર તપ વડે દૂર
 કરી પોતાના આત્મ તત્ત્વની એવંભૂત નયે સિદ્ધિ
 કરી છે અર્થાત્ સર્વે આત્મ ગુણો સંપૂર્ણ નિર્મલ તથા
 સ્વાધીન કરી લીધા છે માટે હવે કંઈ પણ કરવાનું
 આપને બાકી રહ્યું નથી તેથી આપ નિષ્ક્રિય વિરૂદ્ધને
 સંપૂર્ણ પ્રાપ્ત થયા છો, અનંતાનંદના સ્વામી થયા છો
 તથા આત્મ ધર્મને મલિન કરવાના તથા ભવ ભ્રમ-
 શના નિમિત્ત અજ્ઞાન મિથ્યાત્વ કષાય અને યોગનો
 સર્વથા અભાવ કર્યો છે તેથી આપનો કોઈ પણ ગુણ
 પર્યાય હવે કોઈ પણ કાલે રંચમાત્ર પણ મલિન
 થવાનો નથી તથા તેમજ તે સિદ્ધિ અવસ્થાથી આપ
 કોઈ પણ કાલે વ્યૂત થવાના નથી. દ્રવ્યાસ્તિક
 નયે આપ સદા અવસ્થિત રહી ચેતનતામાં સમાતા
 પોતાના શુદ્ધ અનંત પર્યાયનું રાજ્ય ભોગવો છો.
 જ્ઞાનાદિક સર્વે પર્યાયોને સ્વકાર્ય કરવામાં નિરંતર
 પ્રવર્ત્તાવો છો અર્થાત્ જ્ઞાન ગુણ વડે અનંત દ્રવ્યના
 ત્રિજાલવર્તી અનંત ગુણ પર્યાયને સમકાલે પ્રત્યક્ષ પળે
 જાણો છો, દર્શન ગુણ વડે સર્વે દ્રવ્યના અસ્તિત્વાદિ
 સામાન્ય સ્વભાવને સમકાલે દેખો છો, ચારિત્ર ગુણ
 વડે સર્વ પરભાવથી નિવૃત્ત પળે અનંત જ્ઞાનાદિક
 સ્વધર્મમાં નિરંતર રમણ કરો છો અને આપનું આત્મ

ને જોનારા એહવા છે પ્રભુ ! આપેજ નય અને પ્રમાણના માર્ગ વડે દુર્નય માર્ગને દૂર કર્યો છે તે નયના વિસ્તારથી અનેક ભેદ છે (વ્યાસતો નેક વિકલ્પઃ) કારણ કે વસ્તુ અનંત ધર્માત્મક છે અને તે અનંત ધર્મેનું નિરૂપણ કરવાને વચન માર્ગ પણ અનંત હોય માટે જેટલાં વચન તેટલા સર્વ નયવાદ કહેવાય “જાવડ્યા વયળ પહા, તાવડ્યા ચેવ ટૂંન્તિ નયવાયા” તો પણ તે સર્વે નયવાદોનો સંગ્રહ કરનારા એહવા સાત અભિપ્રાયની કલ્પનાના દ્વારે કરીને સાત નયો પ્રતિપાદન કરેલા છે તેનાં નામનૈગમ, સંગ્રહ, વ્યવહાર, રુજુસૂત્ર, શબ્દ, સમભિરૂઢ અને એવંભૂત. તેમાંથી પ્રથમના ચાર નયો દ્રવ્યાર્થીક નયમાં અને શબ્દાદિ ત્રણ નયોને પર્યાયાર્થીકમાં સમાય છે તે ત્રણ ભાવનય છે.

સમાસતો દ્વિભેદઃ દ્રવ્યાર્થીકઃ પર્યાયાર્થીકઃ તત્ર દ્રવ્યાર્થીક શ્વતુર્ધા નૈગમ, સંગ્રહ, વ્યવહાર, રુજુસૂત્ર ભેદાત્ પર્યાયાર્થીકાસ્ત્રિધા શબ્દ સમભિરૂઢ એવંભૂત ભેદાત્”

શ્રી સિદ્ધસેન દિવાકર રુજુસૂત્રનયને પર્યાયાર્થીકમાં,

ગણે છે માટે તેમના અભિપ્રાયે નૈગમાદિ ત્રણ નય દ્રવ્યાર્થિક અને રૂજુસૂત્રાદિ ચાર નય પર્યાયાર્થિક છે. દ્રવ્યને સામાન્યપણે નિરૂપણ કરનારા પ્રમાતાના અભિપ્રાયો જેઓનો આધના ચાર નયમાં સમાવેશ થાય છે તે દ્રવ્યાર્થિક છે અને જે અભિપ્રાયો શબ્દના અર્થની મૂલ્યતા ધરાવે છે તે શબ્દાદિક ત્રણ નય પર્યાયાર્થિક છે માટે આદિના ચાર નય તે અવિશુદ્ધ છે અને શબ્દાદિક ત્રણ નય તે વિશુદ્ધ છે ઉત્તંચ-આદ્ય નય ચતુષ્ટય માર્વિશુદ્ધ પદાર્થ પ્રરૂપણા પ્રવળત્વાત્ અર્થ નયા નામ દ્રવ્યત્વ સામાન્ય રૂપા નયાઃ શબ્દાદયો વિશુદ્ધ નયાઃ શબ્દાવલંબાર્થ મૂલ્યત્વાત્

તથા ચ સ્યાદ્વાદમંજરૌ ચે કેચનાર્થ, નિરૂપણ પ્રવળાઃ પ્રમાત્ર ભિપ્રાયાસ્તે સર્વેઽપ્યાદ્યેનય ચતુષ્ટયેઽન્તર્ભવતિ ચે ચ શબ્દવિચાર ચતુરાસ્તે શબ્દાદિ નય ત્રય ઇતિ ॥

॥ તથા રત્નાકરાવતારિકા ગ્રંથે “ દ્રવતિ દ્રોષ્યતિ અદ્રુદ્રવત્ તાંતાન્ પર્યાયાનિતિ

વીર્ય તે પણ જ્ઞાનાદિક અનંત સ્વધર્મ પરિણમાવવામાં
વર્તે છે. એમ આપના સર્વે પર્યાયો પોત પોતાનું કાર્ય
કરવામાં સ્વાધીન પણે વર્તીવો છો વલી હે સર્વે
નીતિમાનમાં શિરોમણિ ! દ્રવ્યના યથાર્થ સ્વરૂપનો
બોધ થવા માટે આપે દ્રવ્યાસ્તિક અને પર્યાયાસ્તિક
એ બે મૂલ્ય નયો ઠરાવ્યા છે. જેમાં સર્વે નયનો સમા-
વેશ થઈ જાય છે તે નયના યથાર્થ જ્ઞાનવડે વસ્તુનું
સ્વરૂપ યથાર્થ સાક્ષાત્ વત્ જણાય છે-ભાસે છે ॥૧॥
અંશ નયમાર્ગ કહાયા, તે વિકલ્પ ભાવ સુણા-
યારે ॥ મન ૦ ॥ નય ચાર તે દ્રવ્ય થપાયા,
શબ્દાદિક ભાવ કહાયારે ॥ મન ૦ ॥ ૩ ॥

અર્થ-નય તે પદાર્થના જ્ઞાનને વિષે જ્ઞાનના અંશ
છે, વસ્તુ અનંત ધર્માત્મક છે અર્થાત્ જીવાદિક દેરંક
પદાર્થમાં અનંતા ધર્મ છે. તેમાંથી જે સ્વાભિષ્ટ એક
ધર્મેને મુખ્યતાપ ગણે છે તેમાં રહેલા બીજા ધર્મ,
પ્રતિ ઉદાસિનતા રાખે છે તે નય છે હત્તંત્ર-સ્યાદ્વાદ
મંજરીમાં “ નીયતે પરિચ્છિદતે એક દેશ વિશિષ્ઠોર્થ
આભિરિતિ નીતયો નયાઃ તથા રત્નાકરે, નીયતે
યેન શ્રુ તાઘ્યા પ્રમાણ વિષયી કૃતસ્યાર્થ સ્યાં-
શસ્ત્રદિતરાંશૌદાસીન્યતઃ સ પ્રતિપત્તુરભિપ્રાય

વિશેષો નયઃ” એમ દરેક નયો વસ્તુના સ્વાભિષ્ટ એક
અંશને પ્રતિપાદન કરે છે તેથી તે વિકલ્પ આગ છે. જે
एकांते પોતાના અભિષ્ટ ધર્મનેજ સ્થાપન કરે છે તેમાં
રહેલા ધીજા ધર્મોને તિરસ્કારે છે. ઓલવે છે, અપેક્ષા
રાખતો નથી તે દુર્નય અથવા નયાભાસ છે. સ્વાભિ-
પ્રેતાદંશા દિતરાંશા પલાપી પુનર્નયાભાસ :”

અને જે વસ્તુમાં રહેલા કોઈ પણ ધર્મને તિરસ્કારતો નથી
અર્થાત્ તેની અપેક્ષા રાખે છે એમ જતાવવાને સ્યાત્-
પદ યુક્ત અભિષ્ટ ધર્મનું પ્રતિપાદન કરે છે તે સુનય
છે, સ્યાદ્વાદ છે, પ્રમાણ વાક્ય છે, તેજ હે જિનેશ્વર !
આપના પરમ આગમનું ધીજ [જીવન] છે, જે સર્વે
एकांत વાદે મચેલા ઉનમત્ત હાથી ઉના મદને મંજન
કરવાને મિહ મમાન છે, વસ્તુનું યથાર્થ સર્વાંગે સ્વરૂપ
જાણ્યા દિવ્ય જ્ઞાનદ્રષ્ટિ છે, ઉક્તંચ-સ્યાદ્વાદમજરૌ-
રાગ-ઉપેદ્રવજ્ઞા ॥ ‘ સદેવ સત્સયાત્ સદિતિ

ત્રિધાર્થો, મીયેત દુર્નીતિ નય પ્રમાણૈ; યથાર્થ
દર્શાતિ નયપ્રમાણ, પથેન દુર્નીતિ પથં ત્વમાસ્થઃ
અર્થ-સત્યજ છે, સત્ છે અને સ્યાત્ સત્ છે એવી
રીતનો ત્રણ પ્રકારનો અર્થ અનુક્રમે દુર્નય, નય અને
પ્રમાણ વડે માપી શકાય છે અને યથાસ્થિત પદાર્થ

ने जोनारा एहवा हे प्रभु ! आपेज नय अने प्रमाणना मार्ग वडे दुर्नय मार्गने दूर कर्यो छे ते नयना विस्तारथी अनेक भेद छे (व्यासतो नेक विकल्पः) कारण के वस्तु अनंत धर्मात्मक छे अने ते अनंत धर्मेतुं निरूपण करवाने वचन मार्ग पण अनंत होय माटे जेटलां वचन तेटला सर्व नयवाद कहेवाय “जावइया वयण पहा, तावइया चेव हुन्ति नयवाया” तो पण ते सर्वे नयवादोनो संग्रह करनारा एहवा सात अभिप्रायनी कल्पनाना द्वारे करीने सात नयो प्रतिपादन करेला छे तेनां नामनैगम, संग्रह, व्यवहार, रजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ अने एवंभूत. तेमांथी प्रथमना चार नयो द्रव्यार्थीक नयमां अने शब्दादि त्रण नयोने पर्यायार्थिकमां समाय छे ते त्रण भावनय छे.

समासतो द्विभेदः द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिकः
तत्र द्रव्यार्थिकश्चतुर्धा नैगम, संग्रह, व्यव-
हार, रजुसूत्र भेदात् पर्यायार्थिकस्त्रिधा
शब्द समभिरूढ एवंभूत भेदात्”

श्री सिद्धसेन दिवाकर रजुसूत्रनयने पर्यायार्थिकमां

गणे छे माटे तेमना अभिप्राये नैगमादि त्रण नय
द्रव्यार्थिक अने रूजुसूत्रादि चार नय पर्यायार्थिक
छे. द्रव्यने सामान्यपणे निरूपण करनारा प्रमाताना
अभिप्रायो जेओनो आद्यना चार नयसां समावेश
थाय छे ते द्रव्यार्थिक छे अने जे अभिप्रायो शब्दना
अर्थनी मुख्यता धरावे छे ते शब्दादिक त्रण नय
पर्यायार्थिक छे माटे आदिना चार नय ते अविशुद्ध
छे अने शब्दादिक त्रण नय ते विशुद्ध छे उक्तंच-
आद्य नय चतुष्टय माविशुद्ध पदार्थ प्ररूपणा
प्रवणत्वात् अर्थ नया नाम द्रव्यत्व सामान्य
रूपा नयाः शब्दादयो विशुद्ध नयाः शब्दाव-
लंवार्थ मुख्यत्वात्

तथा च स्याद्वादमंजरी ये केचनार्थं, निरूपण
प्रवणाः प्रमात्र भिप्रायास्ते सर्वेऽप्याद्यनय
चतुष्टयेऽन्तर्भवति ये च शब्दविचार चतुरास्ते
शब्दादि नय त्रय इति ॥

॥ तथा रत्नाकरावतारिका ग्रंथे “ द्रवति
द्रोष्यति अद्रुद्रवत् तांतान् पर्यायानिति

द्रव्यं तदेवार्थः, सोऽस्ति यस्य विषयत्वेन
स द्रव्यार्थिकः ”

“ पर्येति उत्पाद विनाशौ प्राप्नोतीति पर्यायः
स एवार्थः स अस्ति यस्यासौ पर्याया-
र्थिकः ” ॥ ३ ॥

दुर्नय ते सुनय चलाया, एकत्व अभेदे
ध्यायारे ॥ मन० ॥ ते सांव परमार्थ समाया,
तसु वर्त्तन भेद गमायारे ॥ मन० ॥ ४ ॥

अर्थः—सुनयनं लक्षण कहे छे. “ स्वार्थ ग्राही
इतरांशाप्रतिक्षेपी सुनय इति सुनय लक्षणं”
कुनयनं लक्षण कहे छे. “ स्वार्थ ग्राही इतरांश-
प्रतिक्षेपी दुर्नय इति दुर्नय लक्षणं” अर्थः—स्वा-
भिष्ट धर्मने गवेषतां बीजा धर्मोनी अपेक्षा नहि
राखनार बीजा धर्मोने ओलवनाः जे दुर्नयो तेने
दूर करी स्वाभिष्ट धर्मथी इतर सर्वे धर्मोनी अपेक्षा
राखी स्यात्पदे शोभता सुनय—अनेकांत वादनी
प्रवृत्ति करी, ते अनेकांत—स्याद्वादनये वस्तुनं
संपूर्ण स्वरूप जाणी सर्वे धर्मो वस्तुथी एकत्व तथा

अभेद अर्थात् कोई काले जूदा नहि पड़े एम चित्तमां
चित्तन करी धारणा करी ते सर्वे नयोने परमार्थ
एटले शुद्ध द्रव्यस्वरूपमां समाव्या, तज्जन्य एक
शुद्धात्म अनुभूनिने भोगववा लाग्या, नयोनी वर्त्तना
रूप विकल्पनो नाश थयो उक्तंच-उपेन्द्रवज्रा.

य एव सुवत्वा नय पक्षपातं, स्वरूप गुप्ता
निवसन्ति नित्यं विकल्पजाल व्युत शान्त-
चित्ता, स्तएव साक्षादमृतं पिवन्ति ॥ ४ ॥
स्याद्वादी वस्तु कर्हाजे, तसुधर्म अनंत
लह्हाजे रे ॥ मन० ॥ सामान्य विशेषनुं
धाम, ते द्रव्यास्तिक परिणाम रे ॥ मन० ॥ ५ ॥

अर्थ:-वस्तु अनंत धर्मात्मक छे अर्थात् अनंता
धर्मो वस्तुमां समकाले होय छे. जेम स्वद्रव्यादि
चतुष्टये वस्तु अस्ति स्वभाववंत छे. पर द्रव्यादि
चतुष्टये वस्तु नास्ति स्वभाववंत छे. तैमज नित्य
अनित्य, एक, अनेक, भेद, अभेद, भव्य, अभव्य,
वक्तव्य अवक्तव्य, विगेरे स्वभाववंत वस्तु ०
छे माटे जो तेमांथी स्वाभिष्ट एक स्वभावने एकांते
गवेषीये, निश्चय करीये तो वस्तुनुं ज्ञान यथार्थ थाय
नहीं पय जो स्यात् अस्ति, स्यात् नित्य, स्यात्

एक विगरे अनेकांते गवेषीये तो बाकी रहेला बीजा थर्मोनी पण सूचना थाय एम सर्वे वस्तु स्याद्वाद अनंत धर्मात्मक छे तेथी स्याद्वाद वडे वस्तुमां रहेला अनंत धर्मो बोध थाय.

वली अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रमेयत्व, सत्त्व, ए व मूल सामान्य तथा अस्तित्व-स्वभाव, नास्तित्वस्वभाव नित्यस्वभाव, अनित्यस्वभाव, एकस्वभाव, अनेकस्वभाव, भेदस्वभाव, अभेदस्वभाव भव्यस्वभाव, अभव्यस्वभाव, वक्तव्यस्वभाव, अवक्तव्यस्वभाव, परमस्वभाव विगरे उत्तरसामान्य स्वभाव वस्तुमां अनंता छे तथा जीनमां चेतनता अनुयायी अनेक विशेष स्वभाव छे तेम धर्मास्तिकायमां गति सहायादि, तथा अधर्मास्तिकायमां स्थितिसहाय आदि तथा आकाशमां अवगाहदान आदि तथा पुद्गलमां पूरण गलनादि अनंत धर्मो छे ते अनंत सामान्य स्वभाव तथा विशेष स्वभावनो आधारभूत जे अस्तित्व-धर्म ते सर्वे द्रव्यमां सदाय समकाले परिणमे छे. उक्तंच. “ नित्यत्वादीनां उत्तर सामान्यानां परिणामिकत्वादीनां विशेष स्वभावानामाधार-

ભૂત ધર્મત્વં અસ્તિત્વં ” વિગેરે ॥ ૫ ॥

જિનરૂપ અનંત ગણીજે, તે દિવ્યજ્ઞાન જા-
ણીજે રે ॥ મન૦ ॥ શ્રુત જ્ઞાને નય પથ
લીજે, અનુભવ આસ્વાદન કીજે રે । મન૦ ॥ ૫ ॥

અર્થ:-જિનેશ્વર નિર્મલ જ્ઞાનાનુયાયી અનંત
રમેણીય ગુણના સમૂહ અનંત ધર્મે વિરાજમાન છે
અપ્રતિહત્ મહાન તેજસ્વી અઘંડ એક જ્ઞાન મૂર્તિ
છે, ઇન્દ્રિય વિષયથી અતીત છે, જ્ઞાનસ્વરૂપી જ્ઞાન-
ગમ્ય છે, તેથી તેઓને રાગદ્વેષ રૂપ મલીમતાથી
રહિત માત્ર શુદ્ધ દિવ્યજ્ઞાનવદે જાણી શકીયે માટે
જિનેશ્વર તે અનંત ગુણાત્મક અર્થાત્ જિનેશ્વરના
અનંત ગુણોને શુદ્ધ નયે જાણકું તેજ સુંદર અનુપમ-
જ્ઞાન છે તે માટે અનંત ગુણાત્મક જિનેશ્વરને સમ્ય-
કપ્રકારે જાણવા માટે ભવસમુદ્રમાં નૌકા સમાન
સવેજી વીતરાગ પ્રરૂપિત શ્રુતજ્ઞાનના પ્રસાદથી
સુનય-સ્યાદ્વાદ માર્ગ ગ્રહણ કરીએ. અને શુદ્ધ નયે
જાણી તત્સ્વરૂપના અનુભવનો આનંદ પામીએ-
ભોગવીએ. ઉક્તંચ-રાગ વસંતતિલકા વૃત્તમ-
“ નૈકાન્ત સંગત દૃશા સ્વયમેવ વસ્તુ, તત્ત્વ

धारी हूं. जो आपनी आज्ञाने मस्तके चढ़ावी
तदनुसार सम्यक्पराक्रम बजावी सम्यक्दर्शन
ज्ञान चारित्र्यने आदरुं-सेवुं तो आप सदृश परमा-
नंद भोगने निःसंदेह प्राप्त थाउं. उक्तंच- “तत्त्वार्थ
श्रद्धानं सम्यग् दर्शनं, यथार्थ हेयोपादेय
परीक्षा युक्त ज्ञानेन सम्यग्ज्ञानं, स्वरूप
रमणं पर परित्याग रूपं चारित्रं येतद्रत्नत्रयी
रूप मोक्ष मार्ग साधनात् साध्य सिद्धिः ”
एम में आपना न्याय युक्त अबाध्य वचनना प्रसादे
परीक्षा पूर्वक माहरी सत्तानो निर्धार कर्यो छे ॥७॥

तुं तो निज संपत्तिनो भोगी, हुं तो पर
परिणातिनो योगी रे ॥ मन० ॥ तिण तुम
प्रभु माहरा स्वामी, हुं सेवक तुज गुण
ग्रामी रे ॥ मन० ॥ ८ ॥

अर्थ:-हूं अनादिथी कर्म शत्रुनी जेलमां पडेलो
होवाथी अनंत काल सुधी माहरी ज्ञानादि अखूद
लक्ष्मीनुं मने दर्शन पण न मल्युं तेथी जड चल
जगत् जीवनी एंव, जलना परपोटा जेवी क्षण-
भंगुर, पराधीन, चाहदाहथी बालनार, माहराथी

दूरवर्त्ती थई अनेक प्रकारना शोक दुःख उपजावनार,
तेना काल प्रमाणे वर्त्तनार, सदा अतृप्त राखनार,
जेनो भोग किंषाकफलनी पेठे प्राण घानक, एवी
जे पुद्गल परिणति (पौद्गलीक विषयो) तेमां

हुं भोग सुख मानी मग्न, तल्लीन थई रह्यो, माहरी
कर्त्तृत्व, भोक्त्तृत्व ग्राहकत्व, व्यापकत्व, दान
लाभ, भोग, उपभोग आदि परिणतिने तद्गत
करी संसार परिपाटीने बधारी उक्तंच- “ जों

अपसत्थोरागो, बहुइ संसार भमणं परिवाडी ।
विसयाइसु सयणाइसु, इष्टं पुग्गलाइसु ॥ ”

माहरी अनुपम अखूट ज्ञानादिक संपदाथी वियोगी
रह्यो पण हे भगवंत ! आप तो आत्म संपदाना
भोगमां अंतराय करनार कर्मशत्रुनो सम्यक्चारित्र
बडे समूल नाश करी अनंतज्ञान, अनंतदर्शन,
अनंतसुख, अनंतवीर्य अनंतदान, अनंतलाभ,
अनंतभोग अनंतउपभोग आदि स्वसंपदानो लाभ
मेलवी स्वाधीन करी निरंतर निष्कण्टक पणे ज्ञानादि
अनंत अचल निरुपचरित अनुसर आत्म संपदानो
भोगमां अत्यंत मग्न थया छो. तेथी हे प्रभु ! आप-
नेज माहारा स्वामी जाणुं. छुं, आपथीज माहरो
मनोर्थ परिपूर्ण थशे. आपनाज दर्शनथी मारी

व्यवस्थितिमिति प्रावल्लोक यन्तः ॥ याद-
वाद शुद्धि माधिका माधिगन्य सन्तो, ज्ञानी
भवन्ति जिन कीति मलन्धयन्तः ” भावार्थ-
सर्वे वस्तु सङ्ग अनेकांतात्मक छे माटे जिनेश्वरना
स्याद्वाद न्यायने नहि उलंघन करतां वस्तु तत्त्वनी
अनेकांतात्मक व्यवस्था सन्मुख दृष्टि राखी स्या-
द्वादनि अधिक शुद्धिने अंगीकार करी सत्पुरुषो
ज्ञानी बने छे-ज्ञानपद धारण करे छे. ॥ ५ ॥

प्रभु शक्ति व्याक्ति एक भावे, गुण सर्वरह्या
समभावेरे ॥ मन० ॥ माहरे सत्ता प्रभु
सरखी, जिन वचन पसाये परखीरे ॥
मन० ॥ ७ ॥

अर्थ:-हे त्रिलोकपूज्य प्रभु ! आपनी ज्ञान
दर्शन सुख वीर्यादि सर्व शक्तिउं व्यक्त अर्थात्
निरावरण थई छे, अबाधित पणे पोताना शुद्ध
कार्ये परिणमे छे, आगामी अनंतकाल सुधी
एमज परिणमवाने शक्तिमान छे, कोइ पण काले
क्षीणता पामे नेम नथी कारण के द्रव्यमां सामर्थ्य
पर्याय तथा छती पर्याय अनंत छे माटे आपनी

શક્તિ વ્યક્તિ એક ભાવે છે તથા આપ અમુક વર્તમાન સમયે સર્વે દ્રવ્યના ત્રિકાલવર્તી પયાર્થોને સમકાલે પ્રત્યક્ષ પળે જાણો છો અર્થાત્ આ સમયે આવી રીતે પરિણમે છે, આવતે સમયે અમુક રીતે પરિણમશે પછી ઘીજે સમયે અનાગતને વર્તમાન પળે જાણો છો અને વર્તમાન પરિણતિને ભૂતપળે જાણો છો એમ ઉત્પાદ વ્યયને ભોગવો છો પણ આપની કોઈ પણ શક્તિ હવે આવૃત્ત નથી કે જે હવે પ્રગટ વ્યક્ત થાય માટે સર્વે શક્તિ વ્યક્તિ એક ભાવે છે. તથા જ્ઞાન શુદ્ધ જ્ઞાનપળે, દર્શન શુદ્ધ દર્શનપળે, એમ આપના સર્વે ગુણો રાગ દ્વેષ મોહ વિગેરેથી રહિત સમભાવે પરિણમે છે કારણ કે વિષય પરિણામના હેતુ અજ્ઞાન મિથ્યાસ્વ કષાય-નો આપે સમૂલ નાશ કર્યો છે વલ્લી જેમ આપ અચલ સિદ્ધ સ્વક્ષેત્રમાં વસી સ્વતંત્ર પળે અનંત જ્ઞાન, અનંત દર્શન, અનંત સુખ, અનંત વીર્ય, અવ્યાવાધતા, અટલ અવગાહના, અગુરુલઘુત્ત્વ, અમૂર્તિત્ત્વ, અજરતા, અમરતા, નિર્ભયતા, નિરામયતા, નિરાકુલતા, નિર્દ્વેષતા, નિસ્પૃહતા આદિ અનંત ગુણ જન્ય આનંદ સમૂહના વિલાસી થયા છો તેમજ હું પણ સંગ્રહ નયે આપ સમાન સત્તા-

धारी छुं. जो आपनी आज्ञाने मस्तके चढ़ावी
तदनुसार सम्यक्पराक्रम बजावी सम्यक्दर्शन
ज्ञान चारित्र्यने आदरुं-सेवुं तो आप सदृश परमा-
नंद भोगने निःसंदेह प्राप्त थाउं. उक्तंच- “तत्त्वार्थ
श्रद्धानं सम्यग् दर्शनं, यथार्थ हेयोपादेय
परीक्षा युक्त ज्ञानेन सम्यग्ज्ञानं, स्वरूप
रमण पर परित्याग रूपं चारित्र्यं येतद्रत्नत्रयी
रूप मोक्ष मार्ग साधनात् साध्य सिद्धिः ”
एम में आपना न्याय युक्त श्रवाध्य वचनना प्रसादे
परीक्षा पूर्वक माहरी सत्तानो निर्धार कर्यो छे ॥७॥

तुं तो निज संपत्तिनो भोगी, हुं तो पर
परिणातिनो योगी रे ॥ मन० ॥ तिण तुम
प्रभु माहरा स्वामी, हुं सेवक तुज गुण
ग्रामी रे ॥ मन० ॥ ८ ॥

अर्थ:-हुं अनादिथी कर्म शत्रुनी जेलमां पडेलो
होवाथी अनंत काल सुधी माहरी ज्ञानादि अखूद
लक्ष्मीतुं मने दर्शन पण न मल्युं तेथी जड चल
जगत् जीवनी एंव, जलना परपोटा जेवी क्षण-
भंगुर, पराधीन, चाहदाहथी बालनार, माहराथी

दूरवर्त्ती थई अनेक प्रकारना शोक दुःख उपजावनार,
तेना काल प्रमाणे वर्त्तनार, सदा अतृप्त राखनार,
जेनो भोग किंपाकफलनी पेठे प्राण घानक, एवी
जे पुद्गल परिणति (पौद्गलीक विषयो) तेमां

हुं भोग सुख मानी मग्न, तल्लीन थई रह्यो, माहरी
कर्तृत्व, भोक्तृत्व ग्राहकत्व, व्यापकत्व, दान
लाभ, भोग, उपभोग आदि परिणतिने तद्गत
करी संसार परिपाटीने वधारी उक्तंच- “ जौ

अपसत्थोरागो, वहुइ संसार भमणं परिवाडी ।

विसयाइसु सयणाइसु, इष्टं पुगलाइसु ॥ ”

माहरी अनुपम अखूट ज्ञानादिक संपदाथी वियोगीं
रह्यो पण हे भगवंत ! आप तो आत्म संपदाना
भोगमां अंतराय करनार कर्मशत्रुनो सम्यक्चारित्र
वडे समूल नाश करी अनंतज्ञान, अनंतदर्शन,
अनंतसुख, अनंतवीर्य अनंतदान, अनंतलाभ,
अनंतभोग अनंतउपभोग आदि स्वसंपदानो लाभ
मेलवी स्वाधीन करी निरंतर निष्कण्टक पणे ज्ञानादि
अनंत अचल निरुपचरित अनुसार आत्म संपदानां
भोगमां अत्यंत मग्न थया छो तेथी हे प्रभु ! आप-
नेज माहारा स्वामी जाणुं छुं, आपथीज माहरो
मनोर्थ परिपूर्ण थशे. आपनाज दर्शनथी मारी

स्वयं आत्म लक्ष्मीना स्वामी श्री स्वयं प्रभु स्वामी-
 ने हजारवार-वारंवार, निरंतर, भामणे जाउं अत्यंत
 प्रमोद भावना वडे गुणानुरागी थइ सेवा
 भक्तिमां लीन थाऊं. के जेनो “वस्तु धरम पूरण
 नीपन्यो” अर्थात् अनादी कालथी ज्ञानावर्णादि
 कर्मवडे आवृत थइ रहेला होवाथी ज्ञानादि आत्म
 धर्मो पोतानुं कार्य शुद्ध रीतेकरी शकता नहोता,
 परवश परानुयायी थइ रह्या हता, कर्मबंधनना हेतु
 थइ रह्या हता, ते सर्वे धर्मो संपूर्ण प्रगटव्यक्त थया
 छे, तदन निरावरण थया छे, अप्रतिहत् पणे-पोताना
 शुद्ध कार्ये निरंतर परिणामे छे तेथी अखंड अचल
 अविनाशी परमानंद दशाने प्राप्त थया छे परम नि-
 र्भय निराकुल दशामां अनंत शुद्धात्म अनुभूतिमां
 तल्लीन थइ रह्या छे. तथा “भाव कृपा किरतार”
 अर्थात् चार गतिरूप अपरिमित भयंकर भवाटवीम
 विषय कषाय-वशे छेदन भेदन ताडन तर्जन तिर-
 स्कार वियोग शोक भय आक्रंद विगरे अनेक
 प्रकारनां असह्य शारीरिक तथा मानसिक दुःखों
 दीन अनाथपणे भोगवताने, अत्यंत कारुण्य भाव-
 नावडे सम्यक्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप मोक्ष मार्गे
 दोरी, तेओना दुःखनो समूल नाश करी परमानंदमय

શિવપુરીમાં વિરાજમાન કરો છો. એજ શ્રી સ્વયં-
 પ્રભુ સ્વામીની દયા પરમોત્કૃષ્ટતા ધરાવે છે. પણ
 જે વિષય કષાયની વૃદ્ધિ કરનાર ઉપદેશ, તથા
 પદાર્થો આપી, અજ્ઞાની જીવોની વિષય કષાય તથા
 હિંસાની પ્રવૃત્તિને વધારે છે-તેનાં કારણોને પુષ્ટ
 કરે છે અને હમે દયા કરીએ છીએ એમ કહેનાર
 મિથ્યાભિમાની જીવો તો છે પ્રભુ ! દયાલુ નહિ
 પણ વાસ્તવિક ન્યાયે આપના વચનાનુસાર હિંસાના
 અનુમોદક પ્રતિત થાય છે. ॥ ૧ ॥

દ્રવ્ય ધરમ તે હો જોગ સમારવા, વિષયા-
 ઢિક પારિહાર ॥ આતમશક્તિ સ્વભાવ સુધર્મ-
 નો, સાધનહેતુ ઉદાર ॥ સ્વામીં ० ॥ ૨ ॥

અર્થ:-પ્રાણાતિપાત; મૃષાવાદ, અદત્તાદાન,
 મૈથુન, પરિગ્રહ, ક્રોધ માન, માયા, લોભ, રાગ,
 દ્વેષ, કલહ, અભ્યાખ્યાન, પૈશુન્ય, ગતિઅરતિ,
 પરપરિવાદ, માયામૃષાવાદ તથા મિથ્યાત્વશલ્ય એ
 પાપસ્થાનમાં મન વચન કાયાને ન-પ્રવર્ત્તિતાં સ્યાદ્-
 વાદ-યુક્ત જિનેશ્વરના પવિત્ર-કલ્યાણકારી વચનો
 વાંચવા, સાંભળવા, વિચારવામાં તથા તેના ઉપદેષ્ટા,
 સદ્ગુરુ આદિના વિનય વૈયાવચ્છાદિમાં તથા જ્ઞાન

धारी हूँ. जो आपनी आज्ञाने मस्तके चढ़ावी
तदनुसार सम्यक्पराक्रम बजावी सम्यक्दर्शन
ज्ञान चारित्र्यने आदरुं-सेवुं तो आप सदृश परमा-
नंद भोगने निःसंदेह प्राप्त थाउं. उक्तंच- “तत्त्वार्थ
श्रद्धानं सम्यग् दर्शनं, यथार्थ हेयोपादेय
परीक्षा युक्त ज्ञानेन सम्यग्ज्ञानं, स्वरूप
रमणं पर परित्याग रूपं चारित्र्यं येतद्रत्नत्रयी
रूप मोक्ष मार्ग साधनात् साध्य सिद्धिः ”
एम में आपना न्याय युक्त अबाध्य वचनना प्रसादे
परीक्षा पूर्वक माहरी सत्तानो निर्धार कर्यो छे ॥७॥

तुं तो निज संपत्तिनो भोगी, हुं तो पर
परिणातिनो योगी रे ॥ मन० ॥ तिण तुम
प्रभु माहरा स्वामी, हुं सेवक तुज गुण
ग्रामी रे ॥ मन० ॥ ८ ॥

अर्थ:-हुं अनादिथी कर्म शत्रुनी जेलमां पडेलो
होवाथी अनंत काल सुधी माहरी ज्ञानादि अखूद
लक्ष्मीनुं मने दर्शन पण न मल्युं तेथी जड चल
जगत् जीवनी एंव, जलना परपोटा जेवी क्षण-
भंगुर, पराधीन, चाहदाहथी बालनार, माहराथी

દૂરવર્તી થઈ અનેક પ્રકારના શોક દુઃખ ઉપજાવનાર,
તેના કાલ પ્રમાણે વર્તનાર, સદા અતૃપ્ત રાખનાર,
જેનો ભોગ કિંપાકપલની પેઠે પ્રાણ ધાનક, એવી
જે પુદ્ગલ પરિણતિ (પૌદ્ગલીક વિષયો) તેમાં

હું ભોગ સુખ માની મગ્ન, તહ્લીન થઈ રહ્યો, માહરી
કર્તૃત્વ, ભોક્તૃત્વ ગ્રાહકત્વ, વ્યાપકત્વ, દાન
લાભ, ભોગ, ઉપભોગ આદિ પરિણતિને તદ્ગત
કરી સંસાર પરિપાટીને વધારી ઉક્તંચ- “ જો

અપસંથોરાગો, વહુડ સંસાર ભમણ પરિવાડી ।

વિસથાડસુ સયણાડસુ, ઇટ્ટતં પુરંગલાડસુ ॥ ”

માહરી અનુપમ અખૂટ જ્ઞાનાદિક સંપદાથી વિયોગી
રહ્યો પણ હે ભગવંત ! આપ તો આત્મ સંપદાના
ભોગમાં અંતરાય કરનાર કર્મશત્રુનો સમ્યક્ચારિત્ર
વડે સમૂલ નાશ કરી અનંતજ્ઞાન, અનંતદર્શન,
અનંતસુખ, અનંતવીર્ય અનંતદાન, અનંતલાભ,
અનંતભોગ અનંતઉપભોગ આદિ સ્વસંપદાનો લાભ
મેલવી સ્વાધીન કરી નિરંતર નિષ્કંટક પળે જ્ઞાનાદિ
અનંત અચલ નિરુપચરિત અનુશર આત્મ સંપદાના
ભોગમાં અત્યંત મગ્ન થયા છો તેથી હે પ્રભુ ! આપ-
નેજ માહરા, સ્વામી જાણું છું, આપથીજ માહરો
મનોર્થ પરિપૂર્ણ થશે. આપનાજ દર્શનથી મારી

अखूट लक्ष्मी माहराउपर प्रसन्न थई माहरे स्वाधीन
थई माटे छुं आपनी सेवाने निरंतर चाहनार आपनो
सेवक आपनाज गुण ग्राममां संतोष वृत्ति धारण
करुं छुं ॥ ८ ॥

ए संबंधे चित्त समवाय, मुज सिद्धिनुं
कारण थाय रे ॥ मन० ॥ जिनराजनी सेवना
करवी, ध्येय ध्यान धारणा धरवी रे ॥ मन० ॥ ९ ॥

तुं पूरण ब्रह्म अरूपी, तुं ज्ञानानंद स्वरूपी
रे ॥ मन० ॥ इम तत्त्वालंबन करिये, तो
देवचंद्र पद वरिये रे ॥ मन० ॥ १० ॥

अर्थ:-आपनी सेवामां जो माहुरुं चित्त एकाग्र
थाय, अभेद संबंध धारण करे तो तत्काल माहरा
उपादानमां सिद्धिनुं कारण पद उत्पन्न थाय माटे में
तो निश्चय कर्यो छे के हे जिनेश्वर ! अन्य सकल
परद्रव्यनी सेवा तजी आपनीज सेवामां निरंतर
वसवुं, आपने शुद्ध ध्येय जाणी आपनाज ध्यानमां
निश्चल वृत्ति धारण करवी ॥ ९ ॥

कारण के हे जिनेश्वर ! कोइ पण द्रव्यनी
कामना आपमां जणाती नथी तथा पोतना ज्ञानादि

सर्वे पर्यायोना आप कारण तथा ज्ञाता भोक्ता
 होवाथी आप पूरण ब्रह्म छो. रूप रस गंध स्पर्श
 संस्थान आदि पुद्गल द्रव्यना कोइ पण पर्यायनो
 आपने रंच मात्र पण संश्लेष नथी नेथी आप अरूपी
 छो. आप पोताना ज्ञानजन्य आनंदमां सदा लीन
 छो-तद्रूप छो माटे आपनुं अवलंबन धारण करू
 छुं. कारण के जेम काष्टना अवलंबने लोडु जलमां
 तरी जाय तेम हुं आपना अवलंबने आ भयंकर
 भवार्णवमांथी तरी देवमां चंद्रमा समान शुद्ध
 सिद्ध परमात्म अवस्थाने प्राप्त थईश. ॥ १० ॥

॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ षष्ठम श्री स्वयंप्रभ जिन स्तवनं ॥

मो मनडो हेडाउ हो मिसरि ठाकुरो महदरो
 ॥ एदेशी ॥

स्वामी स्वयंप्रभने हो जाउं भामणे हरखे
 वार हजार ॥ वस्तुधरम पूरण जसु नीपन्यो
 भावकृपा किरतार ॥ स्वामी० ॥ १ ॥

अर्थः—महान् अखूट वैभवधारी इंद्र चंद्र चक्र-
 वर्ती आदिना समूहवडे पण वंदनीक, स्वयं बुद्ध,

स्वयं आत्म लक्ष्मीना स्वामी श्री स्वयं प्रभु स्वामी-
 ने हजारवार-वारंवार, निरंतर, भामणे जाउं अत्यंत
 प्रसोद भावना वडे गुणानुरागी थइ सेवा
 भक्तिमां लीन थाऊं. के जेनो “वस्तु धरम पूरण
 नीपन्यो” अर्थात् अनादी कालथी ज्ञानावर्णादि
 कर्मवडे आवृत थइ रहेला होवाथी ज्ञानादि आत्म
 धर्मो पोतानुं कार्य शुद्ध रीतेकरी शकता नहोता,
 परवश परानुयायी थइ रह्या हता, कर्मबंधनना हेतु
 थइ रह्या हता, ते सर्वे धर्मो संपूर्ण प्रगटव्यक्त थया
 छे, तदन निरावरण थया छे, अप्रतिहत् पणे पोताना
 शुद्ध कार्ये निरंतर परिणमे छे तेथी अखंड अचल
 अविनाशी परमानंद दशाने प्राप्त थया छे परम नि-
 भय निराकुल दशामां अनंत शुद्धात्म अनुभूतिमां
 तल्लीन थइ रह्या छे. तथा “भाव कृपा किरतार”
 अर्थात् चार गतिरूप अपरिमित भयंकर भवाटवीम
 विषय कषाय वशे छेदन भेदन ताडन तर्जन तिर-
 स्कार वियोग शोक भय आक्रंद विगेरे अनेक
 प्रकारनां असह्य शारीरिक तथा मानसिक दुःखों
 दीन अनाथपणे भोगवताने, अत्यंत कारुण्य भाव-
 नावडे सम्यक्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप मोक्ष मार्गे
 दोरी, तेथीना दुःखनो समूल नाश करी परमानंदमय

શિવપુરીમાં વિરાજમાન કરો છો. એજ શ્રી સ્વયં-
પ્રભુ સ્વામીની દયા પરમોત્કૃષ્ટતા ધરાવે છે. પણ
જે વિષય કષાયની વૃદ્ધિ કરનાર ઉપદેશ, તથા
પદાર્થો આપી, અજ્ઞાની જીવોની વિષય કષાય તથા
હિંસાની પ્રવૃત્તિને વધારે છે-તેનાં કારણોને પુષ્ટ
કરે છે અને હમે દયા કરીએ છીએ એમ કહેનાર
મિથ્યાભિમાની જીવો તો છે પ્રભુ ! દયાલુ નહિ
પણ વાસ્તવિક ન્યાયે આપના વચનાનુસાર હિંસાના
અનુમોદક પ્રતિત થાય છે. ॥ ૧ ॥

દ્રવ્ય ધરમ તે હો જોગ સમારવા, વિષયા-
દિક પરિહાર ॥ આતમશક્તિ સ્વભાવ સુધર્મ-
નો, સાધનહેતુ ઉદાર ॥ સ્વામી૦ ॥ ૨ ॥

અર્થ:-પ્રાણાતિપાત; મૃષાવાદ, અદત્તાદાન,
મૈથુન, પરિગ્રહ, ક્રોધ માન, માયા, લોભ, રાગ,
દ્વેષ, કલહ, અભ્યાસ્યાન, પૈશુન્ય, રતિઅરતિ,
પરપરિવાદ, માયામૃષાવાદ તથા મિથ્યાસ્વશલ્ય એ
પાપસ્થાનમાં મન વચન કાયાને ન પ્રવર્ત્તિવર્તાં સ્યાદ્-
વાદ યુક્ત જિનેશ્વરના પવિત્ર-કલ્યાણકારી વચનો
વાંચવા, સાંભલવા, વિચારવામાં તથા તેના ઉપદેષ્ટા
સદ્ગુરુ આદિના વિનય વૈયાવચ્છાદિમાં તથા જ્ઞાન

दर्शन चारित्र्यनी वृद्धि तथा स्थिति करवामां प्रवर्त्ता-
ववां तथा “ विषयादिक परिहार ” अर्थात्
चीणा, सारंगी, दुंदुभी, विगेरे वाजीत्र तथा मेना,
पोपट, स्त्री, किंनरी आदिना ललिता मनोहर स्वर
ते श्रवणइंद्रिनो विषय, तथा स्त्री पुरुष पशु पक्षी
बालक बाग बगीचा तथा मनोहर आवास विगेरेना
चित्र विचित्र मनोज्ञ वर्ण तथा घाट ते नेत्रइंद्रिनो
विषय, तथा पारिजातक, कुंद, कमल, मालति,
गुलाब, अगर, तगर, चंदन, केशर, मलयागर विगेरे
पदार्थोनी मनोज्ञ सुगंध ते घ्राणेंद्रिनो विषय, तथा
स्वादीम, खादीम, पेय आदि वस्तुना मनोज्ञ मधु-
रादि स्वाद ते जीव्हाइंद्रिनो विषय, तथा स्त्री
पुरुषादिनां मनोहर अंग तथा शय्या आसन विगेरे
पदार्थोना मनोज्ञ स्पर्श ते स्पर्शेंद्रिनो विषय ए
पंचेंद्रिनां विषयोनो त्याग करवो अर्थात् ते विषयो
ने इष्ट रम्य भोग्य सुहंकर जाणी तेओमां राग,
कामना, मूच्छा करवी नहि, प्राप्त स्वाधीन तथा
भोगववानुं सामर्थ्य होवा छतां पण ते विषयादिने
स्वभावाचरणथी चुकवाना हेतु तथा दुःखना निदान
जाणी तेओनो परिहार करवो ते साचो त्याग छे.
पण नहि मलवाथी न भोगववुं ते कई त्याग नथी,

ઉક્તંચ- (દશ વૈકાલિકે) “-જે ય કંતે પિષ્
 મોષ, લષ્ટે વિપિઠી કુવ્વડ ॥ સાહીળે ચયડ
 મોષ, સે હુ ચાહતિ વુચ્ચડ ” -એમ ત્રિજોગજી
 સંમોરવું તથા વિષયાદિનો ત્યાગ તે આત્માના
 મલિન થયેલા જ્ઞાન દર્શન ચારિત્ર આદિ સ્વભાવિક
 ધર્મને શુદ્ધ પ્રગટ કરવામાં કલ્યાણકારી સાધનો
 હોવાથી દ્રવ્યધર્મ છે અર્થાત્ ભાવ ધર્મના કારણો છે
 ઉક્તંચ-“ કારણ યાસે દઢવં ” અને કારણ વગર
 કાર્ય સિદ્ધિ અસંભવ છે, ઉક્તંચ-કારણ જોગે હો
 કારજ નીપજેરે, પહમાં કોઈ ન વાદ । પણ
 કારણ વિણ કારજ સાધિયેરે, તે નિજ મતિ
 ઉન્માદ-માટે વિષય પરિગ્રહાદિ જે રાગાદિ
 અશુદ્ધોપયોગના હેતુઓ છે તેનો ત્યાગ કરવો અને
 જ્ઞાન ધ્યાનાદિક, જે રાગાદિનો નાશ કરી શુદ્ધાત્મ
 ભાવ પ્રગટ કરવાના હેતુઓ છે તે આદરવા, જેથી
 કાર્ય સિદ્ધિ થાય. ॥ ૨ ॥

ઉપશમ ભાવે હો મિશ્ર ક્ષાયિકપણે, જે
 નિજ ગુણ પ્રાગ્ભાવ ॥ પૂર્ણાવસ્થાને નીપજાવતો,

સાધન ધર્મ સ્વભાવ ॥ સ્વાર્મી ॥ ૩ ॥

અર્થ:-એમ ત્રિજોગનું સમારવું તથા વિષયાદિ-
કનો સ્યાગ, એ જ્ઞાનાદિ ધર્મો પ્રગટ કરવાનાં
સાધનો છે તે ઉપશમ ક્ષયોપશમ તથા ક્ષાયિકભાવે
પ્રગટ થયેલા આત્મ ગુણોને પૂર્ણ શુદ્ધ અવસ્થાને
અર્થાત્ સિદ્ધદશાને પ્રાપ્ત કરે છે. જે કંઈ આત્મ ધર્મ
ઉપશમપણે ક્ષયઉપશમપણે વા ક્ષાયિકપણે પ્રગટ
પ્રાપ્ત થયો તે ક્રમે ક્રમે આત્મ ગુણોની શુદ્ધિ કરતો
સંપૂર્ણ શુદ્ધાવસ્થાને-સિદ્ધ અવસ્થાને પ્રાપ્ત કરવાને
કારણ રૂપ છે. જેમ સમક્તિ પ્રાપ્ત થયાથી વિરતિની
પ્રાપ્તિ થાય, અને વિરતિવડે અપ્રમત્ત ભાવની પ્રાપ્તિ
થાય, તથા અપ્રમત્ત ગુણ વડે સંપૂર્ણ કષાયોનો નાશ
થાય, કષાયોના નાશવડે વીતરાગતા પ્રાપ્ત થાય
છે, અને વીતરાગતા વડે કેવલજ્ઞાન થાય. એમ ક્રમે
ક્રમે આત્મ ગુણોની અધિક અધિક શુદ્ધિ થઈ સંપૂર્ણ
શુદ્ધિ થાય. તેથી જે ગુણ પ્રાપ્ત થયો તે અધિક
ગુણની પ્રાપ્તિનો હેતુ છે. જેમ કોઈ માણસ મહાન્
વ્યાધિગ્રસ્ત હોવાથી જરા પણ खोराક લઈ પચાવી
શકવાને અસમર્થ હોય, અત્યંત નિર્વલ હોય પણ તે
કોઈ રીતે થોડું વલ પામે તો તે વલવડે ધીમે ધીમે
અધિક અધિક खोराક પચાવી 'અધિક' અધિક

बलवान् यतो पूर्ण बलवान् थाय. उक्तंच-“ प्रश-
मरति ग्रंथे-आर्या छंद ॥ पूर्व करोत्यनंतानु-
बन्धि नाम्नां क्षयं कषायाणाम् । मिथ्यात्व
मोह गहणं, क्षपयति सम्यक्त्व मिथ्यात्वम्
सम्यक्त्व मोहनीयं, क्षपयत्यष्टावतः कषायांश्च ।
क्षपयति ततो नपुंसक, वेदं स्त्रीवेद मथतस्मात्
हास्यादि ततःषट्कं, क्षपयति तस्माच्च पुरुष-
वेदमपि ॥ संज्वलनानपि हत्वा, प्राप्नोत्यथ
वीतरागत्वम् । सर्वोदघातित मोहो, निहत
क्लेशो यथाहि सर्वज्ञः ॥ भात्यनुप लक्ष्य
राहंसोन्मुक्तः पूर्ण चन्द्रइव ॥ ” तेथी समकित
प्राप्ति माटे अत्यंत उद्यम करी प्रथम समकितनी
प्राप्ति करवी जेथी बीजा सर्वे गुणो प्रगट् थाय. ॥३॥

समकित गुणथी हो शैलेशी लगे, आत्म-
अनुगत भाव ॥ संवर निर्जरा हो उपादान
हेतुता, साध्यालंबन दाब ॥ स्वामी० ॥ ४ ॥

अर्थः-अनादि विभाव योगे आत्म-परिणति

પરાનુગત થયેલી છે અર્થાત્ જ્ઞાનશક્તિ પરદ્રવ્યને જાણવામાં, દર્શનશક્તિ પરદ્રવ્યને દેખવામાં—નિર્ધાર કરવામાં, ચારિત્રશક્તિ પરદ્રવ્યમાં આચરણ રમણ કરવામાં, એમ સર્વે ગુણો આત્મગુણના બાધકપણે પરાનુયાયી પ્રવર્તે છે પણ જ્યારે સમકિતનો લાભ પામે ત્યારે પરાનુગત થયેલી આત્મ પરિણતિને શુદ્ધાત્મ અનુગત પણે પ્રવર્ત્તાવવાનો અભિલાષી થાય, શુદ્ધ કાર્ય સન્મુખ પરિણતિ કરે અર્થાત્ “સમકિત ગુણથી” એટલે ચોથા ગુણસ્થાનથી માંડી “શૈલેશી ગુણ લગે” એટલે ચૌદમા ગુણસ્થાન સુધી પરાનુગત થયેલી આત્મ પરિણતિને વારી ક્રમે ક્રમે અધિક અધિક શુદ્ધતાએ વર્ત્તાવતો જાય. જેમ જે પરિણતિ અનાત્મ વસ્તુને આત્મ જાણવા—સદ્દેહવા ધિગેરેમાં પ્રવર્ત્તેલી હતી તે ચોથે ગુણસ્થાને આત્માને આત્મા જાણવા—સદ્દેહવા ધિગેરેમાં પ્રવર્ત્તાવે તથા જે પરિણતિ હિંસાદિ પાંચ અવ્રતમાં વર્ત્તેલી હતી તે પાંચમે ઘટે ગુણસ્થાને અહિંસાદિ પાંચ વ્રતમાં વર્ત્તાવે તથા મદ વિષય કષાય નિદ્રા વિક-ર્યામાં જે પરિણતિ વર્ત્તેલી હતી તે વારી સાતમે ગુણસ્થાને અપ્રમત્ત ભાવે આત્મગુણ રમણમાં વર્ત્તાવે એમ આઠમે ગુણસ્થાને રસધાતિ સ્થિતિધાતિ ગુણ-

संक्रम गुणश्रेणि करे, अपूर्व स्थिरतामां आत्म
परिणतिने प्रवर्त्तावे, संज्वलन क्रोध मान माया
विगेरेथी आत्म परिणतिने वारी नवमे गुणस्थाने
ते कषाय रहित-अकषायपणे-समभावमां वत्तावे
सूक्ष्म लोभ शिवाय बाकीना कषायथी आत्म
परिणतिने वारी दशमे गुणस्थाने अधिक शुद्ध
समपरिणामे प्रवर्त्तावे, सर्वे कषायनो क्षय करी
बारमे गुणस्थाने वीतराग यथाख्यात चारित्रमां
वर्त्ते, चार घातीया कर्मनो समूल क्षय करी तेरवा
गुणस्थाने अनंतज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र,
अनंत वीर्यपणे आत्म परिणतिने वत्तावे-योग
क्रियानी सकल चपलता वारी चौदमा गुणस्थाने
अयोगी अवस्था करी पूर्ण परम निवृत्ति पद पासे,
एम दरेक गुणस्थाने आत्म गुणनी अधिक अधिक
शुद्धि करतो संपूर्ण सिद्धावस्थाने प्राप्त थाय. एम
दाव राखी साध्यने आधारे साध्य सन्मुख उपा-
दान-आत्म परिणतिनी शुद्धताना हेतुए वर्त्तवुं तेज
संवर अर्थात् नवाकर्मनुं रोकवुं तथा निर्जरा एटले
पूर्व संचित कर्म क्षय थवानो हेतु छे, उक्तं च-
“ जो संवरेण जुत्तो, अप्पठ प्रसाधगोहि
अप्प णं । मुनिउण आदि णियदं, णाणं

સો સંધુણોદિ કમ્મરયં ” ॥ ૪ ॥

સકલ પ્રદેશે હા કર્મ અભાવતા, પૂર્ણાનંદ
સ્વરૂપ ॥ આતમ ગુણની હો જે સંપૂર્ણતા,
સિદ્ધ સ્વભાવ અનૂપ ॥ સ્વામી૦ ॥ ૫ ॥

અર્થ:-આપના આત્મ અંગના સર્વે પ્રદેશથી
જ્ઞાનાવરણાદિ કર્મ મલનો સર્વથા અભાવ થયો છે
તેથી સર્વે પ્રદેશ સ્ફટિકમણિ સમાન શુદ્ધ સંપૂર્ણ
નિરાવરણ થયા છે, કોઈપણ કાલે હવે કર્મ મલનો
રંચ માત્ર પણ સશ્લેષ થવાનો સંભવ નથી, તેથી
આત્મ અંગમાં વસતા અનંત ગુણ પર્યાયના સર્વે
અવિભાગો સંપૂર્ણ શુદ્ધ થયા છે, શુદ્ધ કાર્યે પરિણમે
છે તેથી હે ભગવંત ! આપ પૂર્ણાનંદ સ્વરૂપ છો.
અર્થાત્ જગત્જીવ તો ઉપાધિના પ્રતિકારથી આનંદ
માને છે, પરદ્રવ્યને ભોગ જાણી તેમાં લયલીન થઈ
રહે છે તેથી જગત્જીવનો આનંદ તો ક્ષણભંગુર
અપૂર્ણ તથા ભયસહિત છે, પણ આપ તો પોતાના
સ્વાધીન અવિનશ્વર એક દેશાવગાહી ગુણ પર્યાયોના
મોક્તા છો, તેમાં રમણ કરો છો, તેમાં સંતુષ્ટ
તल्लीન થઈ આનંદ ભોગવો છો તેથી આપનો આનંદ
કોઈપણ કાલે નાશ થાય અથવા દૂર જાય તેમ

नथी तथा स्वाधीन अने सहज होवाथी भय
आकुलता स्पृहा रहित छे तेथी आपनोज आनंद
एकांतिक आस्थंतिक पूर्णपदने योग्य छे जगत्-
जीवनो आनंद तो साचो आनंद नथी, अज्ञान वशे
आनंद मनाय छे एम आत्मगुणनी संपूर्ण शुद्धता,
कृतृता, भोक्तृता, परिणामीकता, ग्राहकता, व्या-
पकता आदि तेज आपनो अनुपम सिद्ध स्वभाव
छे हवे कईपण कार्य करवानुं शेष नथी, कईपण
आदरवानुं तेम छोडवानुं बाकी नथी तेथी अचल
अबाधित शाश्वत परमानंदता स्वामी छो ॥ ५ ॥

अचल अबाधित हो जे निःसंगता, परमात्म
चिद्रूप ॥ आत्मभोगी हो रमता निजपदे,
सिद्ध रमण ए रूप ॥ स्वामी० ॥ ६ ॥

अर्थ:-आत्म परिणामने चल करनार जे राग
द्वेष मोह परिणाम तेनो सर्वथा अभाव होवाथी
अचल, तथा आत्म परिणामने शुद्धपणे परिणम-
वामां घात, स्खलना करनार ज्ञानावरणादिक
घातीकर्मनो अभाव होवाथी अबाधित छो तथा
धन धान्य क्षेत्र वस्तु हिरण्य आदि बाह्य परिग्रह
तथा मिथ्यात्व क्रोध मान माया लोभ हास्य रंति

अरति भय शोक जुगुप्सा पुरुषवेद स्त्रीवेद नपुंसक-
वेद चौद अर्भ्यंतर परिग्रह, एम बाल्य अर्भ्यंतर
परिग्रहथी सर्वथा रहित होबाथी निःसंगछो. तथा
ज्ञानानुयायी सर्वे धर्मो संपूर्ण शुद्ध निर्मल होबाथी
परमात्मा छो. तथा संसार अवस्थामां कर्म संयोगे
शरीरमां लोली भूतपणे वसी शरीर रूपे पुद्गल
रूपे संसारी जीव पोताने माने छे पण आप तो
शरीरथी सर्वथा अतित थयाछो तेथी मात्र ज्ञान-
रूप-ज्ञानमूर्ती छो तथा पुद्गल भोगनुं रमण तजी
आप पोताना शुद्ध ज्ञान दर्शनादि गुणोमां रमण
करवावाला आत्म भोगी छो, शुद्ध स्वाधीन अवि-
नश्वर रम्यमां रमण करो छो तेथी आपनुं रमण
संपूर्ण अने अविनश्वर होबाथी सिद्धपद धारण
करे छे ॥ ६ ॥

एहवो धर्म हो प्रभुने नीपन्यो, भाख्यो
एहवो धर्म ॥ जे आदरतां हो भवियण
शुचि हुवे, त्रिविध विदारी कर्म ॥
स्वामी० ॥ ७ ॥

अर्थ:-एम प्रभु ! आपना ज्ञानादि सर्वे
धर्मो कर्म मलथी रहित शुद्ध प्रगट थया. अबल,

अविनाशी, अनंत, अज, अलेशी, अवेदी, अकषायी
अचल, अक्रिय, नित्य, स्वाधीन, निर्द्वंद्व, परमानंद
दशाने प्राप्त थया छो. अने जे रीते आप ए दशाने
प्राप्त थया तेज उपाय, तेज धर्म, परम करुणा चहे
भव्य जीवोने आ संसार समुद्र-मांथी पारंगत-थई
शिवभूमीए पहुँचवा प्ररूप्यो-उपदेश्यो छे. ते
सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप धर्म आदरतां-सेवतां
भव्य जीवो द्रव्यकर्म, भावकर्म अने नोकम ए
अण प्रकारना कर्मनो नाश करी परम पवित्र शुद्ध
निरावरण थाय. ॥ ७ ॥

नाम धरम हो ठवण धरम तथा, द्रव्य
क्षेत्रतिम काल ॥ भावधर्मना हो हेतु पणे
भला, भावविना-सहु आल ॥ स्वामी० ॥८॥

अर्थ:-नामधर्म, स्थापनाधर्म, द्रव्यधर्म, क्षेत्रधर्म,
कालधर्म, तथा भावधर्म एम धर्म स्वरूप अनेक
प्रकारे छे, पण नाम, स्थापना, द्रव्य क्षेत्र तथा काल
ए जो भावधर्मना सन्मुख, भावधर्मना हेतु होय
अर्थात् भावधर्म साधवामां कारणभूत होय तो
प्रशंसनीय कार्यकारी छे पण जो ते भावधर्मनी
अपेक्षा शून्य होय तो आल अर्थात् निरर्थक धुल

उपर लीपण जेवा जाणवा. “ भाव शून्या क्रिया
न फलन्ति इति ” अथवा एकडा विनानां मीडां
जेवा जाणवा. पण जो भावधर्मनी सापेक्षताए
होय तो एकडा उपरन मीडांनी माफक गुणकारी
छे. ॥ ८ ॥

श्रद्धा भासन हो तत्त्व रमण पणे, करतां
तन्मय भाव ॥ देवचंद्र जिनवर पद सेवतां,
प्रगटे वस्तु स्वभाव ॥ स्वामी० ॥ ९ ॥

अर्थ:-शुद्धात्म तत्त्वनी श्रद्धा अर्थात् जो हुं
जिन प्ररूपित सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक्
चारित्र्य रूप धर्म आदरुं तो हुं पण शुद्धात्म तत्त्वनी
भोगी थई शकुं. एम श्रद्धा करे, नय निक्षेप प्रमाण
युक्त एम जाणे, तथा ते शुद्धात्म तत्त्वनेज पोतानुं
रम्य जाणी तेमांज रमण करे, परद्रव्यादिमांथी
रमणता टाले, तो आत्म स्वभावमांज तल्लीन थाय-
तद्रूप थाय. श्रीमान् देवचंद्र मुनिवर कहे छे के
एम जिनेश्वरना द्रव्यचरण भावचरणने सेवतां
आपणो आत्म स्वभाव संपूर्ण शुद्ध प्रगटे, परमा-
नंदनी प्राप्ति थाय. ॥ ९ ॥



॥ अथ सप्तमं श्री रुषभाननं जिनं

स्तवनम् ॥ वारी हुं

गोडी पासने ॥ ए देशी ॥

॥ श्री रुषभाननं वंदिये, अचल अनंत गुण
वास जिनवर । क्षायिक चारित्र भोगथी,
ज्ञानानंद विलास जिनवर ॥ श्री० ॥ १ ॥

अर्थः—धर्म धुरंधर, धर्म तीर्थंकर, अशरण
शरण, श्री रुषभानन, प्रभुने आ लोक परलोकना
विषय सुखनी अभिलाषा स्पृहा रहित तथा मान
पूजाना लोभ रहित, आ संसार समुद्रमांथी तारण
तरण जहाज जाणी, अस्यंत विशुद्ध भावनाए परम
आदर, पूर्वक वंदिये—सेवा भक्ति करिये. के जे
प्रभु अचल अर्थात् प्रदेश मात्र पण दूर न थाय
तथा राग द्वेष मोह जन्य चपलता रहित एहखा
ज्ञानादि अनंत गुणना वास—निधान छे तथा क्रोध
मान माया लोभ हास्य रति अरति भय शोक
जुगुप्सा तथा त्रण वेद ए चारित्रमोहनीय प्रकृतिनो
सत्ता सहित क्षय करी यथाख्यात् स्वभावावरण
ज्ञान दर्शन आदि अनंत स्वभाविक भोग जन्य
आनंदमां अनंत ज्ञान सहित विलसे छे ॥ १ ॥

जे प्रसन्न प्रभु मुख ग्रहे, तेहिज नयन
प्रधान जिनवर ॥ जिन चरणे जे नामीये,
मस्तक तेह प्रमाण जिनवर ॥ श्री० ॥२॥

अर्थ:-हे भगवंत ! आपना ज्ञान दर्शनादि सर्वे
भोग उपभोगो आपने सदा स्वाधीन वर्त्ते छे. कोइ
पण काले प्रदेश मात्र पण दूरवर्त्ती थाय तेम नथी
तेथी आप सदा शोक रहित तथा ते भोग उपभोग
ने कोइ पण बाधा पीडा तथा हरण करी शके तेम
नथी तेथी परम निर्भय, तथा ते भोग उपभोगो
पर द्रव्यना भेल-मलिनता रहित सदा शुद्ध होवाथी
आप गिलानी रहित, तथा ते भोग उपभोगो
अखूट आनंद जनक होवाथी अरति रहित छो,
एम क्रोधादि सर्वे कषाय रहित होवाथी आपनुं
मुखकमल सदा अम्लान परम प्रफुल्लित प्रसन्न छे,
दर्शनीय छे. एहवा आप श्रीना आनंद वर्धक
वदनकमलनुं, जे नेत्र वडे दर्शन थाय तेज नेत्र
प्रधान कल्याणकारी मानुं छुं. तथा मोक्ष मार्गमां
अति शीघ्रताए गमन करनार आपना चरण द्वयने,
जे मस्तक वडे स्पर्श थाय तेज मस्तक पायुं प्रमाण
गणुं छुं ॥ २ ॥

॥ अरिहा पदकज अरचीये, सलहीजे
ते हथ जिनवर ॥ प्रभु गुण चिंतनमें रमे,
तेहज मन सुकयथ जिनवर ॥ श्री० ॥३॥

अर्थ:-अनादि कालधी आत्म साम्राज्यने
कबजे करि राखनार मोहादि दुष्ट शत्रुउंने जेमणे
अति तिक्षण ज्ञान बाण वडे गतःप्राण निवृत्त
करया छे एहवा हे श्री अरिहंत रूपभानन भगवंत !
माहरा मन मधुकरने अत्यंत विश्रामना स्थान,
शुद्धात्म अनुभूति परिमलधी भरपूर आपना चरण
कमलने, जे हाथ वडे अर्चु पूजुं तेज हाथ सत्य
लाभकारी समजुं छुं. तथा हे प्रभु ! शरद रूतन
पूर्ण चंद्र समान आल्हादक शांति आपनार आपना
अनंत निर्मल परम पवित्र गुण समूहना चिंतन
मननमां जे मन रमे, प्रमोद सहित वर्त्ते तेज मन
सुकृतार्थ-सर्व अर्थेनी सिद्धि करनार मानुं छुं. पण
जेम हरिणने तेना कान मनोज्ञ स्वरमां लुब्ध करी
जालमां फसावी शस्त्र वडे प्राणनो वियोग करावे
छे तथा पतंगने जेम तेना नेत्रो मनोज्ञ वर्णमां
मोहित करी अग्निनी ज्वालांमां तेना देहने भस्मी-
भूत करावे छे तथा मधुकरने तेनी घ्राणेंद्रि कमलनी

સુવાસમાં મોહીત કરી તે સ્થલે વેરી રાખી તેના
 વલ્લભ પ્રાણનો સ્થાગ કરાવે કે તેમ જો માહરું
 મન, ઇન્દ્રિયો તથા અંગોપાંગ વિષય કષાયના પદાર્થો
 ઉપાર્જન કરવામાં, મેલવવામાં, તેનું સેવન, તેની
 રક્ષા કરવામાં રોકાય, સ્વપર જીવના દ્રવ્ય ભાવ
 પ્રાણની હિંસા કરવામાં વર્તે-મદદકારી થાય, પાપ
 કમનું ઉપાર્જન કરી ભવ ભ્રમણના હેતુ થાય, તો
 એવા મન તથા ઇન્દ્રિયોના લાભથી શું ? તથા દશ
 દૃષ્ટાંતે દુર્લભ એવા મનુષ્ય ભવનો લાભ પણ
 નિષ્ફલ-યદ્યુક્ત- “ યઃ પ્રાપ્ય દુઃપ્રાપ્યમિદં
 નરત્વં, ધર્મં ન યત્નં ન કરોતિ મૂઢઃ ॥ કલેશઃ
 પ્રબંધેન સ લબ્ધ મબ્ધૌ, ચિંતામાણિં પાતયતિ
 પ્રમાદાત્ ” ॥ તથા “ તે ધત્તર તરૂં વપંતિ
 ભવને પ્રોન્મૂલ્ય કલ્પદ્રુમમ્ । ચિંતારત્ન મપાસ્ય
 કાચશકલં સ્વીકૂર્વતે તે જડાઃ ॥ વિક્રીય
 દ્વિરદં ગિરીંદ્ર સદૃશં ક્રીણંતિ તે રાસભં । ય
 લબ્ધું પરિહૃત્ય ધર્મમધમા ધાવતિ ભોગા-
 શયા ” ॥ ૩ ॥

જાણો છો સદુ જીવની, સાધક વાધક

भांत जिनवर ॥ पण श्रीमुखथी सांभली,
मन पामे नीरांत जिनवर ॥ श्री० ॥ ४ ॥

अर्थ:-हे त्रिलोक पूज्य ! दर्पण तलनी माफके
आपनी केवल-ज्ञान मय उत्कृष्ट ज्योतिमां सर्वे
द्रव्यो पोताना त्रैकालिक संपूर्ण पर्यायो सहित
प्रयास बिना यथावत् प्रतिबिंबित थाय हे. तेथी
सर्वे जीवोनी साधक बाधक भांति आप जाणो छो
अर्थात् अमुक जीव आ समये सम्यक् ज्ञान दर्शन
चारित्र रूप मोक्ष साधनमां वर्त्ते छे के रत्न भ्रमना
प्रत्यनीक पणे भव भ्रमणना हेतु कर्म बंधनमां वर्त्ते
छे ए सर्वे वृत्तांत हे करुणा निधि ! आप तो प्रत्यक्ष
पणे जाणोछोज. पण जो आपना मुखारविंदथी
हूं साधक भावमां वर्त्तुं छूं एम सांभलूं तो माहकूं
मन निरांत पामे, भव भ्रमणना भयनो क्लेश शमे
दूर थाय. ॥ ४ ॥

तीन काल जाणंग भणी, शुं कहिये
बारंवार ॥ जि० ॥ पूर्णानंदी प्रभुतणुं,
ध्यान ते परम आधार ॥ जि० ॥ श्री ॥ ५ ।

अर्थ:-त्रणे कालनी परिणतिने हस्तामलकवत्

तथा कार्य सिद्ध थइ गया पछी ते दंडादिमां कारण
पंद नथी. कारण के कार्य कारण एक समये छे
पण जे कार्यानंतर तथा प्रथम अप्रयुक्त काले
दंडादिकने निमित्त कारण कह्ये छे ते मात्र नैगम
नयनो मत जाणवो. एम कार्यना स्वरूपनो जाण-
नार कार्यनो अभिलाषी कर्ता साचा उपादान तथा
निमित्तना योगे कार्य सिद्धि पामे पण कारण वगर
कार्य सिद्धिनो आकाश पुष्पवत् अभाव जाणवो.
तेथी हे प्रभु ! ज्ञान पूर्वक निर्धार करतां माहरा
परमात्म सिद्धिना पुष्ट हेतु आपने जाणी आपनुं जे
शरण अंगीकार करुं छुं. निमित्त कारणना बे भेट छे

(१) पुष्टनिमित्त (२) अपुष्ट निमित्त. “कार्यस्य
आसन्न निमित्तं इति तदेव पुष्टं ” “ दूर तरं
कारण नैमित्तिकं तत् अपुष्टं ” अर्थात् साध्य
धर्म जेमां प्रगट-विद्यमान होय तथा जेमां कदापि
कार्यनो ध्वंसक भाव न होय ते पुष्ट निमित्त जा-
णवुं. जेमां तीर्थकर भगवंतमा परमात्म पद प्रगट-
विद्यमान छे तथा परमात्म पदना घातक भावनो
जेमां सर्वथा अभाव छे माटे तीर्थकर भगवंत पर-
मात्म पद प्राप्तवामां पुष्ट निमित्त छे एम जाणवुं.

(પુષ્ટ હેતુ જિનેન્દ્રોયં મોક્ષ સદ્ભાવ સાધને)

અપુષ્ટ નિમિત્ત-જેમાં સાધ્ય પદ વિદ્યમાન ન હોય, જે કર્તાની પ્રેરણાથી કારણ થાય છે, વત્તી તેમાં ધ્વંસક ભાવ પણ રહેલો હોય તે અપુષ્ટ નિમિત્ત છે. જેમ દંડ તે ઘટનું અપુષ્ટ નિમિત્ત છે કારણ કે દંડમાં ઘટ પણ વિદ્યમાન નથી વત્તી કુંભાર જ્યારે ઘટ કરવામાં પ્રવર્તીવે તોજ ઘટોત્પત્તિનું નિમિત્ત કહેવાય પણ જો કુંભાર ઘટ ધ્વંસ કરવામાં વાપરે તો તે ઘટ ધ્વંસના નિમિત્ત કહેવાય માટે દંડ તે ઘટનું અપુષ્ટ કારણ જાણવું. માટે હે રુષભાનન ભગવંત ! આપ મારા પરમાર્ત્મપદના પુષ્ટ નિમિત્ત છો માટે આપનીજ સેવાથી મારી સિદ્ધિ થશે એમ જાણી આપનીજ સેવા અંગીકાર કરું છું. ॥ ૬ ॥

શુદ્ધ તત્ત્વ નિજ સંપદા, ય્યાં લગે પૂર્ણ ન થાય ॥ જિ૦ ॥ ત્યાં લગે જગગુરુ દેવના, સેવું ચરણ સદાય ॥ જિ૦ ॥ શ્રી૦ ॥ ૭ ॥

અર્થ:-અજ્ઞાનરૂપ અંધકારનો અત્યંત નાશ કરનાર તથા સમ્યક્જ્ઞાન દર્શન ચારિત્ર આદિ સંપૂર્ણ આત્મ ગુણની સિદ્ધિને પ્રાપ્ત હોવથી જગત-

प्रत्यक्ष पणो समकाले जाणवी देखवावाला प्रभु
प्रत्ये चारंवार शुं कहुं ! मने तो हे प्रभु ! स्वयंभू-
रमण समुद्रनी पेठे अखूट आनंद रसथी भरपूर
आपनाज पदनुं ध्यान-आपना पदमां एकाग्रचित्त-
तल्लीनता तेज भव समुद्रथी तरवामां उत्कृष्ट
आधार भूत छे. ॥ ५ ॥

कारणथी कारज हुवे, ए श्री जिनमुख
वाण ॥ जि० ॥ पुष्ट हेतु मुज सिद्धिना, जाणी
कीध प्रमाण ॥ जि० ॥ श्री० ॥ ६ ॥

अर्थ:-जगत् दिवाकर, संपूर्ण तत्त्व वेत्ता, श्री
केवली भगवंत एम प्ररूपे छे के योग्य कारणना
योग वडे कार्य सिद्धि थइ शके. अर्थात् कार्यना
स्वरूपनो यथार्थ जाणनार कार्यनो अभिलाषी कर्त्ता,
उपादान अने निमित्त कारण वडे कार्य सिद्धि पामी
शके. उपादान--जे पदार्थ कार्य सन्मुख थाय तथा
तेज संपूर्ण कार्य रूप थाय--कार्य सिद्धिए जेनी
हयाति जणाय ते उपादान कारण जाणवुं. जेम
घटनुं उपादान कारण माटी तथा पटनुं उपादान
कारण रु अथवा सूतर, कारण के माटीनो पिंड
थाय, पिंडथी स्थास कुसलादि पर्यायो थइ माटीज

સંપૂર્ણ ઘટ રૂપ થાય, સંપૂર્ણ ઘટ થયે પણ માટીને
હયાતી છે માટે માટી ઘટનું ઉપાદાન કારણ સમજવું.
માટીથીજ ઘટ ઉત્પન્ન થઈ શકે પણ અન્ય વસ્તુમાર્થી
ઘટ થઈ શકે નહિ. ઉક્તંચ- “ યદાત્મકં કાર્યં
દ્રશ્યતે તદિહ તદ્ દ્રવ્ય કરણં ઉપાદાન
કારણં યથા તંતવઃ પટસ્ય ઇતિ ”

નિમિત્ત-જે ઉપાદાન કારણથી ભિન્ન હોય છે
પણ તે વિના કાર્ય સિદ્ધ થઈ શકતું નથી. કાર્ય
સિદ્ધ કરવામાં જેની સ્વાસ જરૂર છે તે નિમિત્ત
કારણ છે. તે નિમિત્ત કારણ પદ, કર્તાને આધિન
વર્તે છે. જેમ ઘટનું ઉપાદાન કારણ માટી છે અને
માટીથી દંડ ચક્ર ચીવર. આદિ ભિન્ન છે તો પણ
કુંભારને ઘટ સિદ્ધ કરવામાં દંડ ચક્રાદિની અવશ્ય
જરૂર છે, તે વિના ઘટ બનાવી શકે નહિ, તેથી
દંડ ચક્રાદિ ઘટનાં નિમિત્ત કારણ જાણવાં પણ દંડ
ચક્રાદિને કુંભાર ડ્યારે માટીને ઘટ રૂપ કરવામાં
પ્રવર્ત્તાવે (ઉપયોગમાં લે) સ્યારેજ તેડું (દંડ ચક્રાદિ)
નિમિત્ત કારણ કહેવાય પણ કુંભાર ઘટ કાર્ય
કરવામાં દંડ ચક્રાદિને વાપરતો ન હોય તો તે
કારણ કહેવાય નહિ. કાર્ય કરવા માંડતો પહેલો

तथा कार्य सिद्ध थइ गया पछी ते दंडादिमां कारण
 प्रद नथी. कारण के कार्य कारण एक समये छे
 पण जे कार्यानंतर तथा प्रथम अप्रयुक्त काले
 दंडादिकने निमित्त कारण कहै छे ते मात्र नैगम
 नयनो मत जाणवो. एम कार्यना स्वरूपनो जाण-
 नार कार्यनो अभिलाषी कर्ता साचा उपादान तथा
 निमित्तना योगे कार्य सिद्धि पामे पण कारण वगर
 कार्य सिद्धिनो आकाश पुष्पवत् अभाव जाणवो.
 तेथी हे प्रभु ! ज्ञान पूर्वक निर्धार करतां माहरा
 परमात्म सिद्धिना पुष्ट हेतु आपने जाणी आपनुंज
 शरण अंगीकार करुं छुं. निमित्त कारणना बे भेद छे
 (१) पुष्टनिमित्त (२) अपुष्ट निमित्त. “कार्यस्य
 आसन्न निमित्तं इति तदेव पुष्टं ” “ दूरतरं
 कारण नैमित्तिकं तत् अपुष्टं ” अर्थात् साध्य
 धर्म जेमां प्रगट-विद्यमान होय तथा जेमां कदापि
 कार्यनो ध्वंसक भाव न होय ते पुष्ट निमित्त जा-
 णवुं. तेम नीर्थकर भगवंतमा परमात्म पद प्रगट-
 विद्यमान छे तथा परमात्म पदना घातक भावनो
 जेमां सबेदा भाष छे माटे नीर्थकर भगवंत पर-
 मात्म पद त अचामां पुष्ट निमित्त छे एम जाणवुं.

(पुष्ट हेतु जिनेंद्रोयं मोक्ष सद्भाव साधने)

अपुष्ट निमित्त—जेमां साध्य पद विद्यमान न होय, जे कर्त्तानी प्रेरणाथी कारण थाय छे, वली तेमां ध्वंसक भाव पण रहेलो होय ते अपुष्ट निमित्त छे. जेम दंड ते घटनुं अपुष्ट निमित्त छे कारण के दंडमां घट पणुं विद्यमान नथी वली कुंभार ज्यारे घट करवामां प्रवर्त्तावे तोज घटोत्पत्तिनुं निमित्त कहेवाय पण जो कुंभार घट ध्वंस करवामां वापरे तो ते घट ध्वंसना निमित्त कहेवाय माटे दंड ते घटनुं अपुष्ट कारण जाणवुं. माटे हे रूपमानन भगवंत ! आप मारा परमात्मपदना पुष्ट निमित्त छो माटे आपनीज सेवाथी मारी सिद्धि थरो एम जाणी आपनीज सेवा अंगीकार करुं छुं. ॥ ६ ॥

शुद्ध तत्त्व निज संपदा, ज्यां लगे पूर्ण न थाय ॥ जि० ॥ त्यां लगे जगगुरु देवना, सेवुं चरण सदाय ॥ जि० ॥ श्री० ॥ ७ ॥

अर्थ:—अज्ञानरूप अंधकारनो अत्यंत नाश करनार तथा सम्यक्ज्ञान दर्शन चारित्र आदि संपूर्ण आत्म गुणनी सिद्धिने प्राप्त होवथी जगत-

गुरु तथा जगत्देव हे रुषभानन स्वामी ! ज्यांसुधी
 शुद्धात्म तत्त्वरूप स्वाभाविक अखंड अखूट अनुत्तर
 संपदानी मने संपूर्णपणे सिद्धि प्राप्ति न थाय त्यां-
 सुधी हे दीनदयाल ! आपना द्रव्य भाष रूप
 चरण युग्मनुं निरंतर सेवन करुं एम भावना भावुं
 छं ॥ ७ ॥

कारज पूर्ण कर्मा विना, कारण केम मूकाय
 ॥ जि० ॥ कारज रुचि कारण तणा, सेवे शुद्ध
 उपाय ॥ जि० ॥ श्री० ॥ ८ ॥

अर्थ:-जेम समुद्र पार पामवानो इच्छक पुरुष
 जो समुद्र वच्चे वहाणनो त्याग कर तो समुद्र पार
 जइ शके नहि अने वच्चेडूधी जाय. माटे हे भगवंत !
 परमात्म सिद्धिरूप माहरुं काये ज्यां सुधि सिद्ध
 थयुं नथी त्यांसुधि पुष्टालंबन रूप आपना चरण
 युग्मनी सेवना केम वोटुं ? कारण के कार्य सिद्धि-
 नो रुचिवंत पुरुष कार्य सिद्धे थता सुधी शुद्ध कार-
 णोने यथाथे पणे सेवे-आदर ए नाति छे. ॥ ८ ॥

ज्ञान चरण संपूर्णता, अव्याबाध अमाय ॥
 जि० ॥ देवचंद्र पद पालीये, श्री जिनराज

पासय ॥ जि० ॥ श्री० ॥ ९ ॥

अर्थः—स्तवन कर्त्ता श्री देवचंद्र मुनि कहे छे के
तरण तारण सामान्य केवलीओमां राजा समान
श्री रूपभानन तीर्थकरना चरण पसाय सम्यक्
ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चारित्रनी संपूर्णता
तथा पूर्ण अन्याबाध पणुं तथा अमायी, अलेशी,
अरुंदी, अलोभीपणा आदि सर्वे आत्म गुणनी
संपूर्णता रूप इवमां चंद्रमां समान परमात्म पदनी
सिद्धि पामीये, कृत कृत्य थइये, अनंत काल सुधि
सहज अखंड परमानंद विलासने पामीए. ॥ ६ ॥

॥ संपूर्ण ॥

॥ अष्टम श्री अनंतवीर्य जिन स्तवनम् ॥

चरणात्मी चासुंडा रण चूडे ॥ ए देशी ॥

॥ अनंतवीरज जिनराजनो, शुचि वीरज
परम अनंतरे ॥ निज आत्म भावे परिणा-
म्यो, गुण वृत्ति वर्तनावंतरे ॥ मन मोहह्यं
अम्हारुं प्रभु गुणे ॥ १ ॥

अर्थः—सामान्य केवलीउंमां राजां समान श्री
अनंतवीर्य भगवंत ! आपनुं “वीर्य” ज्ञानदर्शनादि

સર્વે ગુણોને વર્તવામાં આધારભૂત આત્મવીર્ય તે “શુચિ” પર પરિણામિકતાથી સર્વથા રહિત અત્યંત નિર્મલ તથા “પરમે” જગત્વાસી કોઈપણ જીવોમાં એવું આત્મવીર્ય નથી તેથી સર્વોત્કૃષ્ટ તથા “અનંત” જ્ઞાનાદિ અનંત ગુણોમાંથી કોઈપણ ગુણને વર્તવામાં જરાપણ સ્વલ્લના (વ્યાધાત) ન પામે તથા કોઈપણ કાલે હીણ ક્ષીણ ન થાય તેથી અનંત છે.

એવું શ્રી અનંતવીર્ય ભગવંતનું પરમ પવિત્ર પરમોત્કૃષ્ટ અનંત આત્મવીર્ય તે ફક્ત જ્ઞાન દર્શનાદિ પોતાનાજ અનંત ગુણને પરિણમવામાં નિઃપ્રયાસપણે સહાયરૂપ સદા પરિણમે છે. એમ શ્રી જિનેશ્વરના પરમાવરૂપ મલિનતાથી સર્વથા રહિત પરમ પવિત્ર જ્ઞાનાદિ અનંત ગુણ જોડેતેમાં માહરું મન મોહું-રત થયું-લીન થયું-ગુણાનુરાગી થયું. ॥ ૧ ॥

॥ યદ્યપિ જીવ સદા, વીર્ય ગુણ સત્તા-
વંતરે ॥ પણ કર્મે આવૃત્ત ચલ તથા, બાહ્ય
વાધક ભાવ લહંતરે ॥ મન૦ ॥ ૧ ॥

અર્થ:-વીર્ય એ જીવનો મૂલ ગુણ છે તેથી સર્વે જીવો અણે કાલે વીર્ય ગુણની સત્તા સહિત છે એટલે કોઈપણ જીવ કોઈપણ કાલે વીર્ય વગરનો

नथी; तथापि संसारी जीवो नुं वीर्य अनादिथी, कर्म
पटल वडे आवृत्त होवाथी. आत्मगुणो, संपूर्ण शुद्ध
केवलज्ञान, केवलदर्शन, यथाख्यात् चारित्रादि रूप
परिणमि शक्तां नथी अने तेथी पोतानी अनंत
अव्याबाध आत्मीय सहज समाधिथी वियोगी रहे
छे. तथा “चल” अर्थात् ज्ञानादि आत्म परिणतिमां
निश्चल-स्थिर नहि रहेतां राग द्वेष वशे अनेक
पुद्गल-पर परिणतिमां चलायमान थइ रह्युं छे,
पर कार्यमां रोक इ रह्युं छे, जेम कोइ पुरुष पर
कार्यमां पोतानी शक्ति रोके तो ते स्वकार्य साधी
शक्ते नहि तेमज ते वीर्य “बाल” हिताहितना
ज्ञानथी रहित होवाथी. “बाधक” अर्थात् पोताने
अहितकारी पणो परिणमे छे कारण के बाल बाधक
वीर्य वडे जगत् जीवो अज्ञान मिथ्यात कषाय रूप
परिणमी अनेक प्रकारना कर्मो बांधि पोताने अत्यंत
अहितकारी-दुःख समूह रूप भवोपाधि व्हारी ले
छे. पण जो पोताना वीर्य गुणने मात्र सम्यक्
ज्ञान ते आत्म परिणाममांज बापरे तो अनंत
सुखना स्वामी थाय ॥ २ ॥

अल्प वीर्य क्षयोपशम अछे, अविभाग
वर्गणा रूपरे ॥ षडगुण एम असंख्यथी,

થાયે યોગસ્થાન સ્વરૂપે ॥ મન૦ ॥ ૩ ॥

સુહમ નિગોદી જીવથી, જાવ સમ્પ્રીવર
પજ્ઞાત્તરે ॥ યોગનાં ઠાળ અસંસ્ય છે, તર-
તમ મોહે પરાયત્તરે ॥ મન૦ ॥ ૪ ॥

અર્થ:-સર્વે છદ્મસ્થ જીવોનું આત્મ વીર્ય
ક્ષયોપશમ ભાવે સદા હોય પણ સર્વથા આવૃત્ત થાય
નહિ. જો સર્વથા આવૃત્ત હોય તો ચેતનતાનો
સમૂલ અભાવ થાય તેથી છદ્મસ્થ જીવોનો પણ
વીર્ય-ગુણ ક્ષયોપશમ ભાવે હોયજ અર્થાત્ છદ્મસ્થ
જાંવોને પણ વીર્યાંતરાયનો સદા ક્ષયોપશમ હોય
અને વીર્યાંતરાયના ક્ષયોપશમ વેડે છદ્મસ્થ જીવોને
અલ્પવીર્યની પ્રગટતા હોય છે અને તે અલ્પવીર્યની
પ્રગટતાના કારણથી રત્નત્રયની મલિનતાને યોગે
પોતાના કર્તૃત્વ સ્વભાવને લીધે કર્મ (ક્રિયા) રમે
આત્મ પ્રદેશ ચલાયમાન કરે છે એટલે “ આત્મ
પ્રદેશ પરિસ્પંદો યોગઃ ” એ સૂત્ર પ્રમાણે યોગી
બને છે. પદ્યુક્ત-“ **ઉદ્મસ્થ વીર્ય લેશ્યા સંગે,
અભિસંધિજ મતિ અંગે** ॥ સૂક્ષ્મ-થૂલ-ક્રિયા

ને રંગે, યોગી થયો ઝમંગેરે ॥ ” એમ યોગ વશે
 કર્મનો ગ્રાહક થાય છે. તે યોગનું સ્વરૂપ નિચે
 પ્રમાણે “ વીર્યાતિરાય ક્ષયોપશમોત્પન્નો મનો
 વચન કાય વર્ગણાલંબનઃ કર્માદાન હેતુભૂત
 આત્મપ્રદેશ પરિસ્પંદો યોગઃ ” વીર્યાતિરાય
 કર્મના ક્ષયોપશમ વહે ઉત્પન્ન મન વચન અને કાય
 વર્ગણાનું અવલંબન કરનાર કર્મ ગ્રહણ કરવામાં
 કારણભૂત આત્મ પ્રદેશનું પરિસ્પંદ (સંચલન) તે
 યોગ છે. તિહાં જઘન્ય વીર્યવાલો જે જીવપ્રદેશ તે
 વલી કેવલીના તીક્ષ્ણ બુદ્ધિ રૂપ શસ્ત્રે કરી દેદતાં
 જે વીર્યાશનો વીજો વિભાગ થઈ શકે નહિ તે વીર્ય
 વિભાગ છે અને ભાવાણુ પણ તેનેજ કહીયે. તેવા
 લોકાકાશથી અસંખ્યાત ગુણા જે વીર્યાણુ તેણે
 કરી સહિત જે જીવપ્રદેશ તેનો સમુદાય એટલે
 જીવપ્રદેશની શ્રેણી તે પ્રથમ વર્ગણા, તેથી એક વીર્ય
 વિભાગે અધિક એવી જે જીવ પ્રદેશની શ્રેણી છે
 ત્રીજી વર્ગણા, તે વીર્યવિભાગે અધિક એવી જે જીવ
 પ્રદેશની શ્રેણી તે ત્રીજી વર્ગણા, એમ એકેક વીર્ય-
 વિભાગે અધિક વીર્યવાલા પ્રદેશની શ્રેણી તે ઘની-
 કૃત લોકની એક પ્રદેશિક સૂચી શ્રેણીને અસંખ્યાત

મે ભાગે જેટલા આકાશ પ્રદેશ હોય તેટલી વર્ગણા
 એક સ્પર્ધક થાય, તે પ્રથમ સ્પર્ધકની ઉત્કૃષ્ટ વીર્યાંશ
 વર્ગણાથી એટલે છેલ્લી વર્ગણાથી એક બે અથવા
 સંખ્યાતે વીર્યવિભાગે અધિકા કોઈ જીવ પ્રદેશ
 નથી પરન્તુ અસંખ્ય લોકાકાશ પ્રમાણ વીર્યાંશે
 અધિક જીવ પ્રદેશની શ્રેણી તે બીજા સ્પર્ધકની
 પ્રથમ વર્ગણા જાણવી, વલી તેથી એકેક વીર્યવિભાગે
 વધતા વધતા જીવ પ્રદેશની વર્ગણા કરી વીજો
 સ્પર્ધક થાય, તેથી વલી અસંખ્ય લોકાકાશ પ્રદેશ
 ભાગ પ્રમાણ વીર્યાંશે અધિક વીર્યવંત જીવ પ્રદેશની
 શ્રેણી તે ત્રીજા સ્પર્ધકની પ્રથમ વર્ગણા, એથી પેરે
 શ્રેણી પ્રદેશ અસંખ્યેય ભાગ પ્રમાણ સ્પર્ધકે પહેલું
 જઘન્ય યોગસ્થાનક થાય, તેથી અંગુલના અસંખ્યા-
 તમાં ભાગના આકાશ પ્રદેશ પ્રમાણ સ્પર્ધકે વધતું
 બીજું યોગસ્થાનક હોય, તેથી વલી તેટલેજ સ્પર્ધકે
 વધતું ત્રીજું યોગ સ્થાનક હોય, એમ અસંખ્યાતા
 યોગસ્થાન થાય. વીર્યાંતરાયના ક્ષયોપશમના અસં-
 ખ્ય મેદ છે તેથી ઉપર પ્રમાણે યોગના પણ અસં-
 ખ્યાતા મેદ થાય અર્થાત્ સૂક્ષ્મ નિગોદીઆ લઘ્વિ
 અપર્યાસા જીવને ભવ પ્રથમ સમયે સહુથી જઘન્ય
 યોગ હોય છે અને સન્નિ પંચેન્દ્રિ પર્યાસા મનુષ્ય સૌથી

ઉત્કૃષ્ટ યોગ પામી શકે છે એમ મોહની તરતમતા વશે (વીર્યાતરાયના ક્ષયોપશમના ભેદ વશે) સૂક્ષ્મ નિગોદિયા લબ્ધિઅપર્યાપ્તા જીવના ભવ પ્રથમ સમયથી માંડી સન્નિ પંચેન્દ્રિય મનુષ્ય સુધી અસં-
ખ્યાત યોગસ્થાન જાણવાં ॥ ૩ ॥ ૪ ॥

સંયમને યોગે વીર્ય તે, તુમ્હેં કીધો પંડિત
દક્ષરે ॥ સાધ્ય રસી સાધક પળે, અભિસંધિ
રમ્યો નિજ લક્ષરે ॥ મન૦ ॥ ૫ ॥

અર્થ:-જ્યાંસુધી સમ્યક્દર્શન સમ્યક્જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થઈ નથી ત્યાંસુધી સંસારી જીવ મિથ્યાત અજ્ઞાનવશે પૌદ્ગલીક કાર્યને પોતાનું કાર્ય માની વીર્યાતરાયના ક્ષયોપશમ વડે પ્રાપ્ત થયેલા આત્મ-
વીર્યને અસંયમમાં અર્થાત્ સ્વપર જીવની દ્રવ્યભાવ હિંસામાં વાપરે છે, પોતાના વીર્યને બાલ બાધક ભાવે પરિણમાવે છે, પોતાના વીર્ય વડે કર્મબંધ કરી ભવ ભ્રમણની ઉપાધિ પ્રાપ્ત કરે છે. પણ હે ભગવંત ! આપે સમ્યક્દર્શન સમ્યક્જ્ઞાન વડે પોતાનું શુદ્ધોપ-
યોગ રૂપ કાર્ય જાણી બાલ બાધક ભાવનો પરિહાર કરી ક્ષયોપશમ વડે પ્રાપ્ત થયેલા વીર્યને સંયમ કાર્યમાં જોડ્યું અર્થાત્ જ્ઞાનદર્શન ચારિત્રને નિર્મલ-

પણે પરિણમવામાં સહાયકારી કર્યું. મન વચન તથા કાયયોગને સંયમ કાર્યમાં જોડ્યા એમ આત્મવીર્યને પંડિતભાવે તથા હિંતકારી ભાવે પરિણમાવ્યું. સચ્ચિદાનંદમય શુદ્ધાત્મ દ્રવ્ય ન પોતાનું શુદ્ધ સાધ્ય જાણી તેના રસીઆ-તે સાધવાના ઉમંગી થઈ અભિસંધિજ વીર્યને (જે 'મતિપૂર્વક ઉપયુક્ત વીર્ય તે અભિસંધિજ વીર્ય) નિજ લક્ષમાં એટલે અનંત-સુખે પિંડ જે શુદ્ધાત્મપદ તે સાધવામાં રમાવ્યું-વાપર્યું. એમ અભિસંધિજ વીર્યને શુદ્ધ કારક પ્રવૃત્તિ-માં જોડી અવંધક ભાવે પરિણમાવ્યું ॥ ૫ ॥

અભિસંધિ અવંધક નીપને, અનભિસંધિ
અવંધક થાયરે ॥ સ્થિર એક તત્ત્વતા વર્તતો
તે ક્ષાયિક ભાવ સમાયરે ॥ મન૦ ॥ ૬ ॥

અર્થ:-એમ હે ભગવંત ! આપનું અભિસંધિજ વીર્ય અવંધક ભાવે વર્તવાથી અનભિસંધિજ વીર્ય પણ અવંધક ભાવે પરિણમ્યું (મન ચિંતનાપૂર્વક આહાર વિહારાકિ જે કરણ વ્યાપાર તે અભિસં-ધિજ વીર્ય કહીયે અને જે મન ચિંતના વિના કેવલ વચન અને કાયાના વ્યાપાર તે અનભિસંધિજ વીર્ય કહીયે) માટે જેની મનોવૃત્તિ-અંતરંગ ઉપયોગ

अबंधक भावमां वर्त्ते छे तेनी बचन अने कायानी
 क्रिया पण अबंधक भावमांज गणाय, संवर हेतुज
 गणाय. यद्यत्तं—भावास्त्रवाभावमयं प्रपन्ना,
 द्रव्यास्त्रवेभ्यः स्वत एव भिन्नः ज्ञानी सदा
 ज्ञान मयैक भावो, निरास्त्रवो ज्ञायक एक
 एव.” एम द्रव्यसंवर तथा भावसंवरना स्वामी
 थइ कर्मबंधनो परिहार करी आत्मवीर्यने निर्मल
 रत्नत्रयमां सहायभूत करी पोताना निर्मल एक
 परमात्मतत्त्वमां स्थिर तल्लीन पणे वर्त्ततां “क्षायिक
 भाव समाधरे” शुद्धात्म परिणतिनो | व्याघात
 करनार घातीया कर्मनो समूल क्षय करी अनंत-
 ज्ञान अनंतदर्शन/अनंतसुख अनंतवीर्य रूप पोतानी
 अनुपम अविनश्वर केवल लक्ष्मीने वर्त्ता, तेरमा
 गुणस्थाने विराजमान थया ॥ ६ ॥

॥ चक्र भ्रमण न्याय सयोगता, तजी कीध
 अयोगी धामरे ॥ अकरण वीर्य अनंतता,
 निजगुण सहकार अकामरे ॥ मन० ॥ ७ ॥

अर्थः—पछी चक्रभ्रमण न्याये अर्थात् चक्रने
 फेरववा माटे कुंभार चक्रमां दंड घाली बहु जोरथी

एकदम चक्रने फेरवे छे तेथी ते बलना वेग वडे दंड काढी लीधा पछी पण केटलीकवार सुधी चक्र फर्या करे छे. तेम अनादि कालथी आत्मा अज्ञान वशे पर कार्यने पोतानुं कार्य मानी ममस्व सहित योग क्रियामां प्रवृत्ति करे छे तेथी केवल ज्ञान थये पण दंड काढी लीधा पछी चक्र जेम फर्या करे छे तेम तेरमा गुणस्थाने पूर्व उदयवडे निर्ममत्वपणे योग-क्रिया थाय छे तेथी तेरमा गुणस्थाने पण सयोगी-पणुं छे ते चक्रभ्रमण न्याये रहेली सयोगता एटले सयोगीपणानो पण हे भगवंत ! आप त्याग करी “ कीध अयोगी धामरे ” अयोगी गुणस्थाने पधार्या करणवीर्य एटले इंद्रिजन्य बलवीर्यनो त्याग करी अतींद्रिय अनंत आत्मीक वीर्यनी प्रगटता करी. जे वीर्य मात्र ज्ञानादिगुण वर्त्तनामांज सहायकारी थाय पण अन्यद्रव्यनी कामनामां कदापिकाले चलाय-मान थाय नहि. तेथी हे भगवंत ! आप अकरण वीर्यना प्रभाव वडे अनंतकाल सुधी अकाम तथा स्वानुभूति जन्य परमानंदमां निरंतर विलास करशो. ॥ ७ ॥

॥ शुद्ध अचल निज वीर्यनी, नैरुपाधिक शक्ति अनंतरे ॥ ते प्रगटी में जाणी सही,

तेणे तुमाहिज देव महंतरे ॥ मन० ॥ ८ ॥

अर्थ:-सर्व विभाग रूप संश्लेष रहित जे आत्म वीर्य ते शुद्ध छे, तथा तेज वीर्य कामना रहित मात्र पोताना स्वगुण पर्यायमां वर्त्तवाथी परगुण पर्यायमां चलायमान थतुं नथी तेथी अचल छे, एवा शुद्ध अने अचल वीर्यनी नैरुपाधिक अर्थात् स्वाभाविक अनंत शक्ति छे अर्थात् ते वीर्य वडे अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन विगेरेनी वर्त्तना थाय छे माटे ज्यांसुधी वीर्यगुणमां अशुद्धपणुं तथा चलपणुं छे। त्यांसुधी अल्प बल छे, अनंत ज्ञानदर्शनरूप अनंत शक्ति होइ शके नहि. पण हे भगवंत ! ते शुद्ध अने अचल वीर्यनी स्वाभाविक अनंत शक्ति आपमां प्रगटपणे छे एम में निसंदेह जाण्युं कारण के एक समयमां सर्व पदार्थना त्रैकालिक पर्यायने प्रगटपणे जाणो देखो छो तेथी हे भगवत ! आपज देव ईद्रादिकने पूजवा लायक देवाधिदेव छो, अनंत केवल लक्ष्मी वडे सदा देदिप्यमान छो ॥ ८ ॥

तुज ज्ञान चेतना अनुगमी, मुज वीर्य स्वरूप समायरे ॥ ॥ पंडित क्षायिकता पामशे ए पूरण सिद्धि उपायरे ॥ मन० ॥ ९ ॥

પણે પરિણમવામાં સહાયકારી કર્યું. મન વચ્ચન તથા કાયયોગને સંયમ કાર્યમાં જોડ્યા એમ આત્મવીર્યને પંડિતભાવે તથા હિંતકારી ભાવે પરિણમાવ્યું. સચ્ચિદાનંદમય શુદ્ધાત્મ દ્રવ્યને પોતાનું શુદ્ધ સાધ્ય જાણી તેના રસીઆ-તે સાધવાના ઉમંગી થઈ અભિસંધિજ વીર્યને (જે મતિપૂર્વક ઉપયુક્ત વીર્ય તે અભિસંધિજ વીર્ય) નિજ લક્ષમાં એટલે અનંત-સુખે પિંડ જે શુદ્ધાત્મપદ તે સાધવામાં રમાવ્યું-વાપર્યું. એમ અભિસંધિજ વીર્યને શુદ્ધ કારક પ્રવૃત્તિ-માં જોડી અંબધક ભાવે પરિણમાવ્યું ॥ ૫ ॥

અભિસંધિ અંબધક નીપને, અનભિસંધિ અંબધક થાયરે ॥ સ્થિર એક તત્ત્વતા વર્તતો તે ક્ષાયિક ભાવ સમાયરે ॥ મન૦ ॥ ૬ ॥

અર્થ:-એમ હે ભગવંત ! આપનું અભિસંધિજ વીર્ય અંબધક ભાવે વર્તવાથી અનભિસંધિજ વીર્ય પણ અંબધક ભાવે પરિણમ્યું (મન ચિંતનાપૂર્વક આહાર વિહારાકિ જે કરણ વ્યાપાર તે અભિસંધિજ વીર્ય કહીયે અને જે મન ચિંતના વિના કેવલ વચ્ચન અને કાયના વ્યાપાર તે અનભિસંધિજ વીર્ય કહીયે) માટે જેની મનોવૃત્તિ-અંતરંગ ઉપયોગ

अबंधक भावमां वर्त्ते छे तेनी बचन अने कायानी
 क्रिया पण अबंधक भावमांज गणाय, संवर हेतुज
 गणाय. यद्यत्तं—भावास्त्रवाभावमयं प्रपन्ना,
 द्रव्यास्त्रवेभ्यः स्वत एव भिन्नः ज्ञानी सदा
 ज्ञान मयैक भावो, निरास्त्रवो ज्ञायक एक
 एव.” एम द्रव्यसंवर तथा भावसंवरना स्वामी
 थइ कर्मबंधनो परिहार करी आत्मवीर्यने निर्मल
 रत्नत्रयमां सहायभूत करी पोताना निर्मल एक
 परमात्मतत्त्वमां स्थिर तल्लीन पणे वर्त्ततां “ क्षायिक
 भाव समायरे ” शुद्धात्म परिणतिनो । व्याघात
 करनार घातीया कर्मनो समूल क्षय करी अनंत-
 ज्ञान अनंतदर्शन । अनंतसुख अनंतवीर्य रूप पोतानी
 अनुपम अविनश्वर केवल लक्ष्मीने वर्त्ता, तेरमा
 गुणस्थाने विराजमान थया ॥ ६ ॥

॥ चक्र भ्रमण न्याय सयोगता, तजी कीध
 अयोगी धामरे ॥ अकरण वीर्य अनंतता,
 निजगुण सहकार अकामरे ॥ मन० ॥ ७ ॥

अर्थः—पङ्खी चक्रभ्रमण न्याये अर्थात् चक्रने
 फेरववा माटे कुंभार चक्रमां दंड घाली बहु जोरथी

एकदम चक्रने फेरवे छे तेथी ते बलना वेग वडे दंड काढी लीधा पछी पण केदलीकवार सुधी चक्र फर्या करे छे. तेम अनादि कालथी आत्मा अज्ञान वशे पर कार्यने पोतानुं कार्य मानी ममस्व सहित योग क्रियामां प्रवृत्ति करे छे तेथी केवल ज्ञान थये पण दंड काढी लीधा पछी चक्र जेम फर्या करे छे तेम तेरमा गुणस्थाने पूर्व उदयवडे निर्ममत्वपणे योग-क्रिया थाय छे तेथी तेरमा गुणस्थाने पण सयोगी-पणुं छे ते चक्रभ्रमण न्याये रहेली सयोगता एटले सयोगीपणानो पण हे भगवंत ! आप त्याग करी “ कीध अयोगी धामरे ” अयोगी गुणस्थाने पधार्या करणवीर्य एटले इंद्रिजन्य बलवीर्यनो त्याग करी अतींद्रिय अनंत आत्मीक वीर्यनी प्रगटता करी. जे वीर्य मात्र ज्ञानादिगुण वर्त्तनामांज सहायकारी थाय पण अन्यद्रव्यनी कामनामां कदापिकाले चलाय. मान थाय नहि. तेथी हे भगवंत ! आप अकरण वीर्यना प्रभाव वडे अनंतकाल सुधी अकाम तथा स्वानुभूति जन्य परमानंदमां निरंतर विलास करशो. ॥ ७ ॥

॥ शुद्ध अचल निज वीर्यनी, नैरुपाधिक शक्ति अनंतरे ॥ ते प्रगटी में जाणी सही,

तेणे तुमाहिज देव महंतरे ॥ मन० ॥ ८ ॥

अर्थः—सर्व विभाग रूप संश्लेष रहित जे आत्म वीर्य ते शुद्ध छे, तथा तेज वीर्य कामना रहित मात्र पोताना स्वगुण पर्यायमां वर्त्तवाथी परगुण पर्यायमां चलायमान थतुं नथी तेथी अचल छे, एवा शुद्ध अने अचल वीर्यनी नैरुपाधिक अर्थात् स्वाभाविक अनंत शक्ति छे अर्थात् ते वीर्य वडे अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन विगेरेनी वर्त्तना थाय छे माटे ज्यांसुधी वीर्यगुणमां अशुद्धपणुं तथा चलपणुं छे। त्यांसुधी अल्प बल छे, अनंत ज्ञानदर्शनरूप अनंत शक्ति होइ शके नहि. पण हे भगवंत ! ते शुद्ध अने अचल वीर्यनी स्वाभाविक अनंत शक्ति आपमां प्रगटपणे छे एम में निसंदेह जाण्युं कारण के एक समयमां सर्व पदार्थना त्रैकालिक पर्यायने प्रगटपणे जाणो देखो छो तेथी हे भगवत ! आपज देव ईंद्रादिकने पूजवा लायक देवाधिदेव छो, अनंत केवल लक्ष्मी वडे सदा देदिप्यमान छो ॥ ८ ॥

तुज ज्ञान चेतना अनुगमी, मुज वीर्य स्वरूप समायरे ॥ ॥ पंडित क्षायिकता पामशे ए पूरण सिद्धि उपायरे ॥ मन० ॥ ९ ॥

अर्थ:-हे भगवंत ! तमारा निरंतर शुद्ध परिण-
मता कवल ज्ञानादि गुणोने माहरी चेतना अनुगमे
अर्थात् मारो चैतन्य उपयोग तदनुयायी वर्त्ते, केवल
ज्ञान केवलदर्शन रूप परिणमवानो रसीयो थाय तो
माहरू अ त्मवीर्य “ स्वरूप समायरे ” राग
द्वेषादि सर्व विभाविक कार्यमां उत्सुक तथा स्फुराय-
मान थतुं अटकी केवल आत्म गुणनेज सहायभूत
पणे वर्त्ते. एम माहरू वीर्य पंडित भावे अबंधक
पणे वर्त्ततां क्षायिक लब्धिने प्राप्त करशे एज पूर्णपदे
सिद्ध थवानो साचो उपाय छे ॥ ९ ॥

॥ नायक तारक तुं धणी, सेवनथी आतम
सिद्धिरे ॥ देवचंद्र पद संपजे, वर परमा-
नंद समृद्धिरे ॥ मन० ॥ १० ॥

अर्थ:-हे अनंत वीर्य प्रभु ! आ जगत्त्रयमां
सर्वेथी उत्कृष्ट अनंतवीर्य आपनुं होवाथी आपज
नायक छो, वली भवसमुद्रमा दूषता भव्य प्राणी-
योने आपे निर्माण करेला चरण जहाजे बेसाडी
भवसमुद्रमांथी तारवाने आपज समर्थ होवाथी
तारक छो, वली मोहादि शत्रुंथी रक्षा करवामां
आपज समर्थ होवाथी धणी छो, तेथी हे भगवंत !

आपनेज सेववाथी मारी सिद्धि थशे तथा देवमां
चंद्रमा समान अरिहंत पदनी प्राप्ति थशे तथा
परमानंदरूप उत्तम समृद्धिनी संप्राप्ति थशे ॥१०॥

॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ नवम श्री सूरप्रभ जिन स्तवनम् ॥

॥ देशी कडखानी ॥

सूर जगदीशनी तीक्ष्ण अति शूरता, तेणे
चिरकालनो मोह जीत्यो ॥ भाव स्यादवा-
दता शुद्ध परगास करी, नीपन्यो परमपद
जग वदीतो ॥ सू० ॥ १ ॥

अर्थ:-अनादिकालथो लागेलो मोहरूप महान्
शत्रु के जे दर्शन-मोहनीय प्रकृति वडे आत्माना
सम्यक् दर्शन गुणनो, तथा क्रोध वडे आत्माना
क्षमा गुणनो, मान वडे आत्माना मार्दव गुणनो,
माया वडे आत्माना आर्यव गुणनो, तथा लोभ
वडे आत्माना मुक्ति-निर्लोभ-निस्पृह गुणनो, एम
अनेक गुणनो घात करी आत्मानो शुद्ध सहज
अपरिमित आत्मीय समाधिनो नाश करी भवरूप
जेलखानामां त्रिलोकपूज्य आत्माने कैद करी राखे

छे. तेनो (मोहनो) जगत्त्रयना ईश्वर, जगत्
 शिरोमणी श्री सूर प्रभुए अत्यंत तीक्ष्ण सम्यक्-
 पराक्रमथी सम्यक् ज्ञान चारित्र्य रूप अत्यंत तीक्ष्ण
 मम भेदक शस्त्रो वडे छिन्न भिन्न करी अल्पकालमां
 पराजय-समूल नाश कर्यो भविष्यमां कोई पण
 काले एबुं दुष्ट कृत्य करवाने पुनः समुत्थित-संजी-
 वन थाय नहि. अने जीवादि पंचास्तिनी शुद्ध
 स्याद्वादपणे तथा लक्ष्य लक्षण अभेदपणे शुद्ध
 निश्चय नये निजपर सत्ता जाणी सत्तागते रहेला
 अनंत धर्मात्मक शुद्धात्म द्रव्यने कर्म मलथी रहित
 अत्यंत शुद्ध प्रगट करी जगत् त्रयमां पूज्य, प्रशं-
 नीय, आह्लादकारी, आदरणीय परमात्म (मोक्ष)
 पद निपजाव्युं-संप्राप्त कर्युं-यद्युक्तं-शार्दूल विक्री
 डितम् ॥ “ त्यक्त्वाऽशुद्धि विधायि तत्किल
 पर द्रव्यं समग्रं स्वयं, स्वद्रव्ये रंति मेति यः
 सनियतं सर्वापराधच्युतः; बन्धध्वंस मुपेत्य
 नित्य मुदितः स्वज्योतिरच्छोच्छल-चैतन्या-
 मृतपूरपूर्ण महिमा शुद्धो भवन्मुच्यते ” ॥१॥

प्रथम मिथ्यात्व इणि शुद्ध दंसण निपुण,

प्रगट करि जेणे अविराति पणाशी; शुद्ध
चारिश्रगत वीर्य एकत्वथी, परिणति कलुषता
सवि विणाशी ॥ २ ॥ सू० ॥

अर्थ:-हवे श्री सूर स्वामीए परमपूज्य परमात्म
पद जे रीते सिद्ध कर्युं ते साधना क्रम सहित
बखाणे छे.

प्रथम तो, जेना उदय बडे आत्मा शुद्ध देवने
अदेव, अदेवने शुद्ध देव, सुगुरुने कुगुरु, कुगुरुने
सुगुरु, धर्मने अधर्म, अधर्मने धर्म, जीवने अजीव,
अजीवने जीव, मोक्षने अमोक्ष, अमोक्षने मोक्ष
मानेछे, जीवादि तत्त्वमां विपरिते श्रद्धान करे छे
तथा उत्कृष्ट सीतेर कोडाकोडी सागरोपमनी
स्थितिनी बंध करे छे एवी मिथ्यात्वमोहनीय प्रकृति
तथा मिश्रमोहनीय तथा सम्यक्तमोहनीयनी नाश
करी चिंतामणि रत्न समान अत्यंत दुर्लभ शुद्ध
निर्मल सम्यक्दर्शन संप्राप्त कर्युं के जे इंद्रत्व, चक्रि-
त्व, चिंतामणि तथा कल्पवृक्षथी पण अधिक दुष्प्राप्य
छे. उक्तंच- “ इंद्रतं चक्रिकतं, सुरमणि
कप्पद्दुमस्स कोडीणं । लाभो सुलहो दुलहो, दं-
सणो तीर्थनाहस्स ॥ ” तथा जे विना नवपूर्व

સુધીનું જ્ઞાનપણ અજ્ઞાન કહેવાય છે તથા જે વિના દશમા પૂર્વનું જ્ઞાન તો થતુંજ નથી, વળી જે વિના સંસાર પરિભ્રમણની સીમા આવતી નથી, જે વિના સમ્યક્ચારિત્ર-સંયમની પ્રાપ્તિ થઈ શકતી નથી, જે વિના દ્રવ્યચારિત્ર પાલનાર પ્રથમ ગુણસ્થાને વર્તે છે માટે શ્રી જિનેશ્વર, સર્વ ધર્મનું મૂલ તથા મોક્ષનું પ્રથમ પગથીડું કહે છે. યદ્યુક્ત-શ્રા મદભયદેવ

આચાર્યેણ-“ દંસણ મૂલો ધમ્મો, ઉવડ્ઠો જિણવરેહિં સીસાણં । તં સોઉણ સકન્નં, દંસણ હીણો ન વંદિવ્વો ॥ ” લોકાલોક

પ્રકાશક શ્રી જિનેશ્વર દેવ પોતાના શિષ્યો પ્રત્યે સર્વે ધર્મનું મૂલ સમ્યક્દર્શનને ઘતાવે છે માટે દર્શન હીણ પુરુષને વંદના કરવી નહિ. ઉક્તંચ-“ સમ્મત્ત

રયણ મઠા, જાણંતાં બહુ વિહાવિ સછાઈં ।

સુદ્ધારાહણ રહિઆ, મમંતિ તછેવ તછેવ ॥”

સમ્યક્દર્શનથી અષ્ટ પુરુષ બહુ પ્રકારના શાસ્ત્ર જાણતા છતાં પણ શુદ્ધ આરાધના રહિત હોવાથી સંસાર ચક્ર વા માં જ્યાં ત્યાં ભ્રમણ કર્યાં કરે છે કારણકે સમ્યક્દર્શન વિના શુદ્ધ આરાધનાની પ્રાપ્તિ હોય નહિ. “ શુદ્ધ ક્રિયા તો સંપજે, પુગ્ગલ

આવર્ત્તને અધ્ધરે ” “ જહ મૂલંમિ વિણઠે,
દુમસ્સ પરિવાર નચ્છિ પરિવુહી । તહ જિણ
દંસણ મઠા, મૂલ વિણઠા ણ સિદ્ધંતિ ॥ ”

જેમ મૂલ વિનષ્ટ, વૃક્ષ શાખા પરિશાખાની
પરિવૃદ્ધિ પામે નહિ, તેમ ધર્મનું મૂલ સમ્યક્દર્શન
નષ્ટ થતાં મોક્ષ પ્રાપ્તિ થાય નહિ.

“ જિણ પણત્ત ધમ્મં, સદ્દહમાણસ્સ હોઈ
રયણમિણં । સારં ગુણ રયણાણય, સોવાણં
પઢમ મોરકસ્સ ॥ ”

ગુણ રત્નાકરમાં સારભૂત જે સમ્યક્દર્શન તે
શ્રી જિન પ્રરૂપિત ધર્મની શ્રદ્ધા રાખનારને હોય છે
અર્થાત્ નયનિક્ષેપ પક્ષ પ્રમાણ યુક્ત જિન પ્રરૂપિત
તત્ત્વની યથાર્થ શ્રદ્ધા તે સમ્યક્દર્શન છે જે મોક્ષનું
પ્રથમ સોપાન (પગથી ઉં) છે.

“ સંજમ રહિઅં લિંગં, દંસણ મઠં ન સંજમં
માણિયં । આણા હીણં ધમ્મં, નિરત્થયં હોઈ
સવ્વંપિ ॥ ”

સાધુનો લિંગ-વેશ, સંજમ વિના શોભા પામે

નહિ તથા ફલ પામે નહિ. અને સમ્યક્દર્શન ઇષ્ટ
ને સંજમ કહ્યું નથી એમ જિનેશ્વરની આજ્ઞા રહિત
સર્વે ધર્મક્રિયા નિર્થક અર્થાત્ મોક્ષ ફલ આપી
શકે નહિ.

તથા યોગની વીશીમાં કહ્યું છે કે “ ણાણ
ગુણેહિં વિહિણા, કિરિયા સંસાર વઢુણી
ભાણિયા ” જ્ઞાન ગુણ વગરની ક્રિયા સંસાર વધાર-
નારી કહી છે. કારણ કે સમ્યક્જ્ઞાન વગર સંવર
થાય નહિ. અને સંવર વિના સર્વે સમયે કર્મબંધ
થાય અને કર્મબંધથી સંસાર વૃદ્ધિ થાય એ સ્પષ્ટ છે.
તથા સમ્યક્દર્શન રહિતને વ્રત પાલતા છતાં પણ
તત્ત્વાર્થસૂત્રમાં અવ્રતી કહે છે “ નિશલ્યો વ્રતી ”
મિથ્યાત્વશલ્ય, માયાશલ્ય, અને નિદાનશલ્ય રહિત
વ્રતધારી હોય તે વ્રતી છે. તથા વલી શ્રીમાન્ યશો-
વિજયજી કહે છે કે “ રાગમલ્હાર-ભાવીજેરે સમ-
કીત જેહથી રુઅંડું, તે ભાવનારે ભાવો મન કરી
પરવડું । જો સમકીતરે તાજૂં સાજું મૂલરે, તો વ્રત
તરુરે દીયે શિવપદ અનુકૂલરે । ચૂટક-અનુકૂલ મૂલ
રસાલ સમકીત, તેહ વિણ મતિ અધરે । જે કરે
કિરિયા ગર્વ ખરિયા, હતે જૂઠો ધંધરે ॥ ” મા ટે

जो समकीतमूल ताजूं होय तो व्रततरु शिव फल
आपी शके माटे मोक्षफलना इच्छक पुरुषे सर्वधी
पहेलां समकीत रत्न प्राप्त करवानों उद्यम करवो
ए सार छे. माटे समकीत शी वस्तु छे ते जाणवुं
जोइये.

“ जिय अजिय पुणपावा—सव संवर बंध मुस्क
निझरणा । जेणं सहहइ तयं, सम्मं खइगाइ
बहु भेअं ॥ ”

जीवा जीवादिक नव तत्त्वनुं स्वरूप श्री
जिनेश्वरना आगम प्रमाणे नयनिक्षेप पक्ष प्रमाणे
यथार्थ जणी सहहवुं तथा हेय तत्त्वने छांडवानी
रुची तथा उपादेय तत्त्वने आदरवानी रुची ते
समकीत जाणवुं. तथा च तत्त्वार्थ सूत्रे—“ तत्त्वार्थ
श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्— ” “ जीवाजीवास्त्रव
बंध संवर निर्जरा मोक्षास्तत्त्वम्— तेमां जीव-
तत्त्व, संवरतत्त्व, निर्जरातत्त्व, अने मोक्षतत्त्व ए
चार तत्त्व उपादेय छे .था अजीव आस्त्रव बंध
ए अण तत्त्व आत्म गुणना रोधक होवाथी हेय छे.
माटे उपादेयने आदरवानी रुची तथा हेय तत्त्वने

छे. तेनो (मोहनो) जगत्त्रयना ईश्वर, जगत्
 शिरोमणी श्री सूर प्रभुए अत्यंत तीक्ष्ण सम्यक्-
 पराक्रमधी सम्यक् ज्ञान चारित्र्य रूप अत्यंत तीक्ष्ण
 मम भेदक शस्त्रो वडे छिन्न भिन्न करी अल्पकालमां
 पराजय-समूल नाश कर्यो भविष्यमां कोई पण
 काले एबुं दुष्ट कृत्य करवाने पुनः समुत्थित-संजी-
 वन थाय नहि. अने जीवादि पंचास्तिनी शुद्ध
 स्याद्वादपणे तथा लक्ष्य लक्षण अभेदपणे शुद्ध
 निश्चय नये निजपर सत्ता जाणी सत्तागते रहेला
 अनंत धर्मात्मक शुद्धात्म द्रव्यने कर्म मलधी रहित
 अत्यंत शुद्ध प्रगट करी जगत् अयमां पूज्य, प्रशंस-
 नीय, आह्लादकारी, आदरणीय परमात्म (मोक्ष)
 पद निपजाव्यु-संप्राप्त कर्युं-यद्युक्तं-शार्दूल विक्री-
 डितम् ॥ “ त्यक्त्वाऽशुद्धि विधायि तत्किल
 पर द्रव्यं समग्रं स्वयं, स्वद्रव्ये रति मेति यः
 सनियतं सर्वापराधच्युतः; बन्धध्वंस मुपेत्य
 नित्य मुदितः स्वज्योतिरच्छोच्छल-चैतन्या-
 मृतपूरपूर्ण महिमां शुद्धो भवन्मुच्यते ” ॥१॥

प्रथम मिथ्यात्व इणि शुद्ध दंसण निपुण,

प्रगट करि जेणे अविराति पणाशी; शुद्ध
चारिप्रगत वीर्य एकत्वथी, परिणति कलुषता
सवि विणाशी ॥ २ ॥ सू० ॥

अर्थ:-हवे श्री सूर स्वामीए परमपूज्य परमात्म
पद जे रीते सिद्ध कर्तुं ते साधना क्रम सहित
वखाणे छे.

प्रथम तो, जेना उदय वडे आत्मा शुद्ध देवने
अदेव, अदेवने शुद्ध देव, सुगुरुने कुगुरु, कुगुरुने
सुगुरु, धर्मने अधर्म, अधर्मने धर्म, जीवने अजीव,
अजीवने जीव, मोक्षने अमोक्ष, अमोक्षने मोक्ष
मानेछे, जीवादि तत्त्वमां विपरित श्रद्धान करे छे
तथा उत्कृष्ट सीत्तेर कोडाकोडी सागरोपमनी
स्थितिनो बंध करे छे एवी मिथ्यात्वमोहनीय प्रकृति
तथा मिश्रमोहनीय तथा सम्यक्तमोहनीयनो नाश
करी चिंतामणि रहन समान अत्यंत दुर्लभ शुद्ध
निर्मल सम्यक्दर्शन संप्राप्त कर्तुं के जे इंद्रत्व, चक्रि-
त्व, चिंतामणि तथा कल्पवृक्षथी पण अधिक दुष्प्राप्य
छे. उक्तंच- “ इंद्रत्तं चक्रित्तं, सुरमणि
कप्पद्दुमस्स कोडीणं । लाभो सुलहो दुलहो, दं-
सणो तीर्थनाहस्स ॥ ” तथा जे बिना नवपूर्व

ક્રોધવાની રુચી હોય તેનેજ સમકીતી જાણવો પણ માત્ર જીવહામે ચોલવાથી સમકીત નથી. કારણ કે શ્રી જિનેશ્વર સમકીતનાં પાંચ લક્ષણ કહે છે. અને લક્ષણ વિના લક્ષ્યનો અસદ્ભાવ હોય એ ન્યાય છે માટે “ ઉપશમ, સંવેગ, નિર્વેદ, અનુકંપા અને આસ્તિક્યતા ” એ પાંચ લક્ષણો જે જીવમાં ન હોય તે જીવને સમકીત છે એમ કેમ મનાય ?

ઉપશમ—ક્રોધાદિ કષાયોને ઉપશાંત કરે.

સંવેગ—સહજ નિરૂપાધિક પરમાત્મ પદ પ્રગટ કરવાની રુચી.

નિર્વેદ—સંસારને તથા પૌદ્ગલીક વિષયોને હાલાહલ વિષ સમાન જાણી તેથી નિવૃત્તિ થવાની રુચી.

અનુકંપા—સ્વપર જીવનાં દ્રવ્ય ભાવ પ્રાણ ઘાત કરવાનો પરિણામ નહિ.

આસ્તિક્યતા—અનંતજ્ઞાની અને વીતરાગી આસ શ્રી જિનેશ્વરનું એક પણ વચન અન્યથા ન હોય એવી શ્રદ્ધા.

આપનેજ સેવવાથી મારી સિદ્ધિ થશે તથા દેવમાં
ચંદ્રમા સમાન અરિહંત પદની પ્રાપ્તિ થશે તથા
પરમાનંદરૂપ ઉત્તમ સમૃદ્ધિની સંપ્રાપ્તિ થશે. ॥૧૦॥

॥ સંપૂર્ણ ॥

॥ અથ નવમ શ્રી સૂરપ્રભ જિન સ્તવનમ્ ॥

॥ દેશી કહવાની ॥

સૂર જગદીશની તીક્ષ્ણ અતિ શૂરતા, તેણે
ચિરકાલનો મોહ જીત્યો ॥ ભાવ સ્યાદવા-
દતા શુદ્ધ પરગાસ કરી, નીપન્યો પરમપદ
જગ વર્દીતો ॥ સૂ૦ ॥ ૧ ॥

અર્થ:-અનાદિકાલથી લાગેલો મોહરૂપ મહાન
શત્રુ કે જે દર્શન-મોહનીય પ્રકૃતિ વડે આત્માના,
સમ્યક્ દર્શન ગુણનો, તથા ક્રોધ વડે આત્માના
ક્ષમા ગુણનો, માન વડે આત્માના માર્દવ ગુણનો,
માયા વડે આત્માના આર્યવ ગુણનો, તથા લોભ
વડે આત્માના મુત્તિ-નિર્લોભ-નિસ્પૃહ ગુણનો, એમ
અનેક ગુણનો ઘાત કરી આત્માની શુદ્ધ સહજ
અપરિમિત આત્મીય સમાધિનો નાશ કરી ભવરૂપ
જેલવાનામાં ત્રિલોકપૂજ્ય આત્માને કેદ કરી રાखે

छे. तेनो (मोहनो) जगत्त्रयना ईश्वर, जगत्
 शिरोमणी श्री सूर प्रभुए अत्यंत तीक्ष्ण सम्यक्-
 पराक्रमथी सम्यक् ज्ञान चारित्र रूप अत्यंत तीक्ष्ण
 मम भेदक शस्त्रो वडे छिन्न भिन्न करी अल्पकालमां
 पराजय-समूल नाश कर्यो भविष्यमां कोई पण
 काले एबुं दुष्ट कृत्य करवाने पुनः समुत्थित-संजी-
 वन थाय नहि. अने जीवादि पंचास्तिनी शुद्ध
 स्याद्वादपणे तथा लक्ष्य लक्षण अभेदपणे शुद्ध
 निश्चय नये निजपर सत्ता जाणी सत्तागते रहेला
 अनंत धर्मात्मक शुद्धात्म द्रव्यने कर्म मलथी रहित
 अत्यंत शुद्ध प्रगट करी जगत् त्रयमां पूज्य, प्रशंस-
 नीय, आह्लादकारी, आदरणीय परमात्म (मोक्ष)
 पद निपजाव्युं-संप्राप्त कर्युं-यद्युक्तं-शार्दूल विक्री
 डितम् ॥ “ त्यक्त्वाऽशुद्धि विधायि तत्किल
 पर द्रव्यं समग्रं स्वयं, स्वद्रव्ये रति मेति यः
 सनियतं सर्वापराधच्युतः; बन्धध्वंस मुपेत्य
 नित्य मुदितः स्वज्योतिरच्छोच्छल-चैतन्या-
 मृतपूरपूर्ण महिमा शुद्धो भवन्मुच्यते ” ॥१॥

प्रथम मिथ्यात्व इणि शुद्ध दंसण निपुण,

प्रगट करि जेणे अविराति पणाशी; शुद्ध
चारित्रगत वीर्य एकत्वथी, परिणति कलुषता
सवि विणाशी ॥ २ ॥ सू० ॥

अर्थ:-हवे श्री सूर स्वामीए परमपूज्य परमात्म
पद जे रीते सिद्ध कर्तुं ते साधना क्रम सहित
बखाणे छे.

प्रथम तो, जेना उदय धडे आत्मा शुद्ध देवने
अवेव, अदेवने शुद्ध देव, सुगुरुने कुगुरु, कुगुरुने
सुगुरु, धर्मने अधर्म, अधर्मने धर्म, जीवने अजीव,
अजीवने जीव, मोक्षने अमोक्ष, अमोक्षने मोक्ष
मानेछे, जीवादि तत्त्वमां विपरित श्रद्धान करे छे
तथा उत्कृष्ट सीत्तेर कोडाकोडी सागरोपमनी
स्थितिनो बंध करे छे एवी मिथ्यात्वमोहनीय प्रकृति
तथा मिश्रमोहनीय तथा सम्यक्तमोहनीयनो नाश
करी चिंतामणि रहन समान अत्यंत दुर्लभ शुद्ध
निर्मल सम्यक्दर्शन संप्राप्त कर्तुं के जे इंद्रत्व, चक्रि-
त्व, चिंतामणि तथा कल्पवृक्षथी पण अधिक दुष्प्राप्य
छे. उक्तंच- “ इंद्रत्वं च विकत्तं, सुरमणि
कप्पद्दुमस्स कोडीणं । लाभो सुलहो दुलहो, दं-
सणो तीथ्यनाहस्स ॥ ” तथा जे विना नवपूर्व

सुधीनुं ज्ञानपण अज्ञान कहेवाय छे तथा जे विना
दशमा पूर्वनुं ज्ञान तो थतुंज नथी, चली जे विना
संसार परिभ्रमणनी सीमा आवती नथी, जे विना
सम्यक्चारित्र-संयमनी प्राप्ति थई शकती नथी, जे
विना द्रव्यचारित्र पालनार प्रथम गुणस्थाने बर्ते
छे माटे श्री जिनेश्वर, सर्व धर्मनुं मूल तथा मोक्षनुं
प्रथम पगधीउं कहे छे. यद्भुक्त-आ मद्भयदेव
आचार्येण-“ दंसण मूलो धम्मो, उवइठो
जिणवरोहिं सीसाणं । तं सोउण सकल्लं,
दंसण हीणो न वंदिव्वो ॥ ” लोकालोक
प्रकाशक श्री जिनेश्वर देव पोताना शिष्यो प्रत्ये
सर्वे धर्मनुं मूल सम्यक्दर्शनने बतावे छे माटे दर्शन
हीण पुरुषने वंदना करवी नहि. उक्तंच-“सम्मत्त
रयण भठा, जाणंता बहु विहावि सछाईं ।
सुद्धाराहण रहिआ, भमंति तछेव तछेव ॥”
सम्यक्दर्शनथी अष्ट पुरुष बहु प्रकारना शास्त्र
जाणता छतां पण शुद्ध आराधना रहित होवाथी
संसार चक्र वा मां ज्यां त्यां भ्रमण करीं करे छे
कारणके सम्यक्दर्शन विना शुद्ध आराधनानी प्राप्ति
होय नहि. “शुद्ध क्रिया तो संपजे, पुग्गल्ल-

आवर्त्तने अध्वरे ” “ जह मूलंमि विणठे,
दुमस्स परिवार नच्छि परिवुद्धी । तह जिण
दंसण भठा, मूल विणठा ण सिझांति ॥ ”

जेम मूल विनष्ट, वृक्ष शाखा परिशाखानी
परिवृद्धि पामे नहि, तेम धर्मनुं मूल सम्यक्दर्शन
नष्ट यतां मोक्ष प्राप्ति थाय नहि.

“ जिण पणत्त धम्मं, सद्वहमाणस्स होइ
रयणमिणं । सारं गुण रयणाणय, सीवाणं
पढम मोरकस्स ॥ ”

गुण रत्नाकरमां सारभूत जे सम्यक्दर्शन ते
श्री जिन प्ररूपित धर्मनी अद्धा राखनारने होय छे
अर्थात् नयनिक्षेप पक्ष प्रमाण युक्त जिन प्ररूपित
तत्त्वनी यथार्थ अद्धा ते सम्यक्दर्शन छे जे मोक्षनुं
प्रथम सोपान (पगथी उं) छे.

“ संजम रहिअं लिंगं, दंसण भठं न संजमं
भाणियं । आणा हीणं धम्मं, निरस्थयं होइ-
सव्वंपि ॥ ”

साधुनों लिंग-वेश; संजम बिना शोभा पामे

નહિ તથા ફલ પામે નહિ. અને સમ્યક્દર્શન ઇષ્ટ
ને સંજમ કહ્યું નથી એમ જિનેશ્વરની આજ્ઞા રહિત
સર્વે ધર્મક્રિયા નિર્થક અર્થાત્ મોક્ષ ફલ આપી
શકે નહિ.

તથા યોગની વીંશીમાં કહ્યું છે કે “ જ્ઞાન
ગુણેહિં વિહિણા, કિરિયા સંસાર વટ્ટુણી
ભાણિયા ” જ્ઞાન ગુણ વગરની ક્રિયા સંસાર વધાર-
નારી કહી છે. કારણ કે સમ્યક્જ્ઞાન વગર સંવર
થાય નહિ. અને સંવર વિના સર્વે સમયે કર્મબંધ
થાય અને કર્મબંધથી સંસાર વૃદ્ધિ થાય એ સ્પષ્ટ છે.
તથા સમ્યક્દર્શન રહિતને વ્રત પાલતા છતાં પણ
તત્ત્વાર્થસૂત્રમાં અવ્રતી કહે છે “ નિશલ્યો વ્રતી ”
મિથ્યાત્વશલ્ય, માયાશલ્ય, અને નિદાનશલ્ય રહિત
વ્રતધારી હોય તે વ્રતી છે. તથા વલી શ્રીમાન્ યશો-
વિજયજી કહે છે કે “ રાગમલ્હાર-ભાવીજેરે સમ-
કીત જેહથી રુઝાડું, તે ભાવનારે ભાવો મન કરી
પરવડું । જો સમકીતરે તાજું સાજું મૂલરે, તો વ્રત
તરુરે દીયે શિવપદ અનુકૂલરે । ચૂટક-અનુકૂલ મૂલ
રસાલ સમકીત, તેહ વિણ મતિ અધરે । જે કરે
કિરિયા ગર્વ ભરિયા, હતે જૂઠો ધંધરે ॥ ” માટે

જો સમકીતમૂલ તાજૂં હોય તો વ્રતતરુ શિવ ફલ આપી શકે માટે મોક્ષફલના ઇચ્છક પુરુષે સર્વથી પહેલાં સમકીત રત્ન પ્રાપ્ત કરવાનો ઉદ્યમ કરવો એ સાર છે. માટે સમકીત શી વસ્તુ છે તે જાણવું જોઈયે.

“ જિય અજિય પુણપાવા—સવ સંવર બંધ મુસ્ક નિઝરણા । જેણં સદ્દહૃડ તયં, સમ્મં સ્વઙ્ગાઈ બહુ ભેઅં ॥ ”

જીવા જીવાદિક નવ તત્ત્વનું સ્વરૂપ શ્રી જિનેશ્વરના આગમ પ્રમાણે નયનિક્ષેપ પક્ષ પ્રમાણે યથાર્થ જ ણી સદ્દહૃડ તથા હેય તત્ત્વને છાંડવાની રુચી તથા ઉપાદેય તત્ત્વને આદરવાની રુચી તે સમકીત જાણવું. તથા ચ તત્ત્વાર્થ સૂત્રે—“ તત્ત્વાર્થ શ્રદ્ધાનં સમ્યગ્દર્શનમ્-- ” “ જીવાજીવાસ્રવ બંધ સંવર નિર્જરા મોક્ષાસ્તત્ત્વમ્— તેમાં જીવ-તત્ત્વ, સંવરતત્ત્વ, નિર્જરાતત્ત્વ, અને મોક્ષતત્ત્વ એ ચાર તત્ત્વ ઉપાદેય છે તથા અજીવ આસ્રવ બંધ એ ત્રણ તત્ત્વ આત્મ ગુણના રોધક હોવાથી હેય છે. માટે ઉપાદેયને આદરવાની રુચી તથા હેય તત્ત્વને

ઘોડવાની રુચી હોય તેનેજ સમકીતી જાણવો પણ માત્ર જીવહાથે બોલવાથી સમકીત નથી. કારણ કે શ્રી જિનેશ્વર સમકીતનાં પાંચ લક્ષણ કહે છે. અને લક્ષણ વિના લક્ષ્યનો અસદ્ભાવ હોય એ ન્યાય છે માટે “ ઉપશમ, સંવેગ, નિર્વેદ, અનુકંપા અને આસ્તિક્યતા ” એ પાંચ લક્ષણો જે જીવમાં ન હોય તે જીવને સમકીત છે એમ કેમ મનાય ?

ઉપશમ—ક્રોધાદિ કષાયોને ઉપશાંત કરે.

સંવેગ—સહજ નિરૂપાધિક પરમાત્મ પદ પ્રગટ કરવાની રુચી.

નિર્વેદ—સંસારને તથા પૌદ્ગલીક વિષયોને હાલાહલ વિષ સમાન જાણી તેથી નિવૃત્તિ થવાની રુચી.

અનુકંપા—સ્વપર જીવના દ્રવ્ય ભાવ પ્રાણ ઘાતે કરવાનો પરિણામ નહિ.

આસ્તિક્યતા—અનંતજ્ઞાની અને વીતરાગી આસ શ્રી જિનેશ્વરનું એક પણ શ્વચન અન્યથા ન હોય એવી શ્રદ્ધા.

प्रापनेज सेववाधी मारी सिद्धि थशे तथा देवमां
चंद्रमा समान अरिहंत पदनी प्राप्ति थशे तथा
परमानंदरूप उत्तम समृद्धिनी संप्राप्ति थशे. ॥१०॥

॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ नवम श्री सूरप्रभ जिन स्तवनम् ॥

॥ देशी कडखानी ॥

सूर जगदीशनी तीक्ष्ण अति शूरता, तेणे
चिरकालनो मोह जीत्यो ॥ भाव स्यादवा-
दता शुद्ध परगास करी, नीपिन्यो परमपद
जग वर्दीतो ॥ सू० ॥ १ ॥

अर्थ:-अनादिकालथी लागेलो मोहरूप महान्
शत्रु के जे दर्शन-मोहनीय प्रकृति वडे आत्माना
सम्यक् दर्शन गुणनो, तथा क्रोध वडे आत्माना
क्षमा गुणनो, मान वडे आत्माना मार्दव गुणनो,
माया वडे आत्माना आर्यव गुणनो, तथा लोभ
वडे आत्माना मुक्ति-निर्लोभ-निस्पृह गुणनो, एम
अनेक गुणनो घात करी आत्मानो शुद्ध सहज
अपरिमित आत्मीय समाधिनो नाश करी भवरूप
जेलखानामां त्रिलोकपूज्य आत्माने कैद करी राखे

छे. तेनो (मोहनो) जगत्त्रयना ईश्वर, जगत्
 शिरोमणी श्री सूर प्रभुः अत्यंत तीक्ष्ण सम्यक्-
 पराक्रमधी सम्यक् ज्ञान चारित्र्य रूप अत्यंत तीक्ष्ण
 मम भेदक शस्त्रो वडे छिन्न भिन्न करी अल्पकालमां
 पराजय-समूल नाश कर्यो भविष्यमां कोई पण
 काले एबुं दुष्ट कृत्य करवाने पुनः समुत्थित-संजी-
 वन थाय नहि. अने जीवादि पंचास्तिनी शुद्ध
 स्याद्वादपणे तथा लक्ष्य लक्षण अभेदपणे शुद्ध
 निश्चय नये निजपर सत्ता जाणी सत्तागते रहेला
 अनंत धर्मात्मक शुद्धात्म द्रव्यने कर्म मलधी रहित
 अत्यंत शुद्ध प्रगट करी जगत् त्रयमां पूज्य, प्रशंस-
 नीय, आह्लादकारी, आदरणीय परमात्म (मोक्ष)
 पद निपजाव्यु-संप्राप्त कर्युं-यद्युक्तं-शार्दूल विक्री
 डितम् ॥ “ त्यक्त्वाऽशुद्धि विधायि तत्किल
 पर द्रव्यं समग्रं स्वयं, स्वद्रव्ये रति मेति यः
 सनियतं सर्वापराधच्युतः; बन्धध्वंस मुपेत्य
 नित्य मुदितः स्वज्योतिरच्छोच्छल-चैतन्या-
 मृतपूरपूर्ण महिमा शुद्धो भवन्मुच्यते ” ॥१॥

प्रथम मिथ्यात्व हणि शुद्ध दंसण निपुण,

प्रगट करि जेणे अविरति पणाशी; शुद्ध
चारित्रगत वीर्य एकत्वथी, परिणति कलुषता
सवि विणाशी ॥ २ ॥ सू० ॥

अर्थ:-हवे श्री सूर स्वामीए परमपूज्य परमात्म
पद जे रीते सिद्ध कर्तुं ते साधना क्रम सहित
बखाणे छे.

प्रथम तो, जेना उदय बडे आत्मा शुद्ध देवने
अवेव, अदेवने शुद्ध देव, सुगुरुने कुगुरु, कुगुरुने
सुगुरु, धर्मने अधर्म, अधर्मने धर्म, जीवने अजीव,
अजीवने जीव, मोक्षने अमोक्ष, अमोक्षने मोक्ष
मानेछे, जीवादि तत्त्वमां विपरित श्रद्धान करे छे
तथा उत्कृष्ट सीत्तेर कोडाकोडी सागरोपमनी
स्थितिनो बंध करे छे एवी मिथ्यात्वमोहनीय प्रकृति
तथा मिश्रमोहनीय तथा सम्यक्तमोहनीयनो नाश
करी चिंतामणि रहन समान अत्यंत दुर्लभ शुद्ध
निर्मल सम्यक्दर्शन संप्राप्त कर्तुं के जे इंद्रत्व, चक्रि-
त्व, चिंतामणि तथा कल्पवृक्षथी पण अधिक दुष्प्राप्य
छे. उक्तंच- “ इंद्रत्तं चक्रिक्तं, सुरमणिं
कल्पद्दुमस्त कोडीणं । लाभो सुलहो दुलहो, दं-
सणो तीपथनाहस्त ॥ ” तथा जे विना नवपूर्व

સુધીનું જ્ઞાનપણ અજ્ઞાન કહેવાય છે તથા જે વિના
 દશમા પૂર્વનું જ્ઞાન તો થતુંજ નથી, વળી જે વિના
 સંસાર પરિભ્રમણની સીમા આવતી નથી, જે વિના
 સમ્યક્ચારિત્ર-સંયમની પ્રાપ્તિ થઈ શકતી નથી, જે
 વિના દ્રવ્યચારિત્ર પાલનાર પ્રથમ ગુણસ્થાને વર્તે
 છે માટે શ્રી જિનેશ્વર, સર્વ ધર્મનું મૂલ તથા મોક્ષનું
 પ્રથમ પગથીડું કહે છે. યદ્યુક્ત-શ્રી મદ્ભયદેવ
 આચાર્યેણ-“ દંસણ મૂલો ધમ્મો, ઉવડ્ઠો
 જિણવરોહિં સીસાણં । તં સોડણ સકન્નં,
 દંસણ હીણો ન વંદિઠ્ઠો ॥ ” લોકાલોક
 પ્રકાશક શ્રી જિનેશ્વર દેવ પોતાના શિષ્યો પ્રત્યે
 સર્વે ધર્મનું મૂલ સમ્યક્દર્શનને બતાવે છે માટે દર્શન
 હીણ પુરુષને વંદના કરવી નહિ. ઉક્તંચ-“ સમ્મત્ત
 રચણ મઠા, જાણંતા બહુ વિહાવિ સછાઈં ।
 સુદ્ધારાહણ રહિઆ, મમંતિ તછેવ તછેવ ॥”
 સમ્યક્દર્શનથી અષ્ટ પુરુષ બહુ પ્રકારના શાસ્ત્ર
 જાણતા ઊતાં પણ શુદ્ધ આરાધના રહિત હોવાથી
 સંસાર ચક્ર વા માં ડ્યાં ત્યાં ભ્રમણ કર્યા કરે છે
 કારણકે સમ્યક્દર્શન વિના શુદ્ધ આરાધનાની પ્રાપ્તિ
 હોય નહિ. “શુદ્ધ ક્રિયા તો સંપજે, પુરગલ

आवर्त्तने अध्वरे ” “ जह मूलमि विणठे,
दुमस्स परिवार नच्छि परिवुद्धी । तह जिण
दंसण भठा, मूल विणठा ण सिझंति ॥ ”

जेम मूल विनष्ट, वृक्ष शाखा परिशाखानी
परिवृद्धि पामे नहि, तेम धर्मनुं मूल सम्यक्दर्शन
नष्ट यतां मोक्ष प्राप्ति थाय नहि.

“ जिण पणत्त धम्मं, सहहमाणस्स होइ
रयणमिणं । सारं गुण रयणाणय, सोवाणं
पढम मोरकस्स ॥ ”

गुण रत्नाकरमां सारभूत जे सम्यक्दर्शन ते
श्री जिन प्ररूपित धर्मनी अद्धा राखनारने होय छे
अर्थात् नयनिक्षेप पक्ष प्रमाण युक्त जिन प्ररूपित
तत्त्वनी यथार्थ अद्धा ते सम्यक्दर्शन छे जे मोक्षनुं
प्रथम सोपान (पगथी ऊं) छे.

“ संजम रहिअं लिंगं, दंसण भठं न संजमं
भाणियं । आणा हीणं धम्मं, निरत्थयं होइ
सव्वंपि ॥ ”

साधुनो लिंग-वैश, संजम विना शोभा पामे

નહિ તથા ફલ પામે નહિ. અને સમ્યક્દર્શન અષ્ટ
ને સંજમ કહ્યું નથી એમ જિનેશ્વરની આળ રહિત
સર્વે ધર્મક્રિયા નિર્થક અર્થાત્ મોક્ષ ફલ આપી
શકે નહિ.

તથા યોગની વીંશીમાં કહ્યું છે કે “ ણાણ
ગુણેહિં વિહિણા, કિરિયા સંસાર વઢ્ઢુણી
ભાણિયા ” જ્ઞાન ગુણ વગરની ક્રિયા સંસાર વધાર-
નારી કહી છે. કારણ કે સમ્યક્જ્ઞાન વગર સંવર
થાય નહિ. અને સંવર વિના સર્વે સમયે કર્મબંધ
થાય અને કર્મબંધથી સંસાર વૃદ્ધિ થાય એ સ્પષ્ટ છે.
તથા સમ્યક્દર્શન રહિતને વ્રત પાલતા છતાં પણ
તત્ત્વાર્થસૂત્રમાં અવ્રતી કહે છે “ નિશલ્યો વ્રતી”
મિથ્યાત્વશલ્ય, માયાશલ્ય, અને નિદાનશલ્ય રહિત
વ્રતધારી હોય તે વ્રતી છે. તથા વલી શ્રીમાન્ યશો-
વિજયજી કહે છે કે “ રાગમલહાર-ભાવીજેરે સમ-
કીત જેહથી રુઅડું, તે ભાવનારે ભાવો મન કરી
પરવડું. જો સમકીતરે તાજું સાજું મૂલરે, તો વ્રત
તરુરે દીયે શિવપદ અનુકૂલરે. ત્રૂટક-અનુકૂલ મૂલ
રસાલ સમકીત, તેહ વિણ મતિ અધરે. જે કરે
કિરિયા ગર્વ ભરિયા, હતે જૂઠો ધંધરે ॥ ” મા ટે

जो समकीतमूल ताजूं होय तो व्रततरु शिव फल
आपी शके माटे मोक्षफलना इच्छक पुरुषे सर्वधी
पहेलां समकीत रत्न प्राप्त करवानो उद्यम करवो
ए सार छे. माटे समकीत शी वस्तु छे ते जाणवुं
जोइये.

“ जिय अजिय पुणपावा—सव संवर बंध मुस्क
निझरणा । जेणं सहहइ तयं, सम्मं खड्गाइ
बहु भेअं ॥ ”

जीवा जीवादिक नव तत्त्वतुं स्वरूप श्री
जिनेश्वरना आगम प्रमाणे नयनिक्षेप पक्ष प्रमाणे
यथार्थ ज णी सहहवुं तथा हेय तत्त्वने छांडवानी
रुची तथा उपादेय तत्त्वने आदरवानी रुची ते
समकीत जाणवुं. तथा च तत्त्वार्थ सूत्रे—“ तत्त्वार्थ
श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्—” “ जीवाजीवास्त्रव
बंध संवर निर्जरा मोक्षास्तत्त्वम्— तेमां जीव-
तत्त्व, संवरतत्त्व, निर्जरातत्त्व, अने मोक्षतत्त्व ए
वार तत्त्व उपादेय छे तथा अजीव आस्त्रव बंध
ए अण तत्त्व आत्म गुणना रोधक होवाथी हेय छे.
माटे उपादेयने आदरवानी रुची तथा हेय तत्त्वने

ઢોડવાની રુચી હોય તેનેજ સમકીતી જાણવો પણ માત્ર જીવ્હાગ્રે ચોલવાથી સમકીત નથી. કારણ કે શ્રી જિનેશ્વર સમકીતનાં પાંચ લક્ષણ કહે છે. અને લક્ષણ વિના લક્ષ્યનો અસદ્ભાવ હોય એ ન્યાય છે માટે “ ઉપશમ, સંવેગ, નિર્વેદ, અનુકંપા અને આસ્તિક્યતા ” એ પાંચ લક્ષણો જે જીવમાં ન હોય તે જીવને સમકીત છે એમ કેમ મનાય ?

ઉપશમ—ક્રોધાદિ કષાયોને ઉપશાંત કરે.

સંવેગ—સહજ નિરૂપાધિક પરમાત્મ પદ પ્રગટ કરવાની રુચી.

નિર્વેદ—સંસારને તથા પૌદ્ગલિક વિષયોને હાલાહલ વિષ સમાન જાણી તેથી નિવૃત્તિ થવાની રુચી.

અનુકંપા—સ્વપર જીવના દ્રવ્ય ભાવ પ્રાણ ઘાત કરવાનો પરિણામ નહિ.

આસ્તિક્યતા—અનંતજ્ઞાની અને ચીતરાગી આસ શ્રી જિનેશ્વરનું એક પણ વચન અન્યથા ન હોય એવી શ્રદ્ધા.

એમ સમ્યક્જ્ઞાન તથા સમ્યક્ચારિત્રનું મૂલ-
 કારણ સમ્યક્દર્શન છે એમ જાણી શ્રી સૂર પ્રભુજીએ
 દર્શનમોહનોય પ્રકૃતિનો નાશ કરી અત્યંત શુદ્ધ
 નિપુણ ક્ષાયિક સમકીર્ત પ્રગટ કરી “ અવિરતિ
 પળાશી ” પાંચ ઇંદ્રિય તથા મનનો નિગ્રહ નહિ
 તથા ષડ્કાય જીવના દ્રવ્ય ભાવ પ્રાણની હિંસાનો
 ત્યાગ નહિ એવં બાર પ્રકારની અવિરતિ તેનો નાશ
 કર્યો. પંચ ઇંદ્રિયના ત્રેવીશ વિષયોમાં તથા મનના
 શુભાશુભ સંકલ્પોમાં આત્મ પરિણામને વિક્ષિપ્ત
 કરવાથી તથા સ્વપર જીવના દ્રવ્ય ભાવ પ્રાણની
 હિંસાથી જ્ઞાનાવરણાદિ કર્મનો બંધ થાય છે અને
 કર્મબંધ વડે સહજ આત્મ સમાધિનો ઘાત થઈ
 અત્યંત દુઃખદાયક આ સંસાર સમુદ્રમાં પરિભ્રમણ
 કરવું પડે છે. એમ ક્ષાયિકસમકીર્ત વડે જેણે શ્રદ્ધા પૂર્વક
 જાણ્યું તેનો પરિણામ અવિરતિમાં કેમ પ્રવેશ કરે ?
 એમ અવિરતિનો નાશ થવાથી પરભાવ રાગ દ્વેષ
 વિભાવાદિકનો ત્યાગ તથા જ્ઞાન દર્શન ચારિત્રાદિ
 સ્વગુણમાં રમણ રૂપ શુદ્ધ ચારિત્રથી પોતાના આત્મ
 વીર્યની એકતા કરી અર્થાત્ સકલ આત્મ વીર્યને
 સ્વભાવાચરણમાંજ વર્તીવી “ પરિણાતિ કલુષતા

सावि विणाशी ” आत्म परिणाममां कषायनो
प्रवेश थवा दीधो नहि एम कलुषता परिणतिनो
नाश कर्यो. ॥ २ ॥

वारि परभावनी कर्तृता मूलथी, आत्म
परिणाम कर्तृत्व धारी । श्रेणी आगेहतां वेद
हास्यादिनी, संगमी चेतना प्रभु निवारी ॥
सूर० ॥ ३ ॥

अर्थ:-आत्म स्वरूपना अज्ञान वडे जीव, पर-
भावनो कर्ता बने छे अर्थात् अमुक पदार्थने में
सुवर्ण करथो, अमुकने में कुवर्ण कर्यो, अमुकने
में मनोज्ञ रसवालो कर्यो, अमुकने में अमनोज्ञ
रसवालो कर्यो, अमुकने में सुगंधी कर्यो, अमुकने
में दुर्गंधी कर्यो, अमुकने में मनोज्ञ स्पर्शवालो तथा
अमुकने में अमनोज्ञ स्पर्शवालो कर्यो, तथा में सुंदर
असुंदर शब्दादिक कर्यो पण रूप रस गंध स्पर्शादि
जे पुद्गल द्रव्यनो परिणाम तने आत्मा कदापी
काले करी शके नहि छतां पर द्रव्यना परिणामने अज्ञान
वडे पोतानी क्रिया मानी ले छे. तथा अमुक जावने
में सुखी कर्यो अमुकने में दुःखी कर्यो परजा-
वना कर्मफलने पोतानी क्रिया मानी ले छे. मन

વચન કાયાના યોગની ક્રિયાનું મમેત્વ કરી તે
 ક્રિયાનો કર્તા પોતાને માને છે. થા પરજીવે મને
 સુખી થા દુઃખી કર્યો એમ પોતાના કર્મફલને પર-
 જીવની ક્રિયા માની લે છે. એવા મિથ્યાભિમાન વડે
 જ્ઞાનાવરણાદિ કર્મનો બંધ કરે છે પણ શ્રી સૂર-
 સ્વામીએ સમ્યક્જ્ઞાનવડે એવા મિથ્યાભિમાનનો
 નાશ કરી પોતાની સહજ આત્મીય જ્ઞાનાદિ ક્રિયામાં
 પોતાનું કર્તાપણું આર્થ્યું. યદ્યુક્ત—“ આત્મા
 જ્ઞાનં સ્વયં જ્ઞાનં, જ્ઞાનાદન્યત્ કરોતિ કિમ ?
 પરભાવસ્ય કર્તાઽત્મા, મોહોવ્યં વ્યવહારિણામ્ । ”
 માટે વસ્તુતઃ પરદ્રવ્યનો કોઈપણ કર્તા થઈ શકે
 નહિ એ ન્યાય છે—“ યઃપરિણમતિ સ કર્તા,
 યઃપરિણામો ભવેત્ તુ તત્ કર્મ । યા પરિણતિઃ
 ક્રિયા સા, ત્રયમાપ ભઘ્નં ન વસ્તુતયા ”

અર્થઃ—જે પરિણમે તે કર્તા છે અને પરિણામ તે
 તેનું કર્મ છે અને પરિણતિ તે તેની ક્રિયા છે એમ એ
 ત્રણે ભાવ વસ્તુતઃ અભેદ છે. તથાપિ—“ આ સંસારત
 ઇવ ધાવતિ પરં, કુર્વેઽહ મિત્યુચ્ચકૈ—દુર્વારં
 ન તુ મોહિનામિહ મહાહંકાર રૂપં તમઃ ।

तद्भूतार्थ परिग्रहेण विलयं यद्येकवारं व्रजेत्,
तर्हि ज्ञान घनस्य बन्धन महोभूयो भवेदा-
त्मनः ॥”

अर्थः—आ जगत्मां मोही अज्ञानी जीवो जाणो
छे के “हुं पर द्रव्यने करुं छुं” एवो पर द्रव्यनां
कर्तृत्वना अहंकाररूप अतिशय दुर्वार अज्ञान अंध
कार अनादिकालथी चाल्यो आवे छे यण जो तेनो
शुद्ध निश्चय ज्ञानवडे एकवार पण समूल नाश करी
नौखे तो शुद्ध केवलज्ञाननी प्राप्ति थाय अने पछीथी
कदापि एवा अज्ञान अंधकारने न करे—कर्मबंध करे
नहि. तथा “श्रेणी आरोहतां” क्षपक श्रेणीए
चढतां हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा ए
हास्यादि षट्क तथा स्त्रीवेद, पुरुषवेद, अने नपुंसक-
वेद, एम नव नोकषायमांथी पोतानी आत्म परिण-
तिने वारी अकषाय भावमां—शुद्ध स्वरूपमां तल्लीन
करी ॥ ३ ॥

भेदज्ञाने यथा वस्तुता उलखी द्रव्य पर्यायमें
थइ अभेदी। भाव सविकल्पता छदि केवल
सकल, ज्ञान अनंतता स्वामी वेदी ॥ सूर० ॥ ४॥

अर्थः—“द्रव्यना सर्वे धर्मो तेना परमगुणना अनुयायीपणेज वर्त्ते” ए न्यायानुसारे! आत्मानो परमगुण जे चेतनता तदनुयायीपणे वर्त्तता ज्ञान दर्शन चारित्र तप वीर्यादि परिणामोने पोताना परिणाम जाण्या सह्या अने एथी विपरित, चेतन-तान अनुयायीपणे नहि वर्त्तता, रूप रसगंध स्पर्शादि तथा चलन सहायादिक परिणामोने, पर द्रव्यना परिणाम जाण्या सह्या. एम भेदविज्ञानना प्रबल पराक्रम वडे पोताना गुण पर्याय तथा पर द्रव्यना गुण पर्यायने यथार्थ भिन्न भिन्न जाणी पर द्रव्यना गुण पर्यायमांथी अहंममत्व उठावो राग द्वेषादि विभाव परिणामने दुःखदायक तथा कर्मबंधना हेतु जाणी, पोतानी आत्म भूमिमांथी तेनो तदन अभाव करी, पोताना गुण पर्यायने पोताथी अभेद स्वरूप जाणी-तेमांज अभेदपणे तल्लीन थया. संकल्प विकल्प रूप समल परिणामने तजी निर्विकल्प-अचल परिणामरूप यथाख्यात् चारित्र-द्वादशम गुणस्थान पामी अंतर मुहूर्त्तमां घातीकर्मनो नाश करी श्री सूरस्वामी अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र, अनंत वीर्यना स्वामी तथा भोक्ता थया. यद्युक्तं

मालिनी छंद-निज महिमरतानां भेदविज्ञान

શક્ત્યા; ભવતિ નિયતમેષાં, શુદ્ધ તત્ત્વો-
પલમ્ભઃ । અચલિત મણિલાન્ય દ્રવ્ય દૂરે
સ્થિતાનાં, ભવતિ સાત ચ તસ્મિન્ન ક્ષયઃ
કર્મ મોક્ષઃ ॥

અર્થઃ—જે પુરુષ ભેદ વિજ્ઞાનની શક્તિવડે આત્મ
સ્વરૂપના મહિમામાં લીન થાય છે તેને નિશ્ચય શુદ્ધ
તત્ત્વની પ્રાપ્તિ થાય છે; અને શુદ્ધ તત્ત્વની પ્રાપ્તિ
થવાથી સર્વ પરદ્રવ્ય તથા પરદ્રવ્યના પરિણામથી
દૂર વર્તે છે, અક્ષય મોક્ષ અવસ્થાને પ્રાપ્ત થાય છે.
માટે જ્યાંસુધી ભેદ વિજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થઈ નથી ત્યાં-
સુધી અવશ્ય સર્વે સમય કર્મબંધ થાય છે અને ભેદ
વિજ્ઞાનવડે કર્મબંધથી મુક્ત થવાય છે.

“ ભેદ વિજ્ઞાન તઃ સિદ્ધાઃ, સિદ્ધા યે કિલ
કેચ ન । તસ્યૈવા ભાવતો બદ્ધા, બદ્ધા યે
કિલ કેચ ન ”

અર્થઃ—જે કોઈ સિદ્ધ થયા તે ભેદ વિજ્ઞાન વડેજ
સિદ્ધ થયા છે અને જે કર્મથી બંધાય છે તે ભેદ
વિજ્ઞાનના અભાવથીજ બંધાય છે માટે જો કર્મ-

બંધનો અભાવ કરવાની રુચી હોય તો ભેદ વિજ્ઞાન-
સમ્યક્ જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ કરવી એ સાર છે. ૪ ॥

વીર્ય ક્ષાયિકબલે ચપલતા યોગની, રોધિ
ચેતન કર્યો શુચિ અલેશી; ભાવ શૈલેશીમે
પરમ આક્રિય થઈ, ક્ષય કરી ચાર તનુ કર્મ
શેષી ॥ સૂર૦ ॥ ૫ ॥

અર્થ:-એમ શ્રી સૂરસ્વામી અનંત ચતુષ્ટયને પ્રાપ્ત
કરી તેરમા ગુણસ્થાને તીર્થંકર નામકર્મના ઉદયે
ભવ્ય જીવોને આ દુઃખદાયક ભવ સસુદ્રમાંથી
તારનાર સ્યાદ્વાદ નય યુક્ત જીવાજીવાદિ તત્ત્વનો
ઉપદેશ આપી-પંક્તી પ્રાપ્ત કરેલા ક્ષાયિકવીર્યના
બલ વડે, કારણ વીર્ય વડે થતી ચપલતા દૂર કરી
મેરુ પર્વતની પેઠે નિઃપ્રકંપ-શૈલેશી કરણ કરી, મન
વચન અને કાયાની ક્રિયાનો ત્યાગ કરી પોતાના
આત્મ દ્રવ્યને પચિન્ન-પુદ્ગલ પરિણામના સંશ્લેષ
રહિત-અલેશી કરી પરમ અક્રિય અવસ્થા ધારણ
કરી, ધાર્કી રહેલા વેદનીય, નામ, ગોત્ર, અને આયુ
એ ચાર અઘાતીયા કર્મનો સર્વથા નાશ કરી
“ પૂર્વ પ્રયોગાદસંગત્વાદ્વન્ધચ્છેદા ત્તથા ગતિ
પરિણામોઽન્વ ” પૂર્વ પ્રયોગના હેતુએ અસંગ હોવાથી

कर्मबंधनो सर्वथा नाश होवाची तथा गति, परि-
णामवडे तुंवीना द्रष्टांते आठमी इशिप्रभारा पृथ्वी
अर्थात् सिद्ध अवस्थामां विराजमान थया ॥ ५ ॥

वर्ण रस गंध विनु फरस संस्थान विनु,
योग तनु संग विनु जिन अरूपी । परम
आनंद अत्यंत सुख अनुभवी, तत्त्व तन्मय
सदाचित्स्वरूपी ॥ सूर० ॥ ६ ॥

अर्थ:-श्री सूरस्वामी सिद्ध अवस्थाने प्राप्त
थया. ते सिद्ध स्वरूप केवुं छे-पांच प्रकारना वर्ण,
पांच प्रकारना रस, बे प्रकारनी गंध, आठ प्रकारना
स्पर्श, छ प्रकारनां संस्थान, त्रण प्रकारना योग,
पांच प्रकारनां शरीर तथा अंतरंग अने बाह्य ए बे
प्रकारना परिग्रह्यी रहित तथा राग द्वेषादि विभा-
वची पण रहित होवार्थी सर्वे नये अरूपी अवस्थाने
संप्राप्त छे । कारण के जीवन्तु शुद्ध स्वरूप वर्णादि
तथा रागादि भावची रहित छे. यदयुक्तं-“तत्त्व
भवे जावाणं, संसारत्थाण होंति वणाइ ।
संसार पमुक्काणं, णत्थिहु वणादओ केइ ॥
जीवस्स णच्छि वणो, णवि गंधो णवि रसो

ળવિય ફાસો । ણવિ રૂવં ણ સરીરં, ણવિ-
 સંઠાણં ણ સંહણણં ॥ ” પળ સંસાર-અવસ્થામાં
 જીવ કર્મબંધયુક્ત હોવાથી શરીરાદિમાં અહંમમસ્થ
 કરી વાને છે તેથી વ્યવહાર નયે રૂપી કહેવાય છે.
 જેમ જે ઘડામાં ઘૂત ભરેલું હોય તે ધીનો ઘડો
 કહેવાય પણ વાસ્તવિક રીતે જોતાં ઘડો કાંઈ ધીનો
 નથી માટીનોજ છે. યદ્યુક્તં “ પદ્મતાપદ્મતય, જે
 સુદુમા વાયરાય જે ચેવ । દેહસ્સ જીવ સળા,
 ‘સુત્તે વ્યવહારદો ઉત્તા ॥ ” પર્યાસ, અપર્યાસ,
 સૂદ્દમ, ષાદર, એકંદ્રિય બેદંદ્રિય વિગેરે શરીરને જે
 જીવ સંજ્ઞા કહી છે તે વ્યવહાર નયની અપેક્ષા
 જાણવી. કારણ કે ચૌદે જીવસ્થાન તે પુદ્ગલ સંગે
 છે, જીવનો સૂલ સ્વભાવ નથી. પણ શ્રી સુરસ્વામી
 તો કર્મબંધથી-સંસાર અવસ્થાથી સર્વથા મુક્ત હો-
 વાર્થા વ્યવહાર તથા નિશ્ચય બંને નયે અરૂપી અવસ્થા
 ભોગવે છે તથા “ પરમ આનંદ અત્યંત સુખ
 અનુભવી, તત્ત્વ તન્મય સદા ચિત્સ્વરૂપી ”
 પરમ આનંદ-સર્વોત્કૃષ્ટ આનંદ જેનું આ ત્રિલોકમાં
 કોઈ ઉપમાન નથી એવા પરમાનંદને તથા જે સુખનો
 કોઈકાલે અંત નથી એવા સહજ અકૃત્રિમ અનુષ-

धरित सुखमे संप्राप्त-ते सुखमे सदा निष्कण्टक पणे
 अनुभवे छे-तेमांज निमग्न छे तथा पोताना शुद्धात्म
 तत्त्वथी तन्मय तथा चित्स्वरूपी अथात् अखंड
 अनंत ज्ञान स्वरूपमां सदा सादिअनंत भांगे
 अवस्थित थया छे. ॥ ६ ॥

ताहरी शूरता धीरता तीक्ष्णता, देखी सेवक
 तणो चित्त राख्यो । राग सुप्रशस्तथी
 गुणी आश्चर्यता, गुणी अद्भुतपणे जीव मा-
 च्यो ॥ सूर० ॥ ७ ॥

अर्थ:-उपसर्ग परिसहादि तथा अनेक प्रकारना
 शुभाशुभ कर्म उदय आवता छतां पण अत्यंत धैर्य
 आदरी आत्म सत्ताभूमिमां निर्भय निष्कंपपणे
 झडोल रही अतिशय शौर्य पूर्वक ज्ञान बाणना
 प्रहार वडे तथा अपरिमित आत्म वीर्यनी तीक्ष्णता
 वडे मोहादि कर्म शत्रुओने निर्वेश कर्या. ते आपनी
 शूरता, धीरता अने तीक्ष्णता जोई हुं सेवकहुं चित्त
 तेमां राख्युं-रत थयुं.

तथा आपना सर्वोपरी कल्याणकारी अद्भुत
 ज्ञानादि आत्मगुणो जोई अत्यंत आश्चर्यता पामी
 सुप्रशस्त राग वडे आपना गुणमां माहरो आत्मा-

माच्यो, कारणके आसोक परलोकना विषयसुखनी
आकांक्षा रहित अरिहंतादि पंच परमेष्ठी तथा
आगम, साधर्मीक उपर पक्षपात विना गुणीपणा
माटे जे राग ते प्रशस्तराग जाणवो, ते जोके
पुण्यबंधनो हेतु छे तथापि छता आत्मगुणने स्थिर
थवानो तथा नवागुण प्रगट करवानो हेतु छे.
यद्युक्तं “ नाणाइसु गुणसु, अरिहंताइसु
धम्म रूवेसु । धम्मोवगरणं साहम्मीएसु
धम्मच्छं जोय गुण रागो ॥ सो सुपसंस्थो
रागो, धम्म संयोग कारणो गुणदो । पढमं
कायव्वो सो पत्तगुणे खवइ तं सव्वं ” ॥७॥

आत्मगुण रुचि थये तत्त्व साधन रसी, तत्त्व
निष्पत्ति निर्वाण थावे । देवचंद्र शुद्ध पर-
मात्म सेवन थकी, परम आत्मीक आनंद
पावे ॥ सूर० ॥ ८ ॥

अर्थ:-ज्ञानादि अनंत आत्म गुणोने शुद्ध
संपूर्णपणे प्रगट करवानी रुची थाय तोज ते पुरुष
तत्त्व साधनानो रसीउं थइ संपूर्ण आत्मतत्त्वनी
सिद्धि-निर्वाण पद पावे. देवचंद्र मुनि कहे छे छे

શુદ્ધ પરમાત્મપદના સેવન થકી અત્યંત ઉત્કૃષ્ટ
સહજ અનુપચરિત અવ્યાબાધ આત્મીક પરમા-
નંદની પ્રાપ્તિ થાય. ॥ ૮ ॥

॥ સંપૂર્ણ

॥ અથ દશમ શ્રી વિશાલજિન સ્તવનમ્ ॥

॥ પ્રાણી વાણી જિન તણી ॥ એ વૈશી ॥

દેવ વિશાલ જિણંદની, તમે ધ્યાવો તત્ત્વ
સમાધિ રે ચિદાનંદ રસ અનુભવી, સહજ
અકૃત નિરૂપાધિ રે ॥ ૧ ॥ સ૦ ॥ અરિહંત
પદ વંદીયે ગુણવંત રે ॥ ગુણવંત અનંત
મહંત સ્તવો ભવતારણો ભગવંત રે । એ આંકળી ।

અર્થ:-સાધુ, આચાર્ય, ગણધરો વિગેરેમાં પ્રધાન
શિરોમણિ અનંત દૂષણ રહિત તથા અનંત આત્મીય
ગુણવડે દેદિપ્યમાન મહાવિદેહમાં વિચરતા શ્રી
વિશાલ સ્વામીએ પોતાના આત્મ તત્ત્વને એવંત
નયે સિદ્ધ-પ્રગટ કરી જે શુદ્ધાત્મ તત્ત્વ જન્ય
સમાધિ-નિવૃત્તિ પ્રાપ્ત કરી છે તે અદ્વીતિય અનુપમ
સમાધિને હે ભવ્યાત્માઓ ! તમે એકાગ્ર ચિત્તે

ध्यावो-राग द्वेषादि सकल विभावथी आत्म परि-
णामने वारी तदनुगत करो. “ चिदानंद रस
अनुभवी ” केवल ज्ञान वडे त्रैकालिक पर्यायो
सहित सर्व द्रव्यना युगपत् प्रत्यक्ष ज्ञाता होवाथी
पोताना आत्म द्रव्यने सर्वदा अखंड अव्याबाध
ज्ञानदर्शनादि गुणे सदा परिपूर्ण, कोइपण द्रव्य
जेने कोइपण काले बाधा करी शके नहि माटे
अबाधित जुए छे; तेथी तउजन्य निर्भयता-निरा-
कुलता स्वाधीनतामय ज्ञानानंद रसना अनुभवी-
आस्वादन भोग लेनार श्री विशाल देवनी तत्त्व
समाधि सहज अर्थात् स्वाभाविक सर्व पर द्रव्यनी
अपेक्षा वगर मात्र पोतानाज द्रव्यथी उत्पन्न, तथा
अकृत-पर द्रव्ये जेने उत्पन्न करी नथी एवी, तथा
निरूपाधि अर्थात् पौद्गलीक विषयो भोगवतां
अनेक प्रकारनी-शारीरिक तथा मानसिक व्याधिउं
उपजे छे, पर रमणरूप मिथ्या चारित्र होवाथी
आत्मगुण घातक अनेक प्रकारनां दुष्ट कर्म बंधाय
छे पण श्री विशाल देवनी समाधिमां कोइपण
प्रकारनी उपाधिनो सद्भाव तथा उपजवानो
संभव नथी तेथी निरूपाधि छे माटे हे गुणानुरागी
भव्य जीवो ! निरुपचरित, निस्संग, निःप्रयासिक,

निर्वेध, एकांतिक, आस्यंतिक अने स्वतंत्र समाधि-
मय श्री विशालस्वामीना अरिहंत पदने आपणो
आत्मा निर्मल करी भव भ्रमणथी मुक्त थवा
निमित्ते वंदी ये-तेमां लीन थइए, वलीश्री विशाल
स्वामी के जे ज्ञानादि अनंत लक्ष्मीना स्वामी तथा
जन्म जरा मरण तथा क्रोध, मान, माया, लोभ,
हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, विगरे
कषाय, अज्ञान जलथी भरपूर आ अपार पारावार
भयंकर भव समुद्रथी उद्दारी अचल अव्याबाध
अरुज आत्मीय अनंत सुखना स्थानक मोक्ष महे-
लमां धरनार, सर्वे प्राणीउंना अघातक, करुणा
सागर, तथा अनंतगुणना पात्र महान् धर्मात्मा
छे तेमने स्तवो-स्तुति करो तेमना गुणोनुं गान,
स्मरण, चिंतन, अनुभव करो. ॥ १ ॥

भव उपाधि गद टालवा, प्रभुजी छे वैद्य
अमोघरे ॥ रत्नत्रयी औषध करी, तुम्हें
तार्या भविजन उंचरे ॥ तुम्हें० ॥ अरि० ॥ २॥

अर्थ:-महान् दुष्ट शत्रुरूप कर्मराजाना भवरूप
कारागृहमां वसतां अज्ञान कषाय अने मिथ्यात्व-
रूप मिथ्याआहार विहारना सेवनथी, आत्म

द्रव्यना ज्ञानदर्शनादि परिणामो दूषितः, यथाथी
 आत्माने तीक्ष्ण शल्य तुल्य असह्य दुःख क्लेश
 आपनारा क्रोध-मान माया लोभ शोक वियोग
 मिथ्यात्व अज्ञान विगेरे महान् दुर्निवार सन्निपा-
 तिक रोगो उपजे छे जे रोगोना प्रभाव बडे बली
 ज्वर, अतिसार, जलोदर, कठोदर, भगंदर, क्षय,
 कुष्ठ, प्रमेह, उपदंश, नेत्ररोग, कर्णरोग, मुखरोग,
 विगेरे अनेक शारीरिक रोग जन्य वेदनाउं भोग-
 चवी पडे छे. पण हे विशाल-प्रभुजी ! आपेज
 सम्यक् दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्रनी ऐक्य-
 तारूप अमृत औषधीनुं दान करी ते सर्वे सन्निपा-
 तिक रोगोथी भव्य जीवोना समूहने मुक्त करी
 अनंत आत्म वीर्ये भरपूर तुष्ट पुष्ट करी आगामि
 कोइ पण काले ते रोग पुनः उत्पन्न न थाय एवा
 अत्यंत निरोगी कर्या. माटे हे प्रभुजी ! आ भुवन-
 त्रयसां निःसंदेहपणे अमोघ-साचा-सफल (जेनो
 उपाय निष्फल जाय नहि एवा) वैद्य आपज छो. ॥२॥

भवसमुद्र जल तारवा, नियामिक सम
 जिनराजरे ॥ चरण जहाजें पामीए, अक्षय
 शिवनगरनुं राजरें ॥ अक्षय० ॥ अरि० ॥३॥

अर्थ:-राग रूप जले परिपूर्ण दुस्तर आ भयानक भवसमुद्र के जेमां हूं अनादिकालथी निराधारपणे ज्यां त्यां भ्रमण करी दुःसह भय क्लेश रोग शोक वियोग तृष्णा आक्रंद विगेरे अनेक दुःखो सहन करूं हूं, अत्यंत सहज समाधिप्रद माहरी शुद्धात्म भूमिरूप शिवनगरथी अत्यंत दूरवर्ती-वियोगी थइ रह्यो हूं. ते भव समुद्रथी पारंगत करी निर्विघ्नपणे शिवनगरे पहुँचाइवा माटे हे विशालप्रभु जिनेश्वर ! आप निर्यामरु अर्थात् जहाजना सौथी अग्रेसर चलावनार छो माटे जो बीजा सर्वनी आकांक्षा छोडी आपना स्वभावाचरणरूप पंचमहाव्रतरूप जहाजनो आश्रय लइए-तेमां अमारा आत्माने स्थापन करीए तो सहजे लीलामात्रमां निःप्रयासे आ भयंकर भवसमुद्रथी पारंगत थइ कोइपण रीते जेनो नाश न थाय-सदा शाश्वत रहेनार एवं शिवनगरतुं निष्कंटक राज्य पामी एकांतिक शाश्वत सहज परमानंदना स्वामी थइए. ॥ ३ ॥

भव अटवी अति गहनथी, पारग प्रभुजी सच्छवाहरे ॥ शुद्ध मार्ग देशक पणे, योग

क्षमंकर नाहरे ॥ योग० ॥ अरि० ॥ ४ ॥

अर्थ:-आ भवरूप अटवी-जंगल के जेमां
अमारो आक्रंद परिताप जोइ करुणा रसवडे जेनुं
हृदय भिजे तथा अमारी दया करे एवा सदगुरु-
रूप सज्जननो समागम अत्यंत दुःप्राप्य छे तेथी
निर्जन, तथा जेथी पारंगत थवानां साचो-सुगम
मार्गे पामवो अतिशय मुश्केल होवार्थी अत्यंत
गहन-घोर, तथा जेमां अमारी ज्ञानदर्शनादि
अमूल्य आत्म संपदाने लुटा लेवावाला तीव्र
अज्ञान मिथ्यात्वादि दुष्ट स्वभावना धारक कुगुरु
रूप लुटाराओ वसे छे, तथा अमारा ज्ञानदर्शनादि
आत्मप्राणनो घात करनार क्रोध मान माया लोभ
विगेरे निर्दय श्वापदो वसे छे एवा घोर जंगलमां
भूलो पडेलो हुं मारा आत्मीय कुटुंब तथा लक्ष्मीना
विधोग वडे दयामणी अवस्थामां भय, त्रास, रोग,
शोक, विधोग, तृष्णा, आताप विगेरे परितापो
सहन करूं छुं, शान्तिप्रद सवर रूप जलना अभाव
वडे अत्यंत तृष्णा क्लेश सहूं छुं तेथी (भवाटवीथी)
पारंगत थइ आत्म लक्ष्मी वडे परिपूर्ण शिवनगरे
दोरी लइ जनार आपज समर्थ सार्थवाह छो. कारण
के आपज शुद्ध-अविसंवाद मार्गना बताववावाला

કલ્યાણકારી સિદ્ધિપદ યોગના નાથ-માલીક-
પ્રણેતા યથાર્થપણે પ્રગટ કરનાર છો. તથા હે નાથ !
આપના મન વચન અને કાથ એ ત્રણે યોગ ક્ષેમંકર,
કલ્યાણકારી, પાપ કલેશથી મુક્ત કરનાર છે. અને
સંસારી જીવોએ મન વચન કાયા સ્ત્રી પુત્ર ધન
કુટુંબાદિ અનેક યોગ કર્યા તે યોગ વહુ વાર વિનાશ
થયા-ક્ષેમ કુશલ ન રહ્યા. પણ પ્રભુજી શુદ્ધાત્મ
અનુભવ યોગકરાવી શાશ્વતી કેવલજ્ઞાનાદિ લક્ષ્મી-
નો શિવયોગ કરાવો છો માટે યોગક્ષેમંકર છો ॥૪॥

રક્ષક જિન છ કાયના, વલી મોહ નિવારક
સ્વામી રે ॥ શ્રમણ સઘ રક્ષક સદા, તેણે
ગોપ ઈશ અભિરામરે ॥ તેણે૦ અરિ૦ ॥ ૫ ॥

અર્થ:-જે અજ્ઞાન વિષય અને કષાયાદિ દોષોથી
નિવૃત્ત થયા નથી એવા કુદેવાદિ “ અહિંસક ”
પદને યોગ્ય નથી કારણ કે તેડં સર્વે જીવસ્થાન તથા
સર્વે જીવોના દ્રવ્યભાવ પ્રાણને તથા દ્રવ્ય ભાવ
પ્રાણની હિંસાના હેતુડંને તથા તે હેતુડંના પ્રતિકારને
યથાર્થ જાણતા નથી તથા વિષય કષાયાદિ સહિત
હોષાથી પ્રમાદ અવસ્થામાં અનેક જીવના દ્રવ્યભાવ
પ્રાણને હણી પરને તથા પોતાના આત્માને દુઃખદાયક

थाय छे. पण हे विशालप्रभु ! आप तो अज्ञान विषय अने कषायादिदोषाधी सर्वथानिवृत्त होवाथी पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजःकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय तथा त्रसकाय ए छ कायना जीवोना द्रव्यभाव प्राणना यथार्थ ज्ञाता छो तथा विषय कषायादि दोषोए रहित होवाथी निरंतर अप्रमाद अवस्थामां अवस्थित रही कोइपण जीवना द्रव्यभाव प्राणोने रंच मात्र पण दुषवता नथी माटे मृत्यु न्याये आ त्रिभुवनमां “जीव रक्षकनुं” विरुद्ध आपनेज लायक छे.

तथा स्थितिबंध अने रसबंधनो हेतु सर्वे कर्मनो राजा तथा संसारी जीवोनो अजीत शत्रु एवा मोहरूप सहान् शत्रुधी संसारी जीवोने बचावधी माटे तथा ते मोहने नाश करवानो साचो उपाय बतावनार तथा ते उपायमां प्रवृत्त थवाने प्रेरणा करनार एक आपज समर्थ शुभट छो तेथी साचा मोहनिवारक पण आपज छो.

तथा अत्यंत दुःखदायक भवाटवीमांथी नीकली अत्यंत कल्याणकारी मोक्ष नगरे जवाना जिज्ञासु, मोक्ष सन्मुख साचा माग गमन करनार, क्रोध मान माया लोभ आदिने दूर करी सम परिणामे

वर्त्तनार जे भ्रमण ससूह तेनी आप रक्षा करनार
छो ; कारण के मोक्ष मार्गमां विघ्न करनार मिथ्यात्व
कषाय आदि चोर लुंटाराउने बरोवर उलखावनार
तथा तेउं विघ्न नहि करी शके एवा उपायो बता-
वनार तथा आगेवान थइ पोताना अत्यंत बल
वीर्य वडे तेउंने निर्विघ्नपणे मोक्ष नगरे पहुँचाडनार
होवाथी हे परमेश्वर ! आपज अद्वितीय गोप तथा
ईश्वर छो. ॥ ५ ॥

भाव अहिंसक पूर्णता, माहणता उपदेश
रे ॥ धर्म अहिंसक नीपन्यो, माहण जग-
दीश विशेषरे ॥ माहण० ॥ अरि० ॥ ६ ॥

अर्थ:-हे जगदीश्वर ! आपना सर्वे ज्ञानदर्श-
नादि भावो पूर्ण अहिंसकपणे वर्त्ते छे तथा संसारी
जीवोने पण स्वपर जीवना द्रव्य भाव प्राण न
हणवा एवो उपदेश आपो छो तथा कोइपण जीवना
द्रव्य भाव प्राणनी हिंसाना कर्त्ता न थाय एवा
केवलज्ञान केवलदर्शनादि अनंत धर्मो संपूर्ण शुद्ध
प्रगट-व्यक्त थया छे. तेथी आप अद्वितीय माहण-
अहिंसक पदवीना धारक छो. ॥ ६ ॥

पुष्ट कारण अरिहंतजी, तारक ज्ञायक मुनि-

चंदरे ॥ मोचक सर्व विभावथी, झीपावे
मोह अरींदरे ॥ झी० ॥ अरि० ॥ ७ ॥

अर्थ:-सत्तागते रहेला अनंत आत्मधर्माने
संपूर्ण शुद्ध प्रगट करवामां अर्थात् आ ससार
समुद्रथी पारंगत थइ मोक्ष अवस्था प्राप्त करवामां
हे विशालप्रभु अरिहंत ! आप पुष्टकारण-अनंतर
कारण छो. उक्तंच-सिद्धसेन पूज्यै: “ पुष्ट हेतु-
जिनेंद्रोयं मोक्ष सद्भाव साधने ” तेथी सर्वे
मुनिउं-ज्ञानीउंमां चंद्रमा समान प्रधान लोकालो-
कना ज्ञायक आपज आ भयंकर भवसमुद्रमांथी
तारनार छो; तथा राग द्वेष मोह विगेरे सर्वे विभा-
वथी मुक्त करवावाला तथा सर्वे शत्रुउंमां श्रेष्ठ
अत्यंत बलवान् मोह शत्रुथी जीताववावाला
छो. ॥ ७ ॥

कामकुंभ सुरमणि परे, सहजे उपगारी थाय
रे । देवचंद्र सुखकर प्रभु, गुण गेह अमोह
अमायरे ॥ गुण० ॥ अरि० ॥ ८ ॥

अर्थ:-जेम कामकुंभ तथा चिंतामणी रत्न,
बिनास्वार्थे अन्य जीवोने वांछित फलना दातार

पाय छे, तेमज हे प्रभु ! आपण संसार जन्य
 सकल क्लेशथी भव्य जीवोने मुक्त करवामां वि-
 नास्वार्थे सहजे मदङ्कारी थाउं छो ए आपनी परम
 सज्जनता सुचवे छे. देवचंद्रमुनि कहे छे के हे प्रभु !
 आप निःप्रयासिक अन निरुपचरित सुखना करवा-
 थाला तथा ज्ञानादि अनंत गुणना गेह-निधान छो;
 तथा परिवार सहित मोहगजानो समूल ध्वंस
 करी नांख्यो छे तेथी अमोही, तथा अमाय कहेतां
 कपट रहित शुद्ध स्वरूपना प्रकाशक छो. ॥ ८ ॥

॥ संपूर्ण ॥



॥ अथ एकादशम श्री वज्रधर जिन स्तवन ॥

॥ नदी यमुना के तोर ॥ ए देशी ॥

विहरमान भगवान् सुणो मुज विनती,
 जगतारक जगनाथ अछो त्रिभुवन पति;
 भासक लोकालोक तिणे जणो छती, तो
 पण वीतक बात कहुं छुं तुज प्रात ॥ १ ॥

अर्थ:-महा विदेहमां विचरता, भव्यसमूहने
 भवाब्धितो उद्धारनार, सर्वे प्राणीओना हितचिंतक

तथा रक्षा करना, त्रिलोक पूज्य, त्रिलोक स्वामी हे श्री वज्रधर भगवंत ! आपने जीवाजीवादिक कोई पण पदार्थ^१ उपर रंचमात्र पण राग, द्वेष, मोह वा ममस्व परिणाम नहीं, तैथी कोईपण द्रव्य आपना सहजे परिणामता ज्ञान प्रकाशने व्याघात करी शके तेम नहीं, तैथी आप कीईपण द्रव्य, कोईपण क्षेत्र, कोई पण काल वा कोईपण भावमां स्वलना नहि पामतां स्वक्षेत्रे स्थिर रही सकल लोकालोकना त्रैकालिक भावने हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष समकाले जाणो छो. यद्गुक्तं-महा भाष्ये, “ सर्व द्रव्य गतान् सर्वानपि पर्यायान् केवलं ज्ञानं जानाति” तथा तत्त्वार्थ सूत्रे,—“ सर्व द्रव्य पर्यायेषु केवलस्य ” तोपण हुं मोहवशे अजाण होवाथी अविवेकी तथा अधीर थई में चार गतिरूप घोर भवाटवीमां भमतां जे जे दुराचरण तथा दुःख क्लेशादि सेव्यां ते सर्वे आपने अशरण शरण विलोकी आप प्रति सनमृता निवेदन करुंछुं ते करुणा पूर्वक सांभलशो, लक्षमां लेशो. ॥ १ ॥

हुं स्वरूप निज छोडी रम्यो पः पुद्गलें,
लील्यो उलट आणी विषय तृष्णा जलें;

આસ્રવ બંધ વિભાવ કરૂં રુચિ આપળી,
મૂલ્યો મિથ્યાવાસ દોષ ઘૂં પરમળો ॥ ૨ ॥

અર્થ:-અચલ, અબાધિત, નિરૂપાધિ, સ્વતંત્ર
અને સહજ પરમાનંદમય મારા આત્મસ્વરૂપને અના-
દિ અજ્ઞાનવશે નહિ જાણતાં સહજ આત્મીય પરમા-
નંદનો વિયોગી રહી મારા આત્મ દ્રવ્યથી પર, ક્ષણ-
ભંગુર, તથા અચેતન, જે પુદ્ગલ દ્રવ્ય તેમાં સદા
આસક્ત-લીન રહ્યો તથા જે પૌદ્ગલીક વિષયો-
શાર્દૂલ વિક્રીડિત વૃત્તમ્-“ મુંજંતા મહુરા વિવાગ
વિરસા, કિંવાગ તુલ્હા ઇમે । કચ્છકડુ અગંવ
દુઃખ જળયા, દાવિંતિ બુદ્ધિ સુહે ॥ મષ્મળહે
મય તિણેહઅવ્વ સયયં, મિચ્છાભિસંધિપ્પયા
મુત્તાં દિંતિ કુજમ્મ જોણે ગહણં, ભોગા મહા
વેરિણો ” અજ્ઞાનવશે ભોગવતાં મધુર-પ્રિય લાગે
છે પણ વિપાક કાલે કિંપાકફલની પેઠે વિરસ,
પ્રાણઘાતક છે, તથા જેમ સ્વસને સ્વણતાં શાંતિ
થતી નથી પણ ઊલટી ચેલ વધે છે, તેમ વિષયો
ભોગવતાં શાંતિ-તૃપ્તિ થતી નથી પણ ઊલટી તૃષ્ણા
વધે છે તેથી પરિણામે દુઃસ્વર્ધક છે, તથા તે વિષયો-

માં લીન થતાં મૃગતૃણાની પેટે નિરંતર દુષ્ટ અભિ-
 પ્રાયો ઉપજે છે તથા તે ભોગવ્યાથી અનેક પ્રકારે
 કર્મબંધ થવાથી નરકાદિ દુઃખદાયક કુગતિ, કુયો-
 નિની પ્રાપ્તિ થાય છે તથા ગાથા-વિષય રસાસવ
 મત્તૌ, જુત્તાજુત્તં ન જાણઈ જીવો ॥ સૂરડ
 કલુષં પચ્છા, પત્તો નરયં મહાઘોરં ॥ જહ
 નિંબ દુસ્મ પત્તો, કીડો કલુઅંપિ મન્નહે મહુરં ।
 તહ સિદ્ધિ સુહ પરૂરકા, સંસાર દુહં સુહં
 વિંતિ ॥ ” વિષય રસ રૂપ મદિરામાં મદોન્મત્ત
 થતાં યોગ્ય અયોગ્યનું-હેવાદેયનું ભાન નષ્ટ થાય છે.
 અને તેથી જ્યારે મહા દુઃખમય ઘોર ભયંકર નર-
 કાદિ ગતિની પ્રાપ્તિ થાય છે ત્યારે અતિશય પશ્ચા-
 તાપ ભોગવવો પડે છે. જેમ લીંબડામાં વસતો કીડો
 લીંબડોના કટુક રસને પણ મધુર માની સેવે છે,
 તેમજ મિથ્યાદૃષ્ટી વડે મોક્ષ સુખથી પરોક્ષ-વિપ-
 રીત જે વિષય ભોગ વાસ્તવિક રીતે દુઃખ છે તેને
 સુખ માની સેવે છે તથા જે જલના પ્રવાહ તથા
 વિજલીના ચમસ્કારની પેટે ક્ષણિક છે તેથી અવશ્ય-
 જેનો વિયોગ થવાનો છે એવા મહાન્ શત્રુરૂપ પુદ્-
 ગલ વિષયોની તૃણારૂપ જલમાં હું સદા હર્ષ પૂર્વક

क्रीडाकरतो निमग्न रह्यो तेथी आत्म स्वरूपने भूली
 शुद्धात्म स्वरूपथी पराङ्गमुख थई अत्यंत दुःखदायक
 भवसमुद्रमां भ्रमण करावनार ज्ञानावरणीयादि
 कर्मना आस्रव (पांच प्रकारना मिथ्यात्व, चार
 प्रकारनी अविरती, पचीस कषाय तथा पंदर योग)
 तथा प्रकृति, स्थिती, अनुभाग अने प्रदेशबंधना
 हेतु राग द्वेष मोहादि विभाव तरफ में रुचि करी
 तथा मिथ्यावासमां अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थाने
 वसतां मिथ्यात्वन आवेशमां सम्यक्दर्शन, सम्यक्-
 ज्ञान, सम्यक्चारित्रमय आत्म स्वरूपने भूली अ-
 नेक प्रकारनां कम बांधी तेना दुष्ट फलनो भागी
 थयो अने ते दुष्ट विपाकना अवसरे माहरा पूर्वकृत
 कर्मनो दोष न विचार्यो, अने “ सव्वे पुव्व क-
 याणं, कम्ममाणं पावए फल विवागं । अवरा-
 हेसु गुणेसु अ, निमित्त मित्तं परो होइ ”
 आ असमूल्य जिनवचननुं विस्मरण करी असुके मने
 क्रोध उपजाव्यो, मानमां पाड्यो, माया तथा लोभ-
 मां प्रवृत्त कर्यो तथा शोक, भय, अरति, जुगुप्सा
 विगेरे कषायो उपजाव्या एम कही परने दोष दीधो.
 स्वान जेम लाकडी मारनारने नहीं पण लांकडीने
 करडवा तथा भसवा मांडे छे तेम में पण मारा

પૂર્વકૃત દુષ્ટ કર્મ તરફ લક્ષ્ય નહિ દેતાં નિમિત્તમાત્ર
જે પરદ્રવ્ય તેને દોષ દીધો અને હાલ પણ તેમજ
વર્તેલું “ જો કત્તા સો મોત્તા, ” એવા જગ-
જાહેર તથા સર્વમાન્ય જિનેશ્વરના વચનનો નિરા-
દર કર્યો, ॥ ૨ ॥

અવગુણ ઢાંકણ કાજ કરું જિન મત ક્રિયા,
ન તજું અવગુણ ચાલ અનાદિની જે પ્રિયા:
દૃષ્ટિ રાગનો પોષ તેહ સમકીત ગણું, સ્યાદ્-
વાદની રીત ન દેખું નિજપણું ॥ ૩ ॥

અર્થ:-અનાદિથી અજ્ઞાન વશે પ્રિય થઈ પડેલી,
કુદેવ, કુગુરુ અને કુધર્મને સન્માનવા આદરવા રૂપ
મિથ્યાત્વ અજ્ઞાનની તથા ક્રોધ, માન, માયા, લોભ,
હાસ્ય, રતિ, અરતિ, ભય, શોક, જુગુપ્સા તથા
ઘેદરાગ વિગેરેની દુષ્ટ ચાલ પ્રકૃતિનો તો સ્યાગ
કર્યો નહિ અને કદાચ શ્રી જિનેશ્વરે ઘતાવેલી
સામાયિક, પોસહ, પ્રતિક્રમણ, વંદન, સ્તવન, પૂજા
વિગેરે ક્રિયાઓ, અપમાન નિંદા તથા દુરાચરણ ઢાં-
કવા માટે, આલોક પરલોકના વિષયભોગની આ-
કાંક્ષા સહિત, તથા માયા મિથ્યાત્વ અને નિદાન-
શલ્ય સહિત આદરી. “ વૈરાગ્યં રંગો પર વંચ-

नाथ, धम्मोपदेशो जन रज्जनाय ” एम विष
गरल अने अन्योन्यानुष्ठान सेवतां संसारीक दुःख
थी मारी निवृत्ति थइ नहि. कारण के “ निच्चुन्नो
तंबोलो, पासेण विणा न होइ जह रंगो; तह
दाण ” सील तव भावणाओ अहलाओ भाव
विणा ” जेम चुना विना तांबूल, अने पास विना
वस्त्र रंग पामे नहीं तथा जेम अंक विना मींडां
निष्फल थाय तेम शुद्धात्म भाव रहित दान, शील,
तप अने भावना संसारधी मुक्त करी शके नहीं.
जल विना जेम सेरोवर, सुगंधी विना जेम कमल,
चंद्रमा विना जेम रात्री, सूर्य विना जेम दिवस,
तथा जीव विना जेम शरीर शोभा पामतां नथी;
तेम भाव वगर साध्य निरपेक्ष क्रियाओ शोभा पा-
मती नथी. पण जो ते आवश्यक आदि करणीओ
भावपूर्वक करवामां आवे तो ते मोक्षनुं कारण
थाय. जेम अंक सहितनां मींडां दशगुणी सख्या
वधारनार थाय छे. माटे भावनुं स्वरूप जाणवुं
जोईए. “ उवओगो भाव इति ” अर्थात् सूत्रनी
साखे वीतरागनी आज्ञाए ज्ञान पूर्वक हेय उपादे-
यनी परीक्षा करी अजीव तत्त्व तथा आस्रव तत्त्व

તેથી વંધ તત્ત્વે ઉપર ત્યાગ ભાવે અને જીવના ગુણ
 જે સ્વર, નિર્જરા, મોક્ષ તત્ત્વ ઉપર ઉપાદેય પરિ-
 ણામ તે ભાવ છે. માટે શુદ્ધાત્મ ભાવ સન્નિવૃત્ત
 અર્થાત્ આપણા આત્માને રાગ, દ્વેષ, મોહથી માત્ર
 નિવૃત્ત કરવાના પરિણામ સહિત જો આવશ્યકાદિ
 કરણીઓ કરવામાં આવે તો તે અવશ્ય મોક્ષનું કારણ
 થાય. વળી “ સમ્મત્તેણં સુદ્ધો, સચ્ચસુ કિચ્છો
 હવહ સિવ હેઊ, સંવર વુદ્ધી તહ નિજ્જરાય
 ધમ્મ મૂલં ચ સમ્મત્ત ॥ ” તથા “ મૂલં દારં
 પડ્ઠાણં, આહારો ભાયણં નિહિ; દુસુક્કં સાવિ-
 ધમ્મસ્સ સમ્મત્તં પરિકિંચિ ॥ ” શુદ્ધ સમકિત
 તેજ શિવનો હેતુ, તથા સંવરની વૃદ્ધિ કરનાર,
 નિર્જરાનું કારણ હોવાથી સર્વે ધર્મનું મૂલ, તથા
 મોક્ષ મહેલમાં પ્રવેશ કરવા માટે દ્વાર સમાન, ચા-
 રિત્ર મહેલની પીઠિકા, તથા રત્નત્રયના ભાજન
 રૂપ છે. એવાં આપનાં પવિત્ર વચ્ચનો વાંચી સાંભલી
 મેં સમકિતને અમૂલ્ય રત્ન સમાન તો જાણ્યું પણ
 હે ભંગવંત ! આપ તો “ નય ભંગ પમાણોહિં, જો
 અપ્પા સાયવાય ભાવેણ, જાણહ મોરક સરૂવં,
 સમ્મદિઠિત્થ સો નેઓ ” નય ભંગ પક્ષ પ્રમાણ

सहित स्याद्वादनये जीवादि तत्त्वने यथार्थ जाणे
 छे तेमज श्रद्धा करे छे तथा हेयने स्याग करवानी
 तथा उपादेय भावने आदरवानी रुचि होय तेने
 समकीती कहो छो. पण ते प्रमाणे तो में स्याद्वाद-
 नये आत्म तत्त्वनुं स्वरूप यथार्थ जाण्युं, सदृष्टुं
 नहि तथा समकितना जे सडसठ (चार सदहणा,
 त्रण लिंग, दश प्रकारे विनय, त्रण शुद्धि, पांच
 दूषणनो नाश, आठ प्रकारे प्रभाविक पणुं, पांच
 भूषण, पांच लक्षण, छ यतना, छ आगार, छ भा-
 वना तथा समकितनां छ स्थानक) बोल आपे कछा
 छे ते जाण्या शिवाय तथा जे होवा जोइए तेनी
 मारामां प्रगटता थइ छे के नहि, तेनो विचार
 करया विना, समकीतना लक्षणोनी प्राप्ति विना,
 मात्र दृष्टीरागना पोषने अर्थात् नय, निक्षेप, पक्ष,
 प्रमाण वडे परीक्षा कर्या शिवाय कुलक्रमानुगत देव
 गुरु धर्मनी द्रव्यपरंपराय श्रद्धाने समकित गणी
 क्रियानुष्ठान सेव्यां पण निश्चय समकीत विना मने
 मोक्ष फलनी प्राप्ति थइ नहि. ॥ ३ ॥

मन तनु चपल स्वभाव वचन एकांतता,
 वस्तु अनंत स्वभाव न भासे जे छता । जे
 लोकोत्तर देव नमुं लौकीकथी, दुर्लभ सिद्ध

स्वभावं प्रभो तहकीकथी ॥ ४ ॥

अर्थ:-जेम पुंगीना स्वरमां लीन थइ नाग पोताना मस्तकने पुंगी प्रमाणे डोलावे छे. तेमहुं पण पांच ईंद्रियोना विषयोमां लीन थइ माहरा आत्म परिणामने चपल करी कर्मजालमां फसायो “चलइ फंदइ” तथा मिथ्यात्वना आवेशमां अनंत धर्मात्मक वस्तुमांथी कोइक धर्मने मुख्यतया बखाणतां बाकीना धर्मोनी गौणपणे पण अपेक्षा नहि राखवा रूप एकांत वचन अर्थात् दुर्नयने ग्रहण कर्ग्यो, ते प्रमाणे में वस्तु स्वरूप सद्वहुं तथा बीजाने पण तेमज एकांते उपदेश आप्यो “दे-
 हिवि णयेहिं णीयं सत्थं मूलण तहवि मिच्छत्तं;
 जस्स विसयप्पहाणं, तणेणं अणुण्णा निरवेरकं”
 इति विशेषावश्यके-पण अनंत धर्मात्मक वस्तु स्वरूपने में यथार्थ जाण्यु नहि “अभिलाप्ये
 भावेभ्यः अनभिलाप्या अनंत गुणा” एम
 अनंत गुण पर्यायनो भाजन ते द्रव्य-वस्तु छे माटे
 दरेक वस्तुमां अनंत भाव छता छे-मालिनिछंद-
 “बहु विह नय भंगं, वच्छु णिच्चं अणिच्चं ।

सद सदनाभिलुप्यं, लुप्यमेगं अणेगं ” ते में
 एकांत-मिथ्यात्व वशे न जाण्या-एम मिथ्यात्व
 भावमां फसी रह्यो अने तेथी इंद्रगणो वंदित, त्रि-
 लोक पूज्य जे लोकोत्तर अरिहंत देव तेओने लौकीक
 रीते अर्थात् अज्ञान अने राग सहित, परभावना
 कर्त्ता हर्त्ता जाणी आलोक परलोक संबंधी विषयो-
 नी प्राप्ति अर्थे, तथा भान पूजा आदि अर्थे नमुं
 छुं-वंदन स्तवन पूजा प्रमुख करुं छुं पण तेथी
 जिनेश्वरे वतावेलो जे अत्यंत दुर्लभ सिद्ध स्वभाव
 तेनी प्राप्ति केस थाय ? ॥ ४ ॥

महाविदेह मझार के तारक जिनेवरु, श्री
 वज्रंधर अरिहंत अनंत गुणाकरु । ते नि-
 र्यामक श्रेष्ठ सही मुज तारशे, महा वैद्य
 गुणयोग रोग भव वारशे ॥ ५ ॥

अर्थ:-महाविदेह क्षेत्रमां विचरता आ भीम
 भवार्णवमांथी भव्य समूहनो उद्धार करनार, सर्वे
 केवलीओमां इंद्र समान, शिरोमणी, ज्ञानादि अनंत
 गुणना आकर-निधान हे वज्रंधर अरिहंत ! आप,
 चरण जहाजने चलावनाराओमां अग्रेसर-प्रधान
 सर्वोत्तम निर्यामक होवाथी आ भयंकर भवाब्धि-

मांथी निःसंदेह अति स्वराए माहरो उद्धार करशो
तथा महावैद्यरूप थइ माहारा आत्म परिणाममां
सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्रनो योग करी मिथ्या
आचरण वडे उपजेला भवरोगनो वेगे समूल विनाश
करशो एवी माहारा चित्तने दृढ प्रतित छे. ॥ ५ ॥

प्रभु मुख भव्य स्वभाव सुणुं जो माहरो,
तो पामे प्रमोद एह चेतन खरो । थाये
शिवपद आश राशि सुख वृंदनी, सहज
स्वतंत्र स्वरूप खाण आणंदनी ॥ ६ ॥

अर्थः—“ भवन व्यय विणु कार्य न निपजे
हो, जिम दृशदे न घटत्व ” तेमज जेमां भव्य
अर्थात् पलटन स्वभाव नथी एटले जे जीवमां
मिथ्यात्वथी पलटी समकीत भावे परिणमवानुं
सामर्थ्ये नथी तेने अभव्य कहिए तथा अचिरतीथी
पलटी विरतीभावे परिणमवानुं सामर्थ्य नथी तथा
प्रमाद भावथी पलटी अप्रमाद भावे पलटवानुं
सामर्थ्य नथी, तथा कषाय भावथी पलटी अकषाय
(शम) भावे परिणमवानुं सामर्थ्य नथी (एटले
पूर्व अहितकारी) पर्यायनो व्यय, नवा प्रशस्त

પર્યાયનું ભવન કરવાનું સામર્થ્ય જેમાં નથી તેનું કાર્ય થાય નહીં. એ વિગેરે વિભાવથી પટલી સ્વ-ભાવ રૂપે પરિણમવાનું સામર્થ્ય નથી એવા અભવ્ય જીવો અનંત કાલસુધી અનંત ઉપાય કરતા છતાં પણ “ કોટો જતન કરી નિશદિન ધોવત ઉજરી ન હોવત કામર કારી ” એ પ્રમાણે આ સંસાર ચક્રવાલમાંથી મુક્ત થઈ મિદ્ધિ સુખ પામી શકે નહીં. કારણ તેઓ વ્રત, સમિતિ, શુષ્ઠિ આદિ પાલતા છતાં પણ મિથ્યાત્વ, અજ્ઞાન અને પરાચરણ (મિથ્યાચરણ) ના સેવક છે. ઉક્તંચ વદ સમિદો યુત્તીઝ, સીલ તવં જિણવરોહિ પળતંતઃ કુવ્વં-તોવિ અભવો, અણાણી મિચ્છદિટ્ઠીઝ ” કારણ કે અભવ્ય જીવોનો સ્વભાવજ એવો છે કે શ્રુત અભ્યાસ કરે, દ્રવ્યથી પંચમહાવ્રત આદરે પણ આત્મતત્ત્વની યથાર્થ અદ્વાવિના કોઈ, પણ કાલે પ્રથમ શુણસ્થાનને સૂકી શકે નહિ માટે તેઓ સિદ્ધિ-પદ પામવાને યોગ્ય નથી. પણ હે જિનેશ્વર ! આપના આજ્ઞા પ્રમાણે આ સંસારથી નિવૃત્ત થઈ લોક સ્વ-રૂપ સાધવાની મને રુચિ છે, ભવભ્રમણથી ભયભીત છું. તથા સત્ય ન્યાયને સ્વિકારું છું, એ આદિકેટલાક

ભાવવડે “ હું ભવ્ય હું ” એવું અનુમાન થાયછે તો
પણ હે સર્વજ્ઞ દેવ ! આપના મુખારવિંદથી “ તું
ભવ્ય હું ” એવું વચન સાંભળું, તો માહરા ભવ્યત્વની
મને સંપૂર્ણ પળે પ્રતીત થાય અને સહજ સ્વતંત્ર
સચ્ચિદાનંદમય અનંત સુખ સમૂહરૂપ શિવપદ પ્રાપ્તિ-
નો ભરોસો થાય ॥ ૬ ॥

વલગ્યા જે પ્રભુ નામ ધામ તે ગુણ તણા,
ધારો ચેતન રામ એહ થિર વાસના ॥ દેવચંદ્ર
જિનચંદ્ર હૃદય સ્થિર થાપજો, જિન આળા
યુત ભક્તિ શક્તિ મુજ આપજો ॥ ૭ ॥

અથ:-હે ભગવંત ! જે પુરુષો આપના સ્મરણ,
કીર્તન, ભક્તિ વિગેરેમાં લીન છે તેજ પુરુષો ગુણના
ધામ કહેતાં ભાજન છે. માટે હે ચેતનરામ ! નિરંતર
પ્રભુના સ્મરણમાં થિર વાસકર, એક પળ સમય
પ્રભુપદને વિસાર નહિ. દેવચંદ્ર મુનિ કહે છે હે જિને-
શ્વર દેવ ! મને લબ્ધિ વીર્યનું દાન કરી આપની
આજ્ઞા પ્રમાણે આપની ભક્તિ કરવાની મને શક્તિ
આપો કારણ કે આપની આજ્ઞાથી વિપરીતપણે કરે-
લાં સર્વે ક્રિયા અનુષ્ઠાન નિષ્ફલ છે. “ જો કોઈ
આળા રહિઓ, પૂઆ પમુહં કરેઈ તિક્કાલં ।

तस्मावि सव्वम सुद्धं, आणावज्जं अणुट्ठाणं ॥”

जे कोइ पुरुष आज्ञा रहित पणे त्रणे काल पूजा प्रमुख करणी करे तो पण आणा रहित होवाची तेनुं सर्वे अनुष्ठान अशुद्ध जाणवुं. “ जहतुस खंडण

मय मंडणाइ रूपणाइ सुन्न रत्नमि ॥ विहलाइ

तह जाणसु, आणा रहियं अणुट्ठाणं ” जेम

तुस-कुसकानुं खांडवुं, मुडदाने शणगारवुं तथा सुना वगडामां विलाप करवो निष्फल छे तेम जिन आज्ञा बगरनुं अनुष्ठान पण निष्फल जाणवुं.

“ जह भोयणमविहिकयं, विणासए विहिकयं जियावेई; तह अविहिकओ धम्मो, देइ भवं विहिकओ मुरकं ” जेम अविधिए करेलुं भोजन

विनाश करे तथा विधिए करेलुं भोजन जीवन आपे तेमज अविधिए आदरेलो धर्म भवभ्रमण आपे अने विधिए आदरेलो धर्म मोक्ष सुख आपे; माटे आपनी आज्ञानुं ज्ञान तथा ते आज्ञामां वसवा रूप सदाचरण ए बनेनुं हे करुणानिधान ! मने दान आपो. ॥ ८ ॥

॥ अथ श्री द्वादशम श्री चंद्रानन जिन स्तवनम् ॥

॥ वीराचांदला ए देशी ॥

चंद्रानन जिन सांभलिये अरदासरे, मुज
सेवक भणी. छे प्रभुनो विश्वासरे चंद्रानन
जिन ॥ १ ॥

अर्थ:-हे भगवंत ! आप पी तेमज अरूपी
निकटवर्ती तेमज दूरवर्ती, सूक्ष्म तेमज स्थूल, सर्वे
पदार्थोने तेना त्रैकालिक गुण पर्याय सहित एक
समयमां हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष जाणनार होवाथी
सर्वज्ञ, तथा अनंत आनंदमां पोताना गुणपर्या-
योमां निरंतर तल्लोन-स्थिर होवाथी अन्य कोईपण
द्रव्य पर्यायमां आपनो राग द्वेषरूप परिणाम थतो
नथी तेथी वीतराग छो, अने सर्वज्ञ तथा वीतराग
होवाथी आपनी दिव्य वाणीमां प्रत्यक्ष परोक्षादि
कोईपण प्रमाणवडे विसंवाद आवी शकतो नथी,
कोईपण प्रकारना रंचमात्रपण दूषणने अवकाश
मलतो नथी; माटे हे प्रभु ! आपज आ भीषण
भवसमुद्रमांथी भव्य समूहने उद्धारवा समर्थ छो.
पण आपथी विमुख बुध कपिलादि अन्य तीर्थीओ
के जे तेओनां आचरण तथा वाणीवडे अज्ञान तथा

तस्मावि सव्वम सुद्धं, आणावज्जं अणुट्ठाणं ॥”

जे कोइ पुरुष आज्ञा रहित पणे अणे काल पूजा प्रमुख करणी करे तो पण आणा रहित होवाथी तेनुं सर्वे अनुष्ठान अशुद्ध जाणवुं. “ जहतुस खंडण

मय मंडणाइ रूपणाइ सुन्न रत्नंमि ॥ विहलाइ

तह जाणसु, आणा रहियं अणुट्ठाणं ” जेम

तुस-कुसकानुं खांडवुं, मुडदाने शणगारवुं तथा सुना वगडामां विलाप करवो निष्फल छे तेम जिन आज्ञा बगरनुं अनुष्ठान पण निष्फल जाणवुं.

“ जह भोयणमविहिकयं, विणासए विहिकयं जियावेई; तह अविहिकओ धम्मो, देइ भवं विहिकओ मुरकं ” जेम अविधिए करेलुं भोजन

विनाश करे तथा विधिए करेलुं भोजन जीवन आपे तेमज अविधिए आदरेलो धर्म भवभ्रमण आपे अने विधिए आदरेलो धर्म मोक्ष सुख आपे; माटे आपनी आज्ञानुं ज्ञान तथा ते आज्ञामां वसवा रूप सदाचरण ए बनेनुं हे करुणानिधान ! मने दान आपो. ॥ ८ ॥

॥ अथ श्री द्वादशम श्री चंद्रानन जिन स्तवनम् ॥

॥ वीराचांदला ए देशी ॥

चंद्रानन जिन सांभलिये अरदासरे, मुज
सेवक भणी. छे प्रभुनो विश्वासरे चंद्रानन
जिन ॥ १ ॥

अर्थ:-हे भगवंत ! आप पी तेमज अरूपी
निकटवर्ती तेमज दूरवर्ती, सूक्ष्म तेमज स्थूल, सर्व
पदार्थोने तेना त्रैकालिक गुण पर्याय सहित एक
समयमां हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष जाणनार होवाथी
सर्वज्ञ, तथा अनंत आनंदमां पोताना गुणपर्या-
योमां निरंतर तल्लोन-स्थिर होवाथी अन्य कोइपण
द्रव्य पर्यायमां आपनो राग द्वेषरूप परिणाम थतो
नथी तेथी वीतराग छो, अने सर्वज्ञ तथा वीतराग
होवाथी आपनी दिव्य वाणीमां प्रत्यक्ष परोक्षादि
कोईपण प्रमाणवडे विसंवाद आवी शकतो नथी,
कोईपण प्रकारना रंचमात्रपण दूषणने अवकाश
मलतो नथी; माटे हे प्रभु ! आपज आ भीषण
भवससुद्रमांथी भव्य समूहने उद्धारवा समर्थ छो.
पण आपथी विमुख बुध कपिलादि अन्य तीर्थीओ
के जे तेओनां आचरण तथा वाणीवडे अज्ञान तथा

રાગ દ્વેષાદિ દૂષણોયુક્ત ભરપૂર કલકિત પ્રતીત થાય છે, ભવસમુદ્રમાં નેમન જણાય છે, અને તેથી તેઓના વચનમાં પ્રત્યક્ષ પરીક્ષાદિ પ્રમાણવડે અનેક દૂષણો દ્રષ્ટિગોચર થાય છે, તેઓ ભવસમુદ્રમાંથી કેમ ઉદ્ધારી શકે ? “ જે નવિ ભવ તર્યા નિર્ગુણી તારશે કિણપરે તેહરે ” માટે પોતે બૃહનાર તથા આશ્રિતને બૃહાવનાર પથ્થરની નાવનો કેમ વિશ્વાસ રચાય ? તેથી હે ત્રિલોક પૂજ્ય ! આ ભવસમુદ્રમાંથી મુક્ત થવા માટે હું સ્વેચ્છાએ આપનોજ વિશ્વાસ-આધાર છે, માટે સમતારૂપ અમૃત સમુદ્રને વૃદ્ધિગત કરનાર, તથા અવ્યરૂપ કુસુદ સમૂહને વિકશ્વર કરનાર, તથા કષાય તાપને સમાવવામાં, આત્મ-વીર્યની વૃદ્ધિ કરવામાં સમર્થ એવી તત્ત્વોપદેશરૂપ નિર્મલ ચાંદનીને આ ભૂમંડલમાં ફેલાવનાર હે જગત્ ચૂડામણિ ચંદ્રાનન જિનેશ્વર ! અજ્ઞાન તથા કષાય જન્ય દુઃસ્વથી ભયભીત થઈને હું ભવભીરુ આપ પ્રતિ વિનંતી કરું છું તે કૃપાકરી સાંભલો-અવધારો.

ભરતક્ષેત્ર માનવપણે, લાઘ્યો દુઃસમ કાલ ॥

જિન પૂરવધર વિરહથી, દુલહો સાધન ચા-
લોરે ॥ ચંદ્રાનન ૦ ॥ ૨ ॥

અર્થ:-મેરુપર્વત જેટલા રાઈના ઢગલામાં પડી ગયેલો સરસવનો દાણો મલી શકવો જેમ અત્યંત મશ્કતે છે તેમજ મનુષ્ય ભવ પણ આ ભવસમુદ્રમાં અમણ કરતાં પામવો અત્યંત દુર્લભ છે તેમ છતાં કદાચ મનુષ્ય ભવની પ્રાપ્તિ થાય તો, આર્યક્ષેત્ર, લાંબુ આયુષ્ય, નીરોગતા, ંચકુલ વિગેરે ઉત્તરોત્તર અતિશય દુઃપ્રાપ્ય છે છતાં તે સર્વે સામગ્રીઓ કોઈ માહરા મહત્ પુણ્ય પ્રસાદે આ દુઃષ્મકાલમાં (પાંચ-મા આરામાં) હે ચંદ્રાનન પ્રભુ ! મને પ્રાપ્ત થઈ પણ કેવલજ્ઞાની, ચૌદ પૂર્વધર, દશ પૂર્વધર, તથા પ્રત્યેક બુધ કે જેઓ તત્ત્વના યથાર્થ જ્ઞાનાં ઉપદેષ્ટા છે, જેનાં વચનો પ્રમાણ ભૂત છે, નિશંકપણે વિશ્વાસ પાત્ર છે, જેના વચનાનુસારે સર્વેનાં વચનો પરખી શકાય છે, એવા ગુણ સમુદ્ર પૂજ્ય પુરુષોના વિયોગ વડે સહજા-નંદરૂપ મોક્ષપદ સાધવાનો સાચો માર્ગ અતિશય દુર્લભ થઈ પડ્યો છે. ॥ ૨ ॥

દ્રવ્ય ક્રિયા રુચિ જીવડા રે, ભાવ ધર્મ રુચિ હીન ॥ ઉપદેશક પણ તેહવારે, શું કરે જીવ નવીનરે ॥ ચંદ્રાનન૦ ॥ ૩ ॥

અર્થ:-હે ભવ્યો! અનાદિકાલથી આપણો આત્મા જે અજ્ઞાન, મિથ્યાત્વ, અને કષાય વડે મલીન હોવા-

થી આ ભયાનક ભવસમુદ્રમાં ભ્રમણ કરતાં જન્મ
 જરા મરણ રોગ શોક વિયોગ તાડન તર્જન આદિ
 અનેક પ્રકારનાં શારીરિક તેમજ માનસિક દુઃખો
 સહન કરે છે, પોતાની અનંત આનંદમય દશાથી
 દૂરવર્તી થઈ રહ્યો છે, તેથી અજ્ઞાન મિથ્યાત્વ અને
 કષાયાદિ દૂષણોથી મક્ત કરી, અનંત જ્ઞાન દર્શન
 સુખ વીર્યમય પરમ નિર્મલ શુદ્ધ સિદ્ધ પદમ વિ-
 રાજમાન કરવો અર્થાત્ પૂર્ણ શુદ્ધાત્મ ભાવ પ્રગટ
 કરવો-પ્રાપ્ત કરવો, એજ આપણું પરમ કર્તવ્ય છે
 તથા એજ આપણું સર્વોત્કૃષ્ટ અનંત સુખપ્રદ અવિ-
 નશ્વર સાધ્ય છે. પણ મોહનિય કર્મના પ્રબલ ઉદય
 વડે પોતાના સર્વોત્કૃષ્ટ સાધ્ય સાધવાની રુચિથી
 પરાંજ્ઞમુખપણે ધર્મનું મૂલ જે સમકીર્ત (સમ્મત્તેણં
 સુધ્ધો, સચ્ચસુ કિચ્ચો હવઈ સિવહેઉ, સંવર
 વુઢ્ઠી તહ નિજ્જરા ય ધમ્મ મૂલં ચ સમ્મત્તં)
 તે પ્રાપ્ત કર્યા વગર પોતાના દુષ્કૃતો ઢાંકવા માટે,
 અથવા માન પૂજાને અર્થે, અથવા આ ભવ સંબંધી
 કામભોગના પદાર્થો મેલવવા માટે, અથવા દેવાદિક
 ગતિના મનોહર વિપુલ ભોગો પ્રાપ્ત થવા માટે ઘણા
 જીવો સામાયિક, પ્રતિક્રમણ, પચ્ચલાણ, તથા સમિતિ
 પરિસહસહનાદિ અનેક દ્રવ્ય ક્રિયાઓ ચિ સહિત

आदरे छे पण हे भगवंत ! ते सर्वे क्रियाओ शुद्ध
साध्य निरपेक्ष अर्थात् परमार्थ विमुख होवाथी विष,
गरल, तथा अन्यानुष्ठान रूपे आसव हेतु थइ पडे
छे. यद्युक्तं श्री आचारांग सूत्रे “ जे आसवा
ते परिसवा, जे परिसवा ते आसवा ” माटे ते
बालकनी क्रियावत् निर्वाण पद आपवाने असमर्थ
छे, उक्तं च परमदृष्टिदुःखदो जो कुणइ तवं वयंच
धारेइ, तं सब्वं बाल तवं, बालवयं विति सब्वण्हू॥
वयणियमाणि धरंता, सीलाणि तहा तवंच कुव्वंता ।
परमदृष्ट बाहिरा जे, निव्वाणं तेण विंदंति ॥ तथा
उपदेश मालायाम्-संसार सागर मिणं, परिभमं-
तेहि सब्व जीवेहि । गहियाणि अ मुक्काणिय,
अणंतसो दंठ्व लिंगाई-अर्थः-अरे आ संसार
समुद्रमां परिभ्रमण करतां जीवोए द्रव्यलिंग अनंती-
वार ग्रहण कर्या छोड्या पण ते द्रव्यलिंग, समकित
रहित तथा साध्य निरपेक्ष होवाथी सिद्धिना हेतु
थइ शक्या नहि. जेम घटनो ईच्छक कोइ कुंभार
घट उत्पन्न करवानां साधनो जे दंड चक्रादि तेनो
रात दिवस निरंतर घणो व्यापार करे पण साध्य
जे घट ते सिद्ध करवा तरफ जो लक्ष आपे नहि

अर्थात् माटीने चक्र ऊपर सूकी तेमांथी स्थास कुशल बुध्नादि पर्यायो निपजावे नहि तो कोइ पण काले घट सिद्ध थाय नहि. पण जो ते घट सिद्ध करवा तरफ लक्ष स्थापी स्थास कुशल बुध्नादि पर्यायो उपजाववामां दंड चक्रादिनो योग्य व्यापार करे तो अवश्य घट सिद्धि करी शके अने तयारेज तेनो दंड चक्रादिनो सर्वे व्यापार सफल कहेवाय तेमज भवभ्रमणथी उद्धिग्न थएल भव्य जीव शुद्धात्म भाव सिद्ध करवानी रुचि धरी ते तरफ पुरतो लक्ष आपी गुणस्थान प्रमाणे योग्य व्यवहार आदरे अर्थात् प्रथम समकीत गुण प्राप्त करवानो व्यवहार आदरे कारण के ते मोक्षनुं प्रथम पगथीउं छे “ जिन पणत्तं धम्मं, सदहंमाणस्स होई रयण मिणं ॥ सारं गुण रयणाणय, सोवाणं पढम मोरकस्स ” पछी देश बिरति सर्वविरती थवानो व्यवहार आदरे, पछी अप्रमत्तादि गुण स्थान प्राप्त थवानो योग्य (आगम प्रणीत) व्यवहार आदरे तो केवलज्ञानादि अनुपम लक्ष्मीनो स्वामी जाय, पोतानुं अजर अमर शुद्धात्म (निर्वाण) पद प्राप्त करे. अने तेम करतां तेनो व्रत तप पञ्चखाण प्रति-क्रमणादि सर्वे व्यवहार सफल कल्याणकारी कहे-

बाय. पण हे चंद्रानन प्रभु ! अनादि काल्थी पुद्-
 गलद्रव्यनागुण पर्यायोने अनुभवता. तेसांज तल्लीन
 थएला संसारी जीवोने सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्र
 रूप भावधर्मनी रुचि क्यांथी थाय ! जो कदाच
 एम पोतानी, मेले थवी मुश्केल तो सद्गुरुना उप-
 देश वडे पण थइ शके पण आ निकृष्ट पंचम आ-
 रामां भावधर्मेनां स्थापन करनार परमोपकारी
 सद्गुरुना अतिशय विरलता अने भावधर्म एक
 कोरे मूकी साध्य शून्य द्रव्यक्रियामां लगाडनार
 उपदेशको घणा. ए विषे न्याय विशारद श्रीमद्
 यशोविजयजी कहे छे—“ज्ञान दर्शन चरण गुण
 विना, जे करावे कुलाचाररे, लुंटीया तेणे जन देख-
 तां, किहां करे लोक पोकाररे ॥ काम कुंभादिक
 अधिकतुं, धर्मतुं को नवि मूलरे, दोकडे कुगुरु ते
 दाखवे, शुंथयुं एह जग मूलरे ॥ अर्थनी देशना जे
 दिये, ओलवे धर्मना ग्रंथरे; परम पदनो प्रगट चोरथी;
 तेहथी केम वहे पंथरे ॥ विषय रसमां गृही माची-
 या, नाचीया कुगुरु मद पूररे; धूम धामे धमाधम
 चली, ज्ञान मारग रह्यो दूररे ॥ कलहकारी कदाग्रह
 भर्या, थापता आपणा बोलरे; जिन वचन अन्यथा
 दाखवे, आज तो बाजते ढोलरे ॥ केइ निज दोषने

ગોપવા, રોપવા કેહ મન કંદરે; ધર્મની દેશના પાલટે,
સત્ય ભાણે નહિ મંદરે ॥ ” આચાર્ય કહે છે
“ કિં ભણિમો કિં કરિમો, તાળહ આસાળ
ધિટ્ઠદુટ્ઠાણં । જો દંસિઝુળ લિંગ, ચિંચિતિ
ળરયમ્મિ મુદ્ધજણં ॥ ” તો હે ભગવંત ! નવા
જીવો જિન દર્શિત શુદ્ધાત્મ ધર્મને શીરીતે પામી
શકે ? ॥ ૩ ॥

તત્ત્વાગમ જાણગ તર્જીરે, બહુ જન સમ્મત
જેહ । મૂઢ હઠી જન આદર્યોરે, સુગુરુ ક-
હાવે તેહરે ॥ ચંદ્રાનન૦ ॥ ૪ ॥

અર્થ:-વલી હે પ્રભુ ! આપના ભાણેલા આગમનું
યથાર્થ રહસ્ય જાણનારને તો આ પંચમ કાલમાં મૂઢ
પુરુષો તજી દે છે-ઉઘેલે છે, અને તત્ત્વ જ્ઞાનથી
વિમુક્ત, મૂર્ખના ટોલાને સંમત તથા મૂઢ અને કદા-
ચ્રહી પુરુષોએ આદરેલા સન્માનેલા એવા કુગુરુઓ,
સુગુરુ નામ ધરાવે છે, પણ પથ્થરની નાવ જેવા
પ્રગટપણે જિનશાસનના વૈરીરૂપ કુગુરુઓ ભવસમુદ્ર-
માંથી કેમ ઉદ્ધારી શકે ? મોક્ષમાર્ગે શી રીતે દોરી
શકે ? ઉક્તંચ:-જિમ જિમવહુ શ્રુતબહુજન સંમત,

બહુ શિષ્યે પરિવરિઓ; તિમ તિમ જિનશાસનનો
 વૈરી; જો નવિ નિશ્ચય દરિયોરે-તથા ઉપદેશ માલા-
 યામ્: “ જહ જહ બહુ સુઅસમઓ, સીમ ગણ
 સંપરિવુદ્ધોય; અવિળીચ્છિઓ અસમણ, તહ તહ
 સિદ્ધંત પડિળીઓ. ”

આળા સાધ્ય વિના ક્રિયારે, લોકે માન્યો રે
 ધર્મ । દર્શન જ્ઞાન ચરિત્તનોરે, મૂલ ન જા-
 પ્યો મર્મરે ॥ ચંદ્રાનન૦ ॥ ૫ ॥

અર્થ:-દર્શન જ્ઞાન ચારિત્રનો મૂલ મર્મ જાણ્યો
 નહિ અર્થાત્ સત્તાં અનંત જ્ઞાન દર્શન ચારિત્ર મય
 સિદ્ધ સમાન સર્વે જીવો છે, પણ અનાદિથી કર્મ
 મલ સંબંધે અશુદ્ધ હોવાથી જ્ઞાન દર્શન અને ચારિત્ર
 રૂપ શુદ્ધાત્મ સ્વભાવથી વિપરીતપણે મિથ્યાત્વ,
 અજ્ઞાન, અને કષાય રૂપ પરિણમે છે, પોતાના આત્મ-
 વીર્યને તેમાં વાપરે છે અને તેથી નિરંતર સાત આઠ
 પ્રકારનાં કર્મ વાંધી ભવસમુદ્રમાં પરિભ્રમણ કરતાં
 અનેક પ્રકારની શારીરિક તથા માનસિક અસહ્ય
 વેદનાઓ ભોગવે છે. પણ તે મિથ્યાત્વ, અજ્ઞાન, અને
 કષાયને તીવ્ર દુઃખ દાતાર તથા અઘૂટ સહજાનંદને

લૂંટનાર મહાન્ શત્રુઓ જાણી તેમાં પોતાના આત્મ-
વીર્યને નહિ વાપરતાં જીવાદિ તત્ત્વોના યથાર્થ
શ્રદ્ધાનરૂપ સમ્યક્દર્શન, તથા તે જીવાદિ તત્ત્વોને
નયનિક્ષેપ પક્ષ પ્રમાણાદિ સહિત સંશય, વિભ્રમ
અને વિમોહ રહિત શ્રદ્ધાન પૂર્વક જાણવા રૂપ
સમ્યક્જ્ઞાન, તથા રાગાદિક કષાય અને સાવચ યો-
ગના પરિહાર રૂપ સમ્યક્ચારિત્રમાં પ્રયુજો સંસાર
સમુદ્રથી આપણા આત્માનો ઉદ્ધાર કરવો. યતઃ—

ગાથાઃ-જીવાદી સદ્દહન, સમ્મતં તેસિ મધિ-
ગમો ણાણં; રાગાદી પરિહનં, ચરણં एसो दु
મોરકપહો) દશ દ્રષ્ટાંતે દુર્લભ, રત્ન ચિંતામણી
સમાન મનુષ્ય ભવ ત્યારેજ સફલ જાણવો. કાર-
ણકે પંચેન્દ્રિઓના વિષય ભોગ તો દેવાદિ ગતિમાં
મલી શકે છે પણ પરમાત્મપદ-મોક્ષપદ તો આ
મનુષ્ય ભવમાંજ સાધી શકાય છે. માટે આપણા
આત્માને રત્નત્રયમાં જોડવો, મોક્ષમાર્ગમાં પ્રવૃત્ત
થવું, એજ આપણું સર્વોત્કૃષ્ટ કર્તવ્ય છે, અને તેજ
ધર્મ છે-યતઃ (સદૃષ્ટીજ્ઞાન વૃત્તાનિ, ધર્મ ધર્મેશ્વરા
વિદુઃ; યદીય પ્રત્યનીકાનિ, ભવન્તિ ભવ પદ્ધતિઃ)
તેજ જગત્વત્સલ દેવાધિદેવ તીર્થંકર ભગવંતની

आज्ञा छे- “ मोरक पहे अप्पाणं, ववेहि तं
 चेव झाहिं तं चेय, तत्थेव विहर णिच्चं, मा
 विहरसु अण दब्बेसु ” हे भव्य ! तुं मोक्षमार्ग-
 मां पोताना आत्माने स्थाप, तेज परमात्मपदनुं
 ध्यान कर, तेज परमात्म पदने अनुभवगोचर कर,
 अने तेज परमात्म भावमां निरंतर विहार कर,
 अन्य द्रव्य पर्यायमां विहार करीश नहि, तेमां
 इष्टानिष्ट बुद्धि वा राग द्वेष रूप परिणाम करीश
 नहि अर्थात् सर्वदा प्रमाद तजी परमात्मपदनी
 साधनामां मग्न था.

पण हे चंद्रानन प्रभु ! आ दुःषमकालमां ते
 परमात्म पदनुं यथार्थ स्वरूप जाण्यावगर तथा तेनी
 साधनारूप जिनेश्वरनी आज्ञानी अपेक्षा तरफ लक्ष
 राख्या शिवाय अनेक प्रकारनी बाह्य क्रियाओनेज
 धर्म मानी लीधो, तेमांज रत थया, तेज करी पो-
 ताने कृतार्थ समज्या अर्थात् बाह्य निमित्तने कार्य
 मानी साचा कार्यथी विमुख थई रह्या, पण जिने-
 श्वरनी आज्ञाथी विमुखपणे वर्त्ततां सिद्धि थाय
 नहि. कारणके जिनेश्वरनी आज्ञानी अपेक्षा वगरनां
 सर्वे क्रियानुष्ठान निरर्थक छे-श्रीमद् अभयदेव सूरि

કહે છે—“સંજમ રહિયં લિંગં, દંસણ મઠં ન સંજમં
 મણિયં, આણા હીણ ધમ્મં, નિરત્થયં હોઈ સઘ્વંપિ”
 તથા “જો પૂહડ્ડહ દેવો, તવ્વયણં જે નરા વિરા-
 હંતિ; હારંતિ વોહિ લામં, કુદિટ્ઠિ રાણ અન્નાણી”
 તથા “પૂઆ પચ્ચરકાણં, પોસહ ઉવવાસ દાણ
 સીલાઈ; સઘ્વંપિ અણુટ્ટાણં, નિરત્થયં કણય કુસુ-
 મવ્વ” તથા શ્રી ધર્મદાસ ગણી ઉપદેશમાલામાં
 કહે છે. “આણાઈચ્ચિય ચરણં, તમ્મંગે જ્ઞાણ કિન્ન
 મગ્ગંતિ, આણં ચ અદ્વકંતો, કસ્સાએસા કુણ્હ
 સેસં; નિશ્ચયે આજ્ઞા એજ ચારિત્ર છે અર્થાત્ જિના-
 જ્ઞાનું પાલવું એજ ચારિત્ર છે. તો જેણે જિનેશ્વરની
 આજ્ઞા માંગી તેણે શું ન માંગ્યું ? હે પ્રાણી, જો તું
 જિનેશ્વરની આજ્ઞાને ઉલંઘન કરે છે તો તું કોના
 આદેશથી ક્રિયાનુષ્ઠાન કરે છે ? તથા ઉપદેશ સિદ્ધાંત
 રત્નમાલાયામ્—“જગ્ગુરુ જિણસ્સ વયણં, સયલાણ
 જિયાણ હોઈ હિંય કરણં; તા તસ્સ વિરાહણયા,
 કહ ધમ્મો કહણુ જીવદયા” જગત્ગુરુ શ્રી જિને-
 શ્વરનું વચન સર્વે જીવોને હિત કરનાર છે તો તે
 વચનને વિરાધતા કેવો ધર્મ અને કેવી જીવ
 દયા ? ॥ ૫ ॥

ગચ્છ કદાગ્રહ સાચેવેરે, માને ધર્મ પ્રસિદ્ધ;

આત્મ ગુણ અકષાયતારે ધર્મ ન જાણે
શુદ્ધરે ॥ ચંદ્રાનન૦ ॥ ૬ ॥

અર્થ:-સમ્યક્દર્શન સમ્યક્જ્ઞાન સમ્યક્ચારિત્ર-
રૂપ શુદ્ધાત્મ ગુણનો, ક્રોધ, માન, માયા, લોભાદિક
કષાયો વહે ઘાત ન કરવો, અકષાય ભાવમાં, શુદ્ધ
પરિણામીક ભાવમાં વર્તેવું તેજ સાચો ધર્મ છે.
કારણકે “ વત્થુ સહાવો ધર્મો ” એવું શ્રી જિને-
શ્વરનું પદ્ધિત્ર વચન છે-તથા તે કષાયોજ કર્મબંધના
હેતુ છે. “ જોગ નિમિત્ત ગ્રહણં, જોગો મળ વચળ
કાય સંભૂદો; ભાવ નિમિત્તો બંધો, ભાવો રદિ રાગ
દોષ મોહ જુદો ” તથા અકષાયમાં વર્તેતો-પોતાના
જ્ઞાનાદિ ભાવ પ્રાણોની રક્ષા કરનારો જ્ઞાની અપ્ર-
માદી મુનિ પોતાના તથા પરના દ્રવ્યભાવ પ્રાણનો
હિંસક કેમ થાય ? અને જે અશુદ્ધ અધ્યવસાયમાં
વર્તે છે તે હિંમા નહિ કરતા છતાં પણ હિંસક છે.
યત:-“અહણંતો વિહુ હિંસો, દુટ્ઠતણુઓ મઓ
અહિમરોવ્વ, બાહિંતો નવિ હિંસો, શુદ્ધ તણુઓ
જહા વિજ્ઞો ” માટે અકષાયમાં વર્તેવું તથા અ-
હિંસામાં વર્તેવું એ બેની પરમાર્થે એકતાજ છે. અને

अहिंसा धर्मनुं पालन करनार सर्वे धर्मनुं पालन करनार छे, कारण के सर्वे भहाव्रतो, तथा क्षमा-दिक दश धर्मो, तथा परिसह सहन, तथा तप, संयम विगेरे सर्वे धर्मो अहिंसानाज अंग छे, ते-नाज कारणो छे, माटे सर्वे धर्मोनो अहिंसामां समावेश थाय छे.

“ सव्वाओवि नइओ, जह सायरंमि निवडंति; तह भगवई अहिंसि, सव्वे धम्मा समिल्लन्ति, ” तथा बली “ अहिंसा सर्व जीवानाम्, सर्वज्ञैः परि-भाषिता, इदं हि मूलं धर्मस्य, शेषस्तस्यास्ति वि-स्तरः ” माटे अकषायमां वर्त्ततो मुनि, नवा कर्मबंधने अटकावतो, पूर्वे बांधेला कर्मनी निर्जरा करतो, जन्म अरणादि दुःखनो क्षय करी परमानंदपदने-मोक्षपदने प्राप्त करे छे. यद्युक्तं—आचारांग सूत्रे श्रीजा अध्ययने “ जे क्रोधने छोडे छे ते मानने छोडे छे; जे मानने छोडे छे ते मायाने छोडे छे; जे माया ने छोडे छे ते लोभने छोडे छे; जे लोभने छोडे छे ते रागने छोडे छे; जे रागने छोडे छे ते द्वेषने छोडे छे; जे द्वेषने छोडे छे ते मोहने छोडे छे; जे मोहने छोडे छे ते गर्भथी मुक्त थाय छे; जे गर्भथी मुक्त थाय छे ते जन्मथी मुक्त थाय छे; जे जन्मथी मुक्त थाय

छे ते मरणथी मुक्त थाय छे; जे मरणथी मुक्त थाय
 छे ते नरकथी मुक्त थाय छे; जे नरकथी मुक्त थाय
 छे ते तिर्यंच गतिथी मुक्त थाय छे; जे तिर्यंच गति-
 थी मुक्त थाय छे ते दुःखथी मुक्त थाय छे ” एहवा
 अकषायरूप शुद्ध धर्मने नहि जाणनारा, तेनी
 अपेक्षा नहि राखनारा, एकांते बाह्य क्रियानी हठ
 धरनारा पुरुषो मात्र बाह्य क्रियानेज मोक्षनुं कारण
 मानी, पोताना गच्छ प्रमाणे वर्त्ती ते बाह्य क्रिया-
 नेज परमार्थ ठराववा प्रयत्न करे अने कहे के आवुं
 पात्र, वा आवी मुहपत्ती, विगेरे राखवां अने आ-
 बीज रीते प्रतिक्रमणादि क्रिया करवी तेज मोक्षनुं
 कारण छे. अमाराथी प्रकारांतरे जे उपकरणो तथा
 प्रतिक्रमणादि बाह्य क्रियाओ आदरे छे ते मोक्ष
 पामी शके नहि. एम पोते आदरेल बाह्य लिंगने
 तथा बाह्य करणीने परमार्थ मोक्षनुं कारण मानी
 अमे साचो धर्म आराधीए छिये, अमारो धर्म
 प्रशंसनीय छे, एम जे पोतानी जीव्हाग्रे जल्पे छे
 अने ते माटे लांबा लांबा वितंडावादो मांडी बेसे छे,
 समतारूप अमृतने तजी कषायरूप हालाहल विष-
 ने भक्षण करे छे; एहवा एकांतवादी पुरुषोनो दुरा-
 ग्रह नाश करवा माटे श्री जिनेश्वर प्रणीत शुद्धा-

गमन्तु रहस्य प्रगट करता श्री मद्भयशोविजयजी
 अध्यात्मसागरमां कहे छे.-“ अतो रत्नत्रयं मोक्ष-
 स्तदभवे कृतार्थता; पाखंडीगण लिंगैश्च, गृह लिंगै-
 र्गैश्च कापिन । पाखंडी गण लिंगेषु, गृह लिंगेषु ये
 रताः; न ते समयसारस्य, ज्ञातारो बाल बुद्धयः ।
 भाव लिंग रतायेषु, सर्वसार विदोहिते; लिंगस्था
 वा गृहस्था वा; सिध्यन्ति धूत कल्मषा । भाव-
 लिंगं हि मोक्षांगं, द्रव्यलिंग मकारणं; द्रव्यं नात्यं-
 तिकं यस्मान्नाप्येकांतिक मिष्यते । ” आवोज भाव
 दिगम्बर आचार्य श्री कुंदकुंदाचार्य समयपाहुडमां
 कहे छे-गाथा-

“ पाखंडी लिंगेषु व, गिहिलिंगसुव बहुप्प-
 यागसु; कुब्बंति जे ममत्तं, तेहि ण याणं
 समयसारं-णवि एस मोरकमग्गो, पाखंडी
 गिहि मयाणि लिंगाणि; दंमण णाण चारत्ता-
 णि मोरक मग्गं जिणा विति ” अर्थ:-पाखंडि
 साधुलिंगमां वा गृहस्थ लिंगमां वा बहु प्रकारना
 लिंगमां जे ममत्व करे छे ते समय सारने जाणता
 नथी. पाखंडीसाधुनो लिंग. वा गृहस्थनो लिंग
 विगेरे मोक्ष मागे नथी पण श्रीजिनश्वर सम्यक्-

दर्शन ज्ञान चारित्र्यने मोक्षनो मार्ग कहे छे-“ तह्या
जहित्तु लिंग, सागार अणगारएहि वा गहिण,
दंसणणाण चरित्ते, अप्पाणं जुज मोरकपहे ”

अर्थ:-ते माटे सागार अने अणगारना लिंगनुं
ममत्व तजी, पक्षपात तजी, दशेन ज्ञान चारित्र्य
रूप मोक्षमार्गमां आत्माने लगाव-जोड. तेमज
वली श्री अमृतचंद्राचार्य कहे छे. “ येत्वेनं परिहृत्य
संवृति पथ, प्रस्थापि तेनात्मनाः लिंगे द्रव्यमये
वहन्ति ममतां, तत्वावबोध न्युताः । नित्योद्योत
मखंड मेक मतुला, लोकं स्वभाव प्रभा, प्राग्भारं
समयस्य सार ममलं, नाद्यापि प्रश्यन्ति ते ॥ ”

अर्थ:-जे पुरुषो परमार्थ स्वरूप मोक्षमार्गेने छोडी
याह्य व्यवहारमां पोताना आत्माने स्थापी द्रव्य
लिंगनी ममता धरे छे, तेनेज मोक्षनुं कारण माने
छे, ते पुरुषो तत्त्वज्ञानधी विमुख छे वली ते पुरुषो
नित्यादित, अखंड, एक, अनुपमं, अपराजित,
अतुल प्रकाशवंत अने पवित्र परमात्म स्वरूपने
अथवा जिनेश्वरना पवित्र समय सारने हजु सुधी
पण (सुनीनो वेष धारण कर्या छतां पण) जाणता
नथी, प्राप्त थता नथी. माटे एकांत याह्य क्रियानो

हठ छोडी, परमार्थ समजी, शुद्ध साध्य तरफ लक्ष
राखी शुद्धात्म पद जेथी सिद्ध थाय एहवो प्रशस्त
व्यवहार आदरी, आपणा आत्माने अत्यंत परमा-
नंदमय परमात्मपदमां स्थित करो ॥ ६ ॥

तत्वरसिक जन थोडलारे, बहुलो जन
संवाद ॥ जाणो छे जिनराजजीरे, सघलो
एह विवादरे ॥ चंद्रानन० ॥ ७ ॥

अर्थ:-हे चंद्रानन प्रभु ! आ दुषमकालमां
अमारा भरतक्षेत्रमां सद्गुरुनी विरलता बडे
शुद्धात्म तत्त्व साधवाने रसिआ पुरुषोनी संख्या
तो रत्न मणिनी पेठे अतिशय अल्प, अने पोतानो
मत कदाग्रह स्थापन करवाने तत्पर एहवा काचना
कडका जेवा पुरुषो घणा, एवी अमारी दयामणी
दशानुं वर्णन हे जिनेश्वर ! आप सर्वथा जाणो
छो ॥ ७ ॥

नाथ चरण वंदन तणोरे, मनमां घणो
उमंग ॥ पुण्य विना किम पामीएरे, प्रभु
सेवननो रंग रे ॥ चंद्रानन० ॥ ८ ॥

अर्थ:-देवाधिदेव श्री तीर्थकरनां चरणकमल के

જે શુદ્ધાત્મ અનુભવરૂપ સુગંધે भरपूर तथा विषय
 कषायनी चाह दाहने शमन करनार, मोक्ष लक्ष्मीनुं
 अतिशय प्रिय निवासस्थान छे. तेने वंदन करवानो-
 पूजवानो भ्रमरनी पेठे तैमां लीन थवानो, माहरा
 मनमां अतिशय उमेद-उमंग छे पण आ भवचक्रमां
 भ्रमण करतां अनेकवार मनुष्यभव पाम्यो, पण वि-
 षय कषायादिकमां सोहित रही रस्नचिंतामणी
 समान मनुष्यभव वृथा गुमावी दीधो, पुण्यानुबंधी
 पुण्यना वियोगे जिनेश्वरनी सेवामां रग लाग्यो
 नहि. तल्लीनता थई नहि. करीयातु कडवुं छतां जेम
 मोढानी कडवासनो नाश करे छे तैम जिनेश्वरनी
 लोकोत्तर सेवारूप प्रशस्त राग, ते राग नाश कर-
 वानो तथा आत्मगुण प्रोप्तिनो हेतु छे. यतः-गाथाः-
 “नाणाइसु गुणेषु, अरिहंताइसु धम्म ख्वेसु
 धम्मोवगरण साहम्मीएसु धम्मथं जोय गुण-
 रागो ॥ सो सुपसथ्यो रागो, धम्म संयोग
 कारणो गुण दो, पढमं कायव्वो सो, पत्त गुणे
 खवइ तं सव्वं ॥ ” भावार्थः-ज्ञानादि गुणो
 ऊपर, अरिहंतादि धर्मात्मा ऊपर, तथा धर्मना
 साधनो ऊपर, तथा साधर्मी ऊपर गुणावलंबने जे

राग करवो ते प्रशस्त राग, धर्म संयोगनुं तथा गुण
प्रगट थवानुं कारण छे. ॥ ८ ॥

जगतारक प्रभु वांदियेरे, महाविदेह मझार ॥
वस्तु धर्म स्याद्वादतारे, सुणि करिये नि-
रधार रे ॥ चंद्रानन० ॥ ९ ॥

अर्थ:-संसार समुद्रमांथी उद्धारवा माटे समर्थ,
महाविदेहमां विचरता श्री चंद्रानन प्रभुनुं निर्मल
भावे वंदन करिए. सूत्रमां “ वंदननुं फल श्रवण ”
एम प्रगट वचन छे, माटे भगवंतने वंदन करतां
अनंत धर्मात्मक वस्तुनुं स्वरूप स्याद्वादनये सांभल-
वानो लाभ मले, ते सांभली वस्तु स्वरूपनो निर्धार
करी शुद्ध धर्ममां प्रवृत्त थईए. ॥ ९ ॥

तुज करुणा सहू ऊपरे रे, सरखी छे महा-
राय ॥ पण अविराधक जीवनेरे, कारण
सफलु थायरे ॥ चंद्रानन० ॥ १० ॥

अर्थ:-हे चंद्रानन प्रभु ! आप राग रूपी समुद्र
ने उलंघी गया छो, वीतराग भूमिमां विराजमान
छो तेथी आप तो शत्रुमां तेमज मित्रमां, सेवकमां
तेमज असेवकमां, निंदकमां तेमज स्तुतिकारमां

समान वृत्तिवाला छो, सर्वे जीवो ऊपर आपनी करुणा तो हीणाधिकता रहित एक सरस्वी छे, संसार समुद्रथी तारवा माटे सर्वेने एक सरस्वी उपदेश आपो छो. तो जे जीवो आपनी आज्ञाना विराधक होय ते न तरी शके ते तेमनोज दोष छे. “पत्रं नैव यदा करीर विटपे, दोषो वसंतस्य किम; ने लूकोप्यवलोकते, यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणं” पण आपनी आज्ञाना आराधक जीवो आ संसार समुद्रथी तरी शके, आपनुं निमित्त तेओनेज सफल थाय. ॥ १० ॥

एहवा पण भवि जीवनेरे, देव भक्ति आधार ॥ प्रभु समरणथी पामीएरे, देवचंद्र पद सारेरे ॥ चंद्रानन० ॥ ११ ॥

अर्थ:-एहवा आराधक भव्य जीवोने पण देवाधिदेव हे चंद्रानन प्रभु ! आपनी भक्तिनोज आधार छे, संसार समुद्रमांथी तरवामां प्रवहण समान पुष्ट अवलंबन छे. माटे हे प्रभु ! देवमां चंद्रमा समान सर्वोत्कृष्ट परमात्मपद, आपना गुणनुं स्मरण तथा ध्यान करवाथी प्राप्त थशे ॥ ११ ॥ संपूर्ण ॥

॥ અથ ત્રયોદશમ ચંદ્રબાહુ જિન સ્તવનમ્ ॥

॥ શ્રી અરનાથ ઉપાસના ॥ એ રાગ ॥

॥ ચંદ્રબાહુ જિન સેવના, ભવ નાશિની તેહ ॥

પર પરિણતિના પાસને, નિષ્કાસન રેહ ॥

ચંદ્ર૦ ॥ ૧ ॥

અર્થ:-અજ્ઞાનાદિ અષ્ટાદશ દૂષણ રહિત તથા અનંત ચતુષ્ટય સહિત તથા શુદ્ધ નયે આત્મધર્મનો ઉપદેશ આપી ભવ્ય સમૂહને મોક્ષમાર્ગે દોરનાર, વિદેહ ક્ષેત્રમાં વિહરમાન શ્રી ચંદ્રબાહુ જિનેશ્વરની શુદ્ધ ભાવે (આલોક પરલોક સંબંધી વિષય ભોગની આકાંક્ષા રહિત શુદ્ધાત્મ ભાવ પ્રગટ કરવાના હેતુ-રૂપ) કરેલી સેવા. સૂર્ય જેમ અધિકારનો શીઘ્રમેવ નાશ કરે છે તેમ લીલા માત્રમાં ભવ અમણનો નાશ કરનાર છે તથા “ પર પરિણતિના પાસને નિષ્કાસન રેહ ” જેમ હરણ શબ્દના વિષયમાં મોહિત થઈ વિવિધ પ્રકારના વાર્જીત્રના મધુર કોમલ સ્વરના રાગ વશો પારધીયે નાંચેલી જાલમાં આવી ફસે છે, પોતાની સ્વતંત્રતાને ગુમાવી પરાધીન થઈ જીવ જોખમમાં આવી પડે છે. તેમજ સંસારી પ્રાણીઓ

શબ્દાદિક વિષયના રાગ વશો મોહ પછીપતિએ પાથ-
 રેલી અતિશય વિસ્તીર્ણ અને દૃઢ કર્મજાલમાં આવી
 ફસે છે, પોતાના સહજ સ્વતંત્ર અવ્યાવાધ આત્મ
 ભોગને ગુમાવી બેસે છે, પરાધીન દીન થાય છે, પો-
 તાના શુદ્ધ જ્ઞાનાદિક પ્રાણના જોશ્વમમાં આવી પડે
 છે, કષાયાગ્નિમાં (દગ્ધમાન) પચ્યમાન થાય છે,
 ચલતા રહે છે, એહવા પર પરિણતિના રાગરૂપ બં-
 ધનને છેદવા માટે ચંદ્રબાહુ જિનેશ્વરની સેવના તી-
 ર્ક્ષણધારા સમાન છે, તેથી મુક્ત કરવા અત્યંત સા-
 મર્થ્યવંત છે ॥ ૧ ॥

પુદ્ગલ ભાવ આશંસના, ઉદ્ધાસન કેતુ ॥
 સમ્યક્દર્શનવાસના, ભાસન ચરણ સમેત ॥
 ચંદ્ર૦ ॥ ૨ ॥

અર્થ:-અનાદિકાલથી કર્મ જાલમાં ફસેલો
 પરાધીન થયેલો આત્મભોગના જ્ઞાન તથા આસ્વા-
 દનનો વિયોગી પુદ્ગલના રૂપ રસ ગંધ સ્પર્શાદિ
 વિષયભોગમાં મગ્ન થયેલો સંસારીજીવ નિરંતર પુદ્-
 ગલ વિષયોની આશંસના- તૃષ્ણાને વશ થતો છે.
 તે તૃષ્ણાને છેદવાને ચંદ્રબાહુ પ્રભુની સેવા કેતુ સ-
 માન છે તથા સમ્યક્દર્શન, સમ્યક્જ્ઞાન, સમ્યક્

चारित्ररूप आत्मस्वभावमां वास कराववावाली
छे, आत्मगुणनी सुवासमां संतुष्ट करनार छे. ॥ २ ॥

त्रिकरण योग प्रशंसना, गुणस्तवना रंग ॥

वंदन पूजन भावना, निज पावना अंग ॥

चंद्र० ॥ ३ ॥

अर्थ:-मन वचन अने काया ए त्रियोगनी शु-
द्धिए (कषायादि अप्रशस्त परिणाम रहित) देवाधि-
देव श्री तीर्थंकर भगवंतनो यशवाद बोलवो, तेमना
ज्ञानादिक पवित्र गुणनी स्तवना करवी, गुणानुराग
करवो, वंदन पूजन विगेरे करवुं. तेमना ज्ञानादि
शुद्धभाव अनुगत आप्णो आत्म परिणाम करवो,
ते सर्व आपणा आत्माने ज्ञानावरणादि पापथी मुक्त,
पवित्र करवानां तथा शुद्धात्मपद प्राप्तिनां अंग छे ।३।

परमात्मपद कामना, काम नाशन तेह ॥

सत्ता धर्म प्रकाशना, करवा गुण गेह ॥

चंद्र० ॥ ४ ॥

अर्थ:-केवलज्ञान, केवलदर्शनादि, अनंत गुण-
पिंड आपणा शुद्धात्मपदनी कामना, ते साधवानी
रुचि, ते पुद्गलादि अन्य द्रव्यनी कामना तृष्णाने

નાશ કરવાનો હેતુ છે, કારણકે આપણો આત્માજ પરમાત્મપદનું ઉપાદાન છે, તેજ પરમાત્મ ભાવે પરિણમનાર છે માટે પરમાત્મપદ ક્ષેત્રાંતરે નથી અને ક્ષેત્રાંતરે રહેલી વસ્તુની કામનાજ દુઃખદાયી છે માટે પરમાત્મ પદની કામના થવાથી અન્ય સર્વ કામનાનો ઉચ્છેદ થાય છે. તે પરમાત્મપદની કામનાના હેતુ શ્રી જિનેશ્વર ભગવંત ઈ, તેથી તેમની સેવા સત્તામાં રહેલી જ્ઞાનાદિ અનંત લક્ષ્મીને પ્રગટ દ્રષ્ટીગોચર કરવાને તથા આપણા આત્માને ગુણ-નિધાન પૂજ્ય પદ આપવાને પુષ્ટ હેતુ છે. ॥ ૪ ॥

॥ પરમેશ્વર આલંબના, રાચ્યા જેહ જીવ ॥
 નિર્મલ સાધ્યની સાધના, સાધે તેહ સદીવ ॥
 ચંદ્ર૦ ॥ ૫ ॥

અર્થ:-જગત્ ચૂડામણિ તરણ તારણ પરમેશ્વરનો આશ્રય જે ભવ્ય જીવો રુચિ બહુમાન પૂર્વક ગ્રહણ કર્યો છે તેજ પુરુષો નિરંતર પોતાના શુદ્ધ સાધ્યને સાધવાવાલા છે. પરમાત્મપદ જેમાં પ્રગટપણે છે એવા તીર્થંકર ભગવંત પરમાત્મપદ સાધનાના પુષ્ટ હેતુ થઈ શકે, પણ અન્ય કુદેવાદિક જે, પો - અશુદ્ધ

आत्मभावमां वर्त्ते छे ते मोक्षना हेतु केम बनी
शके ? ॥ ५ ॥

॥ परमानंद उपायवा, प्रभु पुष्ट उपाय ॥
तुजसम तारक सेवतां, पर सेवन थाय ॥
चंद्र० ॥ ६ ॥

अर्थ:-ते कारणमाटे हे चंद्रबाहु प्रभु परमानंद
पद-मोक्षपद प्राप्त करवामां आपज पुष्ट उपाय छो.

‘ पुष्ट हेतु जिनेंद्रोयं, मोक्ष सद्भाव साधने ’

हे प्रभु ! आप जेवा पूज्य पुरुषनी सेवा करतां
अन्य जीव तथा पुद्गलनी आशा तृष्णा तथा सेवा
मटी जाय, करवी न पडे ॥ ६ ॥

॥ शुद्धातम संपति तणा, तुम्हे कारण सार ॥
देवचंद्रं अरिहंतनी, सेवा सुखकार ॥
चंद्र० ॥ ७ ॥

अर्थ:-अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख तथा
अनंतवीर्यरूप परमपवित्र, अविनश्वर अने स्वाधीन
अखूट लक्ष्मी प्रगट-प्राप्त करवाना, हे भगवंत !
आपज साचा कारण छो. कारण के ते केवल ज्ञा-

नादि लक्ष्मीने आप संपूर्ण प्रगट स्वाधीन करी नि-
 रंतर भोगवो छो, तज्जन्य परमानंदमां मग्न छो.
 एवं आपनुं स्वरूप द्रष्टि गोचर थतां मने पण एवं
 भान थयुं के ए अनुपम विभूतिना ईश्वर माहरी
 स्वजाति छे, तेथी हुं पण आप समान लक्ष्मीनो
 स्वामी थवाने सत्तावंत हुं, एम भासन थतां आप
 समान परमात्मपद साधवानी मने रुचि थइ तेथी
 आप माहरी सिद्धिना साचा कारण छो. जो आ-
 पना परमानंदमय स्वरूपनुं मने दर्शन न थयुं होत
 तो मने परमात्म पद साधवानी रुचि पण थती नहि
 अने रुची थयाविना कार्य साधनामां उद्यम प्रवृत्ति
 थाय नहि अने साधना विना कार्य सिद्धि पण थाय
 नहि माटे न्यायद्रष्टिए जोतां आपनुं सिद्धपद माहरी
 सिद्धिनुं कारण प्रतित थाय छे ॥ उक्तंच विशेषा-
 वश्यके ॥ “ सर्वेपि बुद्धो संकल्प्य कार्यं करोति
 इति ॥ व्यवहारस्ततो बुद्धाद्ध्यवसितस्य कुं-
 भस्य चिकीर्षितो मृन्मयःकुंभस्तद्बुद्ध्यालंबन
 तया कारणं भवति ” तथा बली ते परमात्म-
 पद साधवानो यथार्थ मार्ग बतावनार पण आपज
 छो तेथी पण आप माहरी सिद्धिना कारण छो माटे

सर्वे देवोमां चंद्रमा समान हे अरिहंत भगवंत !
 आपनीज सेवा सर्वे क्लेशथी मुक्त करी परमानंद
 परम सुखनी दातार छे । १ ॥

॥ संपूर्ण ॥

। अथ चतुर्दशम श्री भुजंग स्वामी जिन स्तवनम् ।

॥ देशी । लृअरनी ॥

पुष्कलावड विजये हो, के विचरे तीर्थपती ।
 प्रभु चरणने सेवेहो, के सुरनर असुर पती ।
 जसु गुण प्रगट्या हो, के सर्व प्रदेशमां ।
 आत्म गुणनी हो, के विकसी अनंत
 रमा ॥ १ ॥

अर्थ:-पुष्कलावर्त विजयमां विचरता सम्यक्-
 ज्ञान दर्शन चारित्र रूप तीर्थना प्रगट करनार,
 फेलावनार तीर्थपति श्री भुजंग स्वामी प्रभुने कषाय
 तथा अज्ञानथी बिलकुल रहित, परम पवित्र परमानंद
 स्वरूप जाणी, मोक्ष मार्गमां गमन करबा कुशल
 तेमना पवित्र चरण युगलने महान् रिद्धि सिद्धिना
 धारक सुर असुर तथा मनुष्यना इंद्रो, विषय तथा

કષાય જન્ય ભવ સમુદ્રથી મુક્ત થવા, વહુ સન્માન સહિત સેવે છે. જે ભગવંતના દરેક પ્રદેશે રહેલા જ્ઞાનાદિ અનંત ગુણો સંપૂર્ણ પળે નિર્મલ પ્રગટ થયા છે, તે ગુણનો વ્યાપ્તા કરનાર જ્ઞાનાવરણાદિ ઘાતી કર્મનો સત્તા સહિત નાશ કર્યો છે અને તેથી જ્ઞાનાદિ આત્મ ગુણની સહજ, અકૃત્રિમ, સ્વાધીન, અને અવિનશ્વર અનંત અનુભૂતિ (લક્ષ્મી) પ્રગટ પ્રાપ્ત થઈ છે, નિરંતર તેના સ્વામી તથા ભોક્તાપણે વર્તે છે-પરમાનંદમાં નિમગ્ન છે ॥ ૧ ॥

સામાન્ય સ્વભાવની હો, કે પરિણતિ અસહાયી । ધર્મ વિશેષની હો, કે ગુણને અનુજાયી ॥ ગુણ સકલ પ્રદેશે હો, કે નિજ નિજ કાર્ય કરે । સમુદાય પ્રવર્તે હો, કે કર્તાભાવ ધરે ॥ ૨ ॥

અર્થ:-સામાન્ય સ્વભાવ વિના વસ્તુની છત્તી નહિ અને વિશેષ સ્વભાવ વિના કાર્ય નહિ, પર્યાય પ્રવૃત્તિ નહિ, માટે પંચાસ્તિકાય તે સદા સામાન્ય વિશેષ સ્વભાવમયી છે.

જે સ્વભાવમાં એકપણું, નિસ્થપણું, નિરવયક્ષ-પણું, અક્રિયપણું, અને સર્વગતપણું હોય તે સામાન્ય

સ્વભાવ જાણવા (ઇગં નિઞ્ચં નિરવયવમક્રિયં
 સઠ્ઠવગ્ગં ચ સામન્નં) એવા મૂલંસામાન્ય સ્વભાવ
 છે છે-અસ્તિત્ત્વં, વસ્તુત્ત્વં, દ્રવ્યત્ત્વં, પ્રમેયત્ત્વં, સત્ત્વં
 અને અગુરુલઘુત્ત્વં. તથા ઉત્તરસામાન્ય સ્વભાવ
 વસ્તુ મધ્યે અનંતા છે. તે સામાન્ય સ્વભાવો સર્વ
 દ્રવ્યમાં સર્વે સમય નિજ પરિણામીકતાએ પરિણમે
 છે, તેથી હે ભગવંત ! આપના સર્વ સામાન્ય સ્વ-
 ભાવો સદાકાલ અસહાયે પરિણમે છે અને હે ભગ-
 વંત ! આપના સર્વ વિશેષ ધર્મ પોતાના પરમ ગુણને
 અનુયાયીપણે પરિણમે છે. યદ્યુક્તં—ભિન્ન ભિન્ન
 પર્યાય પ્રવર્તન સ્વકાર્ય કરણ સહકાર ભૂતાઃ
 પર્યાયાનુગત પરિણામ વિશેષ સ્વભાવાઃ ”
 વસ્તુમાં જે ભિન્ન ભિન્ન પર્યાય છે તેનું કાર્ય કારણ
 પણે જે પ્રવર્તન તેના સહકારભૂત જે પર્યાયાનુગત
 પરિણામી એવા જે સ્વભાવ તે વિશેષ સ્વભાવ છે.

જીવ દ્રવ્યમાં જ્ઞાયકતા કર્તૃતા ભોક્તૃતા
 ગ્રાહકતા આદિ અનંત વિશેષ સ્વભાવ છે, તેમજ
 ધર્માસ્તિકાયમાં ગમન સહકારતાદિ, અધર્માસ્તિકાય-
 માં સ્થિતિ સહકારાદિ, આકાશાસ્તિકાયમાં અવગાહ-
 દાનાદિ, પુદ્ગલાસ્તિકાયમાં પૂરણગતનાદિ, એમ

पंचास्तिकायमां अनंत विशेष स्वभाव छे.

बली हे भगवंत ! आप स्वतंत्रपणे पोताना ज्ञानादिक कार्यना हमेशां कर्त्ता छो माटे आप परमेश्वर छो कारणके जीव द्रव्य शिवाय अन्य कोई पण द्रव्यमां कर्त्तापणुं नथी (कर्तृत्वं जीवस्य ना न्येषाम्) कारण के “गुण सकल प्रदेशो हो के निज निज कार्य करे, समुदाय प्रवर्त्ते हो के कर्त्ता भाव धरे” आपना सकल प्रदेशो रहेला अनंत गुणो पोत पोतानुं कार्य करेछे पण ते सर्वे प्रदेशो समुदाय मलीने एकठी प्रवृत्ति करेछे माटे आप स्वतंत्र कर्त्ता छो ॥ २ ॥

जड द्रव्य चतुष्के हो के कर्त्ता भाव नहि, ॥
 सर्व प्रदेशो हो, के वृत्ति विभिन्न कही ॥
 चेतन द्रव्यने हो, के सकल प्रदेश मील ॥
 गुणवर्त्तना वर्त्ते हो, के वस्तुने सहज बले ॥ ३ ॥

अर्थ:-पण हे भगवंत ! जडद्रव्य चतुष्कमां कर्त्ता भाव ठरी शकतो नथी, कारणके जो के ते जड द्रव्यना धर्म प्रदेशो प्रदेशो वर्त्ते छे परंतु सर्वे

प्रदेशोनुं एक समुदायीपणे काय प्रवर्त्तन नथी, भिन्न भिन्न प्रदेशे भिन्न कार्य होई शके छे. जेम धर्मास्ति-काय कोई प्रदेश वडे अमुक पुद्गलने चलनसहायी थाय छे अने तेथी बीजा प्रदेशे बीजा पुद्गलने चलनसहायी थाय छे एम भिन्न प्रदेशे भिन्न वृत्ति होवाने लीधे जड द्रव्यमां कर्त्तापणुं ठरी शकतुं नथी.

पण हे भगवंत ! जीव द्रव्यनो सहज स्वभाव एवो छे के तेना ज्ञान दर्शनादि सर्वे गुणोना अवि-भाग पर्याय दरेक प्रदेशे छे, ते सर्वे प्रदेशना गुणा-विभाग एक समुदाये आचीर्भावे थई कार्य करे अर्थात् एक कार्ये परिणमवामां सर्वे प्रदेशना गुणा-विभाग सामर्थ्य पणे परिणमे, कोई पण प्रदेशना गुणाविभाग तें कार्यमां जोडाया शिवाय रहे नहीं, एम जीव द्रव्यना सर्वे प्रदेश मली एक समुदायि पणे एक कार्ये परिणमे छे. ॥ ३ ॥

शंकर सहकारी हो, के सहजे गुण वरते ॥
द्रव्यादिक परिणति हो, के भावे अनुसरते ॥
दानादिक लब्धि हो, के न हुवे सहाय
विना ॥ सहकार अंकपे हो, के गुणनी वृत्ति
यना ॥ ४ ॥

अर्थ:-एम दरेक सर्वे प्रदेशना गुणाविभागो एकत्र एक बीजाने सहकारीपणे सदा परिणमे, वली द्रव्य क्षेत्र कालनी प्रवृत्ति ते द्रव्यना परम-भावनने अनुसारै वर्त्ते छे, जेम जीव द्रव्यनो भाव चैतन्यता छे माटे चैतन्य गुण पर्यायनो एक पिंड ते जीव द्रव्य छे, अने चैतन्य गुणने रहेवानुं असंख्यात प्रदेशमय स्थानक ते जीव द्रव्यनुं क्षेत्र छे अने चैतन्य गुण पर्यायनी प्रवृत्ति ते जीव द्रव्यनो काल छे यद्युक्तं-“ गुण समुदाओ दव्वं, खित्तं ओगाह वट्टणा कालो ॥ गुण पज्जाय पवत्ति, भावो नियवत्थु धम्मो सो ॥ ” दान लाभ भोगादि लब्धीओ ते वीर्य गुणनी सहाय विना वर्त्ती शके नहीं पण हे भगवंत ! आपनुं वीर्य क्षायिकपणे होवाथी गुण वृत्तिना समूहने अकंपणणे सहकारी थई शके छे तेथी आप हमेशां अबंध तथा परमोत्कृष्ट अवस्थामां वर्त्ती छो, कारण के चलइ स फंदई ” ॥ ४ ॥

॥ पर्याय अनंता हो, के जे एक कार्यपणे ॥
वरते तेहने हो, के जिनवर गुण पभणे ॥

ज्ञानादिक गुणनी हो, के वर्त्तना जीव प्रते ॥

धर्मादिक द्रव्यने हो, के सहकारे करते ॥५॥

अर्थ:-त्रिलोक पूज्य श्री जिनेश्वर देव एम कहे छे के एक कार्य पणे परिणमनारा अनन्ता छती पर्यायनो समुदाय ते गुण छे. जेस जाणवारूप सामर्थ्य छे जेमां एवा अविभागी पर्यायनो समुदाय ते ज्ञान गुण, देखवारूप सामर्थ्य छे जेमां एवा अविभाग पर्यायनो समुदाय ते दर्शन गुण, परिणामालंबन रूप कार्य सामर्थ्य छे जेमां एवा अविभागी पर्यायनो समुदाय ते वीर्यगुण, विगेरे एम दरेक द्रव्यना प्रति प्रदेशे पोतपोतानु एक कार्य करवानुं सामर्थ्य धरनारा अनन्ता अविभागरूप पर्यायनो समुदाय ते गुण छे. जीवद्रव्यना दरेक प्रदेशे जाणवा रूप कार्य करवानुं सामर्थ्य धरनारा अनन्ता अविभाग पर्याय छे तेनो समुदाय ते ज्ञान गुण. एम ज्ञानादि अनन्त गुणनी वर्त्तना जीव द्रव्यमां छे. यद्युक्तं-नय चक्र सारे-“ तत्रैकस्मिन् द्रव्ये प्रति प्रदेशे स्व स्व एक कार्य करण सामर्थ्य रूपा अनन्ता अविभाग रूप पर्याया स्तेषां समुदायो गुणः भिन्न कार्य क-

रणे सामर्थ्यरूपा भिन्न गुणस्य पर्यायाः एवं
 गुणा अप्यनन्ताः प्रतिगुणं प्रतिदेशं पर्याया
 अविभाग रूपाः अनन्ता स्तुल्याः प्रायीइति ते
 चास्ति रूपाः प्रति वस्तुनि अनन्ता स्ततो नंत
 गुणाः सामर्थ्य पर्यायाः ” अने धर्मादिक जड
 द्रव्यमां ज्ञान गुणथी अतिरिक्त चलनसहकारादि
 गुणो वर्त्ते छे ॥ ५ ॥

ग्राहक व्यापकता हो, के प्रभु तुम धर्म
 रमी ॥ आत्म अनुभवथी हो, के परिणति
 अन्य वमी ॥ तुज शक्ति अनन्ती हो, के
 गातांनै ध्यातां ॥ मुज शक्ति विकासन हो,
 के थाये गुण रमतां । ६ ॥

अर्थः—हे प्रभु ! भेदविज्ञाननी पूर्णता वडे आप
 निरंतर ज्ञानादिक शुद्धात्म गुणना ग्राहक छो. तेथी
 अतिरिक्त विषय कषायने ग्रहण करवाथी आप
 मुक्त थया छो, तेमज आपनी व्यापकता पण ज्ञाना-
 दिक शुद्धात्म गुणमांज निरंतर व्यापे छे पण विषय
 कषायमां कदापि काले व्यापे नहि तेथी आप सदा

परभावथी अव्यास छो तथा नित्य शाश्वत स्वाधीन
 अने एकांतिक सहज सुख पिंड शुद्धात्म द्रव्यनी
 अनुभूतिनो निरंतर आस्वाद लेनारा तथा तेमांज
 विलासी थह पौद्गलीक विभूतीनुं कर्त्तापणुं भोक्ता-
 पणुं तथा रमणपणुं वमननी पेठे सर्वथा प्रकारे तजी
 दीधुं कारणके शुद्धात्म अनुभवरूप अमृतपानमां
 मग्न पुरुष, पौद्गलीक विषय कषायरूप हालाहल
 विष पीवाने केम इच्छे ? हे प्रभु ! “ अजडत्वा-
 त्तिका चितिशक्तिः; अनाकारोपयोगमयी दृशि-
 शक्तिः; साकारोपयोगमयी ज्ञानशक्तिः, अना-
 कुलत्व लक्षणा सुखशक्तिः, स्वरूप निर्वर्तन
 सामर्थ्यरूपा वीर्यशक्तिः, अखण्डित प्रताप
 स्वातंत्र्य शालित्वलक्षणा प्रभुत्वशक्तिः, क्रमा-
 क्रमवृत्ति वृत्तलक्षणोत्पादं व्यय ध्रुवत्वशक्तिः”
 तथा कर्तृत्वशक्ति, भोक्तृत्वशक्ति, परिणामशक्ति,
 स्वधर्म ग्राहकत्वशक्ति, स्वधर्म व्यापकत्वशक्ति,
 तत्त्वशक्ति, एकत्वशक्ति, अनेकत्वशक्ति, कारण-
 शक्ति, संप्रदानशक्ति, अपादानशक्ति, अधि-
 करणशक्ति, संबंधशक्ति, ए आदि अनंतशक्ति
 आपमां, समवाय संबंधे रहेली छे ते शक्तिओनुं

स्मरण तथा ध्यान करना तथा शुद्धात्मगुणमां रक्षण
करना सत्तागते रहेली आप समान बाहरी सर्वे
शक्तिओ प्रगट थाय, सहज शिवलक्ष्मीनी प्राप्ति
थाय ॥ ६ ॥

इम निजगुण भोगी हो, के स्वामी भुजंग
सुदा ॥ जे नित वंदे हो, के ते नर धन्य
सदा ॥ देवचंद्र प्रभुनी हो, के पुण्यभक्ति
सधे ॥ आत्म अनुभवनी हो, के नित नित
शक्ति वधे ॥ ७ ॥

अर्थ:-एम शुद्धात्म गुण पर्यायने निरंतर भो-
गवनारा परमानंद समूह हे श्री भुजंग स्वामी !
पवित्र भाव वडे जे आपनुं नित्यवदन स्मरणादि
करे छे तेज पुरुषो आ जगत्त्रयमां धन्य छे ! तेज
पुरुषो स्तुति पात्र छे, तेज पुरुषो कृतार्थ छे, हे
देवाधिदेव ! आपनी भक्ति महत्पुण्यना योगेज
साधी शकाय छे वली आपनीज भक्तिना पसाये
धीजना चंद्रमानी पेठे आत्म अनुभवनी शक्ति

दिन प्रतिदिन वृद्धिगत थाय, आखरे पूर्णानंदनी
प्राप्ति थाय ॥ ७ ॥

॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ पंचदशम श्री ईश्वरदेव जिन स्तवनम् ॥

॥ काल अनंतानंत ए देशी ॥

सेवो ईश्वर देव, जिणे ईश्वरता हो, निज
अद्भुत वरी; तीरोभावनी शक्ति, आवी-
र्भावे हो, सहु प्रगट करी ॥ १ ॥

अर्थ:-महाविदेहमां विहरमान हे श्री ईश्वर-
देव ! आपे सर्व जगत् त्रयने आश्चर्य तथा परमा-
नंद पमाडे एवी ईश्वरता प्रगट-संप्राप्त करी छे. ते
ईश्वरता केवी छे-पोताना शुद्ध गुण पर्यायेमां वरते
छे तेथी पूर्ण पवित्र स्वाधीन तथा अविनश्वर छे.
परद्रव्यना रागधी रहित होवाधी राग द्वेष भय तथा
कामनाधी रहित छे माटे अत्यंत सुख समूह रूप
छे. परमानंदमय छे.

अनादि विभावने लीधे आत्मा राग द्वेष रूप
अशुद्ध भावे परिणमी ज्ञानावरणादि अनेक प्रकारना
कर्म बंधन वडे पोतानी ज्ञानादि अनंत विशेष

शक्तिओने आच्छादित करे छे, पोताना स्वाभाविक परमानंदथी विमुख रहे छे पण हे परमेश्वर ! आपे पोताना आत्मानुं तथा पुद्गलादि परद्रव्यनुं स्वरूप यथार्थ ओलखी पोताना स्वरूपने सुख-निधान जाणी तेना रसिया थई सम्यक्पराक्रम आदरी परकर्तृता, परभोक्तृता, परग्राहकता, परव्यापकता, पररमणता विगेरे अनंत विभावनी परिस्त्याग करी, शुक्लध्याननी तीव्र अग्नि बडे ज्ञानावरणादिकर्ममलने भस्मीभूत करी, शुद्ध सुवर्ण समान परम प्रकाशमान् अनंत परमानंदमय पोतानी ज्ञानादि सर्व शक्तिओ “आवीर्भावे प्रगट करी” प्रगट, निरावरण स्वकार्य प्रयुक्त करी राग द्वेष मोह विगेरे नाश करी, सर्व दूषण रहित स्वसत्तामां विराजमान रहि पोताना ज्ञानादि शुद्ध अनंत गुणोनी ईश्वरता निष्कण्टकपणे भोगवो छो. तेथी हे परमेश्वर ! आपमां साची ईश्वरता जोई परमाह्लादित थई पवित्र विनय युक्त आपनी द्रव्यभावथी सेवा करीए. द्रव्य भावसेवानुंस्वरूप-
“द्रव्यसेव वंदन नमनादिक, अर्चन वली गुण ग्रामोजी । भाव अभेद थवानी ईहा, परभावे निःकामीजी ” ॥

अर्थ:-सर्व परभावनी कामना रहित जिने-
श्वरना पवित्र गुणोमां बहु सन्मान धरी ते समान
पवित्र गुणो प्रगट करी अरेहंत समान पोतानुं
परमात्म-पद साधवुं ते भावसेवा छे. तथा ते
भावसेवाना कारणरूप, भावसेवाने प्रशस्त, परम-
पूज्य श्री जिनेश्वरना पवित्र गुणोनुं स्मरण तथा
गान करवुं तथा ते जिनेश्वरनी परम पवित्र ज्ञान
मूर्तिने वंदन नमनादि करवुं ते द्रव्यसेवा छे ॥ १ ॥

अस्तित्वादिक धर्म, निरमल भाव हो सहुने
सर्वदा ॥ नित्यत्वादि स्वभाव, ते परिणामी
हो जड चेतन सदा ॥ २ ॥

अर्थ:-अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व,
अगुरुलघुत्व तथा सत्त्व ए छ मूल सामान्यस्वभाव
सर्वे द्रव्यमां सदाकाल निरावरणपणे वर्त्ते छे तथा
सर्वे जड तथा चेतन द्रव्यो नित्यत्वादि स्वभावे
निरंतर परिणमे छे. माटे ए सामान्यस्वभावनी
निरावरणता वडे तथा साधारणधर्मना परिणाम
वडे तो हे ईश्वरदेव ? आपने परमेश्वरपणानी पदवी
प्राप्त थई शके नहि पण ॥ २ ॥

कर्ता भोक्ता भाव, कारक ग्राहक हो ज्ञान

चारित्रिता ॥ गुण पर्याय अनंत, पाम्या
तुमचा हो पूर्ण पवित्रता ॥ ३ ॥

अर्थ:-कर्त्तापणुं, भोक्तापणुं, कारकपणुं, ग्राहक-
पणुं, ज्ञान, चारित्र, विगेरे अनंत गुणपर्याय ते पूर्ण
पवित्र थया छे, सदाकाल पूर्ण पवित्र पणे वर्त्ते छे,
ए कारणमाटे आप्तां परमेश्वर पदनी प्रतीत थाय
छे. अनादि अज्ञान वशे जीव परभावना कर्त्ता बने
छे अर्थात् में घर बनाव्युं, में नगर बनाव्युं, में
अमुक पदार्थने सुवर्ण बनाव्युं, अमुक पदार्थने
सुगंध बनाव्यो, अमुक पदार्थने सरस रसवालो
बनाव्यो, अमुक पदार्थने मनोहर स्पर्शवालो बना-
व्यो, विगेरे परभावना कर्त्तापणाना अभिमान वडे
ज्ञानावरणादि कर्मनो कर्त्ता बने छे. एम द्रव्यकर्म,
नोकर्मादिकनो कर्त्ता बनी पोताना शुद्ध ज्ञानादि
परिणामे परिणमवा रूप शुद्ध कर्त्तापणाथी वि मुख
रहे छे. पण ज्यारे सम्यक् ज्ञाननी प्राप्ति थाय,
तत्त्वरुची थाय, त्यारे परभावना कर्त्तापणाने तजी
स्वाभाविक कार्यमां पोतानी शक्तिने जोडे, शुद्ध-
ज्ञान दर्शन चारित्रनो कर्त्ता थाय, तेमज अज्ञान
वशे परभावना भोक्ता बने छे अर्थात् वर्ण गंध
रस स्पर्श स्त्री पुरुष वस्त्र खादिम स्वादिम पदार्थने

મેં ભોગવ્યા, હું ભોગવું છું, હું ભોગવીશ, એમ પર-
 ભાવના ભોક્તાપણાનું અભિમાન કરે છે. પણ જ્યારે
 સમ્યક્જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થાય ત્યારે પોતાના જ્ઞાનાદિ-
 શુદ્ધ ગુણ પર્યાયને પોતાના ભોગ ઉપભોગ જાણી તે
 ભોગવવાનો કામી થઈ તેના ભોગમાં મગ્ન થાય,
 પરભાવનું ભોક્તાપણું દૂર થાય. તેમજ અનાદિ
 વિભાવ વશે અશુદ્ધ કારક પ્રવૃત્તિમાં પોતાના આત્મ
 પરિણામ ને ધિર કરે છે, તેમજ પરભાવમાં વ્યાપક
 અર્થાત્ તલ્લીન-તદ્ગત થઈ રહે છે, તેમજ અશુદ્ધ
 જ્ઞાને પરિણમે છે અર્થાત્ દેહને આત્મતત્ત્વ જાણે છે,
 પૌદ્ગલીક ભોગને આત્મ ભોગ જાણે છે, પૌદ્ગલીક
 વિષય સુખમાં સુખ જાણે છે, શારીરિક વીર્યને
 આત્મવીર્ય જાણે છે, તેમજ પૌદ્ગલીક પરિણામમાં
 પોતાના આત્માને સ્થિત કરે છે, એમ અજ્ઞાન વશે
 સંસારી આત્મા પોતાના સર્વે કર્તૃત્વાદિ સ્વભાવને
 અશુદ્ધપણે પરિણમાવી અનેક પ્રકારનાં જ્ઞાનાવરણાદિ
 કર્મ બાંધી પોતાની જ્ઞાનાદિક અનંત સંપદાના
 હિંસ્વરપણાથી દૂર વર્તે છે. પણ હે હિંસ્વરદેવ ! આપે
 તે પોતાના સર્વે કર્તૃત્વાદિ સ્વભાવને શુદ્ધ ભાવે
 પરિણમાવ્યા-પૂર્ણ પવિત્ર થયા, હવે કોઈપણ કાલે
 અશુદ્ધતાય પરિણમશે નહિ માટે આપ ઓ એવંભૂત

नखे पोतानी ज्ञानादि निष्कलंक, अविनश्वर लक्ष्मी-
ना स्वामी-ईश्वर थया छो माटे आपज साचा
ईश्वर छो. ॥ ३ ॥

पूर्णानंद स्वरूप, भोगी अयोगी हो उपयोगी
सदा ॥ शक्ति सकल स्वाधीन, वरते प्रभुनी
हो जे न चले कदा ॥ ४ ॥

अर्थ:-वली हे भगवंत ! आप पूर्णानंद स्वरूप
छो. जगत्वासी जीवो धन स्त्री आदि ईष्ट पदार्थोनी
अधिकतर प्राप्ति वडे पोताने पूर्णानंद माने छे; पण
ते समुद्रना कल्लोलनी पेठे अवास्तविक छे, क्षण-
भंगूर छे, तृष्णा रूपी आगने बधारनार छे, तथा
स्वाभाविक संपदानो घात करनार छे. पण आपनी
ज्ञानादिक संपदा ते आपथी प्रदेशांतरे नथी तेथी
ते दूर थवानो कदापि भय नथी, वली एक क्षेत्रा-
वर्गाही होवाथी चाह दाहथी अतीत छे, वली ते
ज्ञानादि संपदा सहज स्वाभाविक छे माटे ते
राखवानो अथवा मेलववानो प्रयास करबो पडे
तेम नथी, वली ते आपने सहज संबंधे छे तथा
परद्रव्यथी अग्राह्य छे माटे तेने कोइ भांगी लुंटी

शक तेम नथी तेथी हे भगवत ! आपज पूर्णानंद
छो. यद्युक्तं—

श्लोकः—“ पूर्णता या परापाधेः सा याचितक
मंडनं । या तु स्वाभाविकी सैव जात्यरत्न-
विभानिभा ॥ अवास्तवी विकल्पैः स्यात्
पूर्णताब्धे रिवोर्मिभिः ॥ पूर्णानंदस्तु भग-
वांस्तिमितोदधिसन्निभः ॥ ”

तथा हे भगवंत ! आप स्वरूप भोगी छो; मात्र
ज्ञानदर्शन चारित्रादि पोताना शुद्ध निरूपाधिक
गुण पर्यायने भोगववा वाला छो तेथी आप सदा
निष्कंटक छो, तथा हे भगवंत ! आप मन वचन
तथा कार्यानी क्रियाना अकर्त्ता थया छो, योगनुं
ममत्व सर्वदा दूर कीधुं छे तेथी आप अयोगी छो,
वली आप सदा उपयोगी छो, ज्ञानोपयोगनो घात
करनार ज्ञानावरणीय कर्म तथा दर्शनोपयोगनो
घात करनार दर्शनावरणीय कर्म ए बंनेनो आपे
सत्ता सहित सर्वथा नाश कर्यो छे माटे हवे आपना
उपयोगने कोह पण स्वतन्त्रता पमाडनार नथी तेथी
आप सदा उपयोगी छो, सर्वे समय शुद्ध ज्ञान-
दर्शनोपयोगमां निरंतर वर्त्तो छो; एम हे भगवंत !

ज्ञानादि सर्वे शक्तिर्ब आप पोताने स्वाधीन कर्त्तावो
छो वली सर्वे कर्मनो अभाव करी आपे ते शक्तिर्ब
पोताने स्वाधीन करी छे माटे ते हवे आपथी कोइ
पण काले क्षणमात्र पण प्रदेशांतरे थनार नथी, सदा
काल आपमां अचल पणे रहेशे तेथी तज्जन्य आनंद-
मां आप सदा मग्न छो ॥ ४ ॥

दास विभाव अनंत, नासे प्रभुजी हो तुज
अवलंबने ॥ ज्ञानानंद महंत, तुज सेवाथी
हो सेवकने बने ॥ ५ ॥

अर्थ:-ज्यांसुधी आत्मा सचेत थयो नथी
त्यांसुधी अनादि विभाव स्वभाव होवाने लीधे
आत्मा सम्यक्ज्ञाने नहि परिणमतां अज्ञानपणे
परिणमे छे, सम्यक्दर्शनपणे नहि परिणमतां
मिथ्यादर्शनपणे परिणमे छे, स्वस्वरूपमां रमण
नहि करतां विषय कषायमां रमण करे छे पंडित-
भावे वीर्य नहि फोरवतां बाल दाघक भावे फोरवे
छे, सूक्ष्म तथा स्थूल क्रियानो रागी थई कर्म बंधन
करे छे शुद्ध स्वभावनो कर्त्ता नहि बनतां परभावनो
कर्त्ता बने छे, शुद्ध स्वभावनो भोक्ता नहि बनतां
परभावनो भोक्ता बने छे, शुद्ध ज्ञानादि गुणनो

ग्राहक नहि थतां परगुण पर्यायनो ग्राहक थाय छे,
 शुद्ध स्वभावमां नहि व्यापतां परभावमां व्यापे छे,
 एम ज्ञानादि अनंत गुणोने अशुद्धपणे परिणमाववा-
 रूप जे अनंत विभाव हुं सेवकने बलगेलो छे ते
 सैव विभाव हे परमेश्वर ! आपना अवलंबनवडे
 समूल नाश थशे. बली हे परमेश्वर ? आपनी पवित्र
 आज्ञामां विचरवारूप साची सेवाथी हुं सेवकने
 अखूद अचल अविनश्वर ज्ञानानंद प्राप्त थशे.
 ज्ञानानंद तेज साचो आनंद छे. विषय कषाय वडे
 मनायेलो आनंद ते अवास्तित्विक कल्पित तथा
 दुःख निदान छे ॥ ५ ॥

॥ धन्य ! धन्य ! ते जीव, प्रभु पद वंदी
 हो जे देशन सुणे ॥ ज्ञान क्रिया करे शुद्ध
 अनुभव योगे हो निज साधकपणे ॥ ६ ॥

अर्थ:- धन्य छे ते जीवोने ? धन्य छे ते जी-
 वोने ? के जे हे परमेश्वर ! आपना पवित्र चरण-
 कमलने वंदी सर्वे जीने सुखकारी संसार समुद्र-
 मांथी तारनार धर्मदेशना रुचि पूर्वक श्रवण करे
 महत्पुण्यना योगे आप श्रीनो दिव्यवाणीनो लाभ
 मले छे, रत्नचिंतामणी थी अस्यंत दुःप्राप्य अमूल्य

આપની દેશનાનો યથાર્થ રહસ્ય પામી પોતાના
 શુદ્ધાત્મ પદના સાધકપણે શુદ્ધાત્મ અનુભવ યોગે
 જ્ઞાનશુદ્ધિ તથા ક્રિયાશુદ્ધિ આદરે “જ્ઞાનશુદ્ધિ”—
 સંશય વિભ્રમ અને વિમોહ રહિત શુદ્ધ તત્ત્વનું જાણવું
 તે શુદ્ધજ્ઞાન છે. તે શુદ્ધજ્ઞાન સર્વ દોષથી રહિત
 કેવલજ્ઞાનદિવાકર શ્રી અરિહંતાદિના સદુપદેશદ્વારા
 તથા તેડંનાં પ્રરુપેલા સદાગમદ્વારા વાચના, પ્રિચ્છના,
 પર્યટના, અનુપેક્ષા તથા ધર્મકથા વિગેરે સાચા
 નિમિત્તથી શુદ્ધજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થાય છે માટે તેડું
 અતિચાર રહિત નિરંતર સેવન કરવું જેથી જ્ઞાનશુદ્ધિ
 થાય. “ક્રિયાશુદ્ધિ”—ક્રિયા બે પ્રકારે છે. બાહ્ય-
 ક્રિયા અને અંતરંગ ક્રિયા—શુદ્ધા હારાદિકનું ગ્રહણ
 કરવું તથા તથા ઇર્ષ્યા ભાષાદિ સમિતિનું પાલન
 કરવું વિગેરે બાહ્યક્રિયાશુદ્ધિ છે. તથા સ્વસમય
 પરસમય, સ્વદ્રવ્ય પરદ્રવ્યને ભિન્ન ભિન્ન યથાર્થ
 જાણવામાં વર્તવું તથા શુદ્ધાત્મ સ્વરૂપનો ઘાત
 કરનાર ક્રોધાદિક કષાયોનો ભેદ વિજ્ઞાન રૂપ
 તીક્ષ્ણ વાણવડે નાશ કરવો, તેઓનો આત્મ
 સત્તાભૂમિમાં પ્રવેશ થવા દેવો નહિ, એમ શુદ્ધાત્મ
 સ્વરૂપનું રક્ષણ કરવું, શુદ્ધાત્મ અનુભવમાં વિચરવું
 તે અંતરંગ ક્રિયાશુદ્ધિ છે. યદ્યુક્ત—દ્રવ્યાનુયોગ

तर्कणायाम् “बाह्य क्रिया आवस्यकादि रूपा
 बाहिर्योगोस्ति च पुनः अंतरंग क्रिया च स्व-
 समय परसमय परिज्ञान रूपा ज्ञानक्रिया अपरो
 द्रव्यानुयोगोस्ति ” अंतरंगक्रियाशुद्धिनी प्राप्ति
 माटेज बाह्यक्रियाशुद्धि आदरणीय, प्रशसनीय छे.
 संवर हेतु छे, पण अंतरंगक्रियाशुद्धिनी अपेक्षा वगरनी
 बाह्यक्रियाशुद्धि ते बंध हेतु छे.—“ शुद्धात्म अनु-
 भव विना बंध हेतु शुभ चाल ॥ आत्म
 परिणामे रम्या, एहज आस्त्रव पाल ॥ ”
 माटे बाह्यक्रियाशुद्धिमां प्रवृत्त थतां अंतरंगक्रिया-
 शुद्धिथी चूकवुं नहि अने अंतरंग क्रियाशुद्धिनी
 कारणरूप बाह्यक्रियाशुद्धिनी उपेक्षा करवी नहि माटे
 क्रियाशुद्धि तथा ज्ञानशुद्धि ए बनेनुं जिनाज्ञा प्रमाणे,
 पालन करतो स्याद्वादमां कुशल एवो ज्ञानी शुद्ध
 निरामय निर्वाणपदने प्राप्त थाय छे.

यद्युक्तः—वसंततिलका “स्याद्वाद कौशल
 सुनिश्चल संयमाभ्यां, यो भाव यत्प हरदः
 स्वामिहोपयुक्तः । ज्ञान क्रिया नय परस्पर,

તીવ્ર મૈત્રી, પાત્રી કૃતઃ શ્રયાતિ ભૂમિ મિમાં
સ એકઃ ।”

અર્થ:-જે પુરુષ સ્યાદ્દોદમાં કુશલ અર્થાત્
જીવાદિ તત્ત્વના શુદ્ધ જ્ઞાનપૂર્વક સમિતિ ગુપ્તિરૂપ
સંયમ આદરતો શુદ્ધાત્મ સ્વરૂપે નિરંતર ભાવે છે તે
જ્ઞાની પુરુષ જ્ઞાનનય અને ક્રિયાનયની તીવ્રમૈત્રીનું
પાત્ર થતો શુદ્ધાત્મભૂમિ-નિરવાણ પદને પ્રાપ્ત થાય
છે. ॥ ૬ ॥

વારવાર જિનરાજ તુજ પદ સેવા હો હોજો
નિરમલી ॥ તુજ શાસન અનુજાઈ, વાસન
ભાસન હો તત્ત્વ રમણ વલી ॥ ૭ ॥

અર્થ:-માટે સ્યાદ્દાદ વાણીના ઉપદેષ્ટા હે
પરમેશ્વર ! આ ભીષણ ભવસમુદ્રમાંથી તારવાને
સમર્થ એવી આપના ચરણ યુગ્મની સેવાનો નિરંતર
મને લાભ મલજો, વલી હે પરમેશ્વર ! આપના જ્ઞાન
ન્યાય અને દયા યુક્ત પવિત્ર શાસનની રુચી, જ્ઞાન
તથા શુદ્ધાત્મ તત્ત્વમાં રમણ એ સર્વે સદાકાલ માહરા
આત્મ પરિણામમાં વાસ કરજો ॥ ૭ ॥

શુદ્ધાત્મ નિજ ધર્મ, સત્ત્વિ અનુભવથી હો

સાધન સત્યતા ॥ દેવચન્દ્ર જિનચન્દ્ર, ભક્તિ
પસાયે હો હોશે વ્યક્તતા ॥ ૮ ॥

અર્થ:-શુદ્ધાત્મ ધર્મ (સમ્યક્દર્શન, સમ્યક્જ્ઞાન, સમ્યક્ચારિત્રાદિ) ની રુચી તથા અનુભવ જે વહે
થાય તે સર્વે સાધનો સત્ય છે, તથા હિતકારી છે.
શુદ્ધાત્મ ધર્મના અનુભવના હેતુરુપે આદરેલા સર્વે
બાહ્ય યોગરૂપ સાધનો સત્ય તથા હિતકારી છે. શ્રી
દેવચન્દ્ર મુનિ કહે છે કે હે જિનચન્દ્ર ! આપની
ભક્તિ પસાયે અર્થાત્ આપની આજ્ઞાનું સેવન કર-
વાથી (આણાકારી ભત્તો, આણા છેદ્દાઓ સો અભ-
ત્તોત્તો) મારી સર્વે શુદ્ધાત્મ સંપદા પ્રગટ થશે.
॥ ૮ ॥ (સંપૂર્ણ.)

॥ અથ શ્રી ષોડશમ નમિપ્રભ જિન સ્તવનમ્ ॥
અરજ અરજ સુણોને રૂઢા રાજોયા હો જી ॥ ૧ દેશી ॥
નમિપ્રભ નમિપ્રભ પ્રભુજી વિનવું હોજી,
પામી પામી વર પ્રસ્તાવ ॥ જાણોછો જાણોછો
વિણ વિનવે હો જી, તોપણ દાસ સ્વભાવ ॥
નમિપ્રભ૦ ॥ ૧ ॥

अर्थ:-हे नमिप्रभ ! आपने आ जगत्त्रयमां प्रभु अर्थात् मालिक जाणी अनि दुःप्राप्य आ मनुष्य भवरूप उत्तम अवसर पामी आप प्रति विनंती करुं छुं. हे देवाधिदेव ! आप अनंत ज्ञानयुक्त हुवाथी अमारा विनव्या वगर पण अमारी त्रणे कालनी सर्वे हकीकत प्रत्यज्ञ पणे जाणो छो तोपण सेवकनो स्वभाव छ के स्वामी आगल पोतानुं दुःख दूर थवा माटे विनंति करे ॥ १ ॥

हुं करता हुं करता परभावनो हो जी, भोक्ता पुद्गल रूप ॥ ग्राहक ग्राहक व्यापक एहनो हो जी, रच्यो जड भवभूष ॥ नमि-प्रभ० ॥ २ ॥

अर्थ:-हे परमेश्वर ! अनादि विभाव योग हुं माहरा शुद्धात्म स्वरूपथी विमुंख रही, स्वाभाविक कर्तृता, स्वाभाविक भोक्तृता, स्वाभाविक ग्राहकता, स्वाभाविक व्यापकता विगेरेथी चूकी माहराथी विपरीत, विलक्षण, रूप रस गंध स्पर्शादि गुणमय अचेतन जे पुद्गल द्रव्य तेने ग्रहण करवानो कासी तेने नवा नवा अनेक रूपे बनाववानो अभिमानी तेने भोगववानो इच्छक विगेरे थइ तेमांज निरंतर

व्यापी रह्यो, एम माहरा स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभावथी, विमुखपणे वर्त्ती जड संगते जडवत् वनी भवसमुद्रमां भ्रमण करवाने निरंतर उद्युक्त थइ रह्यो ॥ २ ॥

आतम आतम धर्म विसारियो हो जी, सेव्यो मिथ्यामाग ॥ आस्रव आस्रव बंधपणुं कर्युं हो जी, संवर निर्जरा त्याग, नमिप्रभ० ॥ ३ ॥

अर्थ:-राग द्वेषादि विभाव रहित स्वरूपने यथार्थ प्रत्यक्षपणे जाणवा रूप शुद्ध केवलज्ञान, निराकारोपयोग मधी केवलदर्शन, स्वरूपरमण-स्वरूप-स्थिरता मय सम्यक्चारित्र, ए आदिज्ञानानुयायी पणे वर्त्तना शुद्धात्म स्वभावो के जे आ संसार समुद्रमांथी मुक्त करी अव्याबाध स्वतंत्र अखूट परमानंद समूहनो निधान छे, ते शुद्धात्मधर्मने में न जाणया, न चिंतव्या, न आदर्श्या पण ते शुद्धात्मधर्मने मलीन करनार-दूषवनार, मिथ्यात्व अज्ञान, अने कषाय रूप मिथ्यामार्ग (विपरित आचरण) के जे घोर अनंत दुःखनुं निदान छे तेनुं में रुचि सहित सेवन करयुं. ए मिथ्यामार्गने सेवतां आस्रव तथा बंधनो कर्ता थयो. मोक्षमार्ग रूप संवर

નિર્જરાને આદરી શક્યો નહિ.

આસ્રવ—“ નિરાસ્રવ સંવિત્તિ વિલક્ષણ શુભાશુભ પરિણામેન શુભાશુભ કર્માગમન માસ્રવઃ ”—શુદ્ધાત્મ અનુભૂતિથી વિપરિત જે શુભાશુભ પરિણામ વડે જ્ઞાનાવરણીયાદિ કર્મનુ આગમન (આવવું) તે આસ્રવ છે. મિથ્યાત્વ અવિરતિ કષાયોદિ જો આત્માના અશુદ્ધ પરિણામ તે ભાવાસ્રવ છે અને તે ભાવાસ્રવના નિમિત્ત વડે જ્ઞાનાવરણીયાદિ કર્મ દલનું આવવું તે દ્રવ્યાસ્રવ છે.

બંધ—“બંધાર્તાત શુદ્ધાત્મોપલમ્ભ ભાવના વ્યુત જીવિસ્ય કર્મ પ્રદેશઃ સહસંશ્લેષો બન્ધઃ—મિથ્યાદર્શનાઽવિરતિ પ્રમાદ કષાય યોગા બન્ધ હેતવઃ ” મિથ્યાત્વ, અવિરતિ, પ્રમાદ, કષાય અને યોગ વડે પૂર્વ કર્મ સાથે નવા કર્મનો સંબંધ (દ્રઢ મલવું) તે બંધ છે. તે બંધ ચાર પ્રકારે છે—પ્રકૃતિ, સ્થિતિ, અનુભાગ અને પ્રદેશબંધ. તમાં યોગ વડે પ્રકૃતિબંધ તથા પ્રદેશબંધ થાય છે અને કષાય વડે સ્થિતિ બંધ તથા અનુભાગબંધ થાય છે.

વિશેષ વિવેચન—“ પિડિણીઅત્તણ નિન્હવ,

ઉવઘાય પડસ અંતરાણાં ॥ અઘ્ઘાસાયળયાણ,
આવરણ દુગં જિડં જયડ્ ” ॥

સમ્યક્જ્ઞાન સમ્યક્દર્શન તથા સમ્યક્જ્ઞાની
તથા સમ્યક્દર્શનીના પ્રતિકુલ આચરણથી, તથા
સમ્યક્જ્ઞાન તથા સમ્યક્દર્શને ઓલવવાથી, ગુસ્સે
બુપાવવાથી તથા તેડનો ઉપઘાત કરવાથી, તથા
સમ્યક્જ્ઞાન સમ્યક્દર્શન તથા તેના સ્વામી તથા
તેના કારણો ઉપર દેષ, માત્સર્ય, ઈર્ષ્યા કરવાથી
તથા જ્ઞાન દર્શનમાં અંતરાય કરવાથી, જ્ઞાન દર્શન
તથા તેના સ્વામીની આશાતના કરવાથી જ્ઞાનાવરણ
તથા દર્શનાવરણ કમેનો બંધ થાય છે.

ઉન્માર્ગની દેશનાથી તથા સન્માર્ગનો ઘાત
કરવાથી એ વિગેરે કારણોથી મિથ્યાત્વમોહનીયનો
બંધ થાય છે. ક્રોધાદિક કષાય તથા હાસ્યાદિ
નો કષાયના સેવનથી ચારિત્રમોહનો બંધ થાય છે.

મહા આરંભ પરિગ્રહમાં તલ્લીનતા, રૌદ્રધ્યાન
તથા ઉગ્રકષાય વાડે નરકાયુ નો બંધ થાય છે. ગૃહ
હૃદય, મૂર્ખતા, ધૂર્તતા તથા મિથ્યાત્વાદિ શલ્ય
વડે તિર્યંચ આયુનો બંધ થાય છે. અલ્પ કષાયતા,
દાનરુચિ તથા મધ્યમ ગુણ વડે મનુષ્ય આયુનો બંધ

थाय छे. सम्यक् दृष्ट्यादि अविरति गुण वडे देवायुनो बंध थाय छे.

बालतप, अकामनिर्जरा, सरलता. अनागारी-पणुं, विगेरे गुण वडे शुभनामकर्मनो बंध थाय छे. एथी विपरीत आतरण वडे अशुभ नामकर्मनो बंध थाय छे.

गुणद्रष्टी, मद रहितता, तत्त्व भणवा भणाववा उपर रुचि, जिन भक्तिमां सग्नता विगेरे गुण वडे उंचगोत्रनो बंध थाय छे. एथी विपरीत आचरण वडे नीचगोत्रनो बंध थाय छे.

गुर्वादिकनी भक्ति, क्षमा, करुणा, व्रत, संयम याग, कषाय, विजय, दान, शीलादिक धर्ममां दृढता विगेरे गुणोथी शातावेदनीयनो बंध थाय छे. तेथी विपरीत आचरण वडे अशातावेदनीयनो बंध थाय छे-शंका समकीत, तप, संयम, क्षमा विगेरे थी आस्रव बंध केम संभवे ? उत्तर “रत्नत्रय मिह हेतु-निर्वाणास्यैव भवति नान्यस्य ॥ आस्रवति यत्तु पुण्यं, शुभोपयोगस्य मपराध ॥” रत्नत्रय मात्र निर्वाण हेतु छे पण शुभाशुभ कर्मना हेतु नथी, देवादिक गतिना हेतु नथी. पण ज्यांसुधी

સંપૂર્ણ વીતરાગતા પ્રાપ્ત થઈ નથી, રત્નત્રયની અપૂર્ણતા છે ત્યાંસુધી સરાગતા વર્તે છે; તે સરાગતા-શુભેપયોગવડે કર્માસ્રવ થાય છે. જેમ ઘૃતમાં ચાલવાનો સ્વભાવ નથી પરંતુ ઘી સાથે રહેલી અગ્નિથી બલતાં ઘીથી બલ્યો એમ બોલાય છે. તેમ રત્નત્રયથી તો કર્મબંધ થતો નથી તથાપિ તે રત્નત્રય સાથે વર્તતા શુભેપયોગ (સરાગતા) વડે બંધ થાય છે. માટે ચોથા ગુણસ્થાનથી માંડી સંપૂર્ણ વીતરાગ ગુણસ્થાન સુધી જે જે અંશે રત્નત્રય હોય છે તે તે અંશે બંધ નથી જેટલા અંશે રાગ વર્તે છે તેટલા અંશે બંધ થાય છે.

એમ શુદ્ધોપયોગથી ચૂકી અશુદ્ધોપયોગમાં વર્તતાં મોક્ષમાર્ગરૂપ સંવર તથા નિર્જરા તત્ત્વનો અનાદર કર્યો.

સંવર—“ કર્માસ્રવ નિરોધ સમર્થ સ્વ સંવિત્તિ પરિણત જીવસ્ય શુભાશુભકર્માગમન સંવરણં સંવરઃ ” શુભાશુભ કર્માસ્રવનો નિરોધ તે સંવર છે. તે સંવરના હેતુ સમિતિ, ગુપ્તિ, પરિસહજય, જતિધર્મ, ભાવના તથા ચરિત્ર છે.

નિર્જરા—“ શુદ્ધોપયોગ ભાવના સામર્થ્યેન

नीरसीभूत कर्म पुद्गलानामेक देश गलनं
निर्जरा ॥ ” शुद्धोपयोग भावनाना सामर्थ्य वडे
नीरसीभूत कर्म पुद्गलानुं एकोदेश गलवु ते निर्ज-
रातेनो हेतु तप . “ तपसा निर्जरा च ” तथ,
सर्वे परद्रव्यनी इच्छानो निरोध ते तप छे “इच्छा
निरोध स्तपः” ते इच्छा निरोधरूप भावयुक्त तप

प्रकारे छे. अणसण “मूणोअरिया, विंत्ती
संखेवणं रसच्चाउ । काय किलेसो संलीणया
य षड्झो तवो होई ॥ पायच्छित्तं विणउ,
वेयावच्चं तहेव सड्झाउ । ज्ञाणं उस्सग्गोविय
अभिंभतगउं तवो होई ॥” एम छे प्रकारे बाह्य
तथा छे प्रकारे अभ्यंतर तप छ ॥ ३ ॥

जड चल जड चल कर्म जे देहने हो जी
जाण्युं आतम तत्त्व ॥ बहिरातमता बहि-
रातमता में ग्रही हो जी, चतुरंगे एकत्व ॥
नमिप्रभ० ॥ ४ ॥

अर्थः—जड अर्थात् अचेतन तथा चल अर्थात्
क्षणभंगूर पाणीना परपोटावत अस्थिर जे शरीर

तेने में आत्म तत्त्व जाणयुं एटले शरीरमांज अहं-
 बुद्धि करी शरीर तेज हुं लुं एम जाणयुं-शरीर वचन
 अने मननी क्रियाने में आत्मक्रिया जाणी योग-
 क्रियानुं ममत्व कयुं, एम में बहिरात्मभावनुं ग्रहण
 कयुं, आत्माथी अन्य जे अचेतन, जड, क्षणभंगूर
 शरीर तेमां अहंबुद्धि तथा धन, स्वजन, परिजना-
 दिकमां ममत्व बुद्धि करी आत्म स्वरूपथी अजाण
 रह्यो, माहरा स्वद्रव्य स्वक्षेत्र स्वकाल स्वभावने
 न जाण्या, पुद्गलना द्रव्य क्षेत्र, काल, भावमां
 अहं ममत्व मान्युं, जे भाव माहरा अस्तिधर्ममां
 नथी तेने में माहरा मान्या, आत्मप्रदेशथी बाहिरला
 परक्षेत्री भावने माहरा मान्या, अनंत ज्ञान, अनंत
 सुख, अनंत वीर्यथो रहित रह्यो. ॥ ४ ॥

केवल केवलज्ञान महोदधि हो जी, केवल-
 दंसण बुद्ध । वीरज वीरज अनंत स्वभावनो
 हो जी, चारित्त दायक शुद्ध । नमि० ॥ ५ ॥

अर्थ:-पण हे नमिप्रभ जगत्गुरु! आप तो
 बहिरात्मभावनो अत्यंत अभाव करी सर्वे द्रव्यने
 तेना त्रिकालवर्ती पर्यायो सहित एक समये
 प्रत्यक्षपणे जाणवा समर्थ एवं जे केवलज्ञान तेना

महोदधि अर्थात् महान् समुद्रनी पेठे अखूट निधान
 थया छो, तेमज सामान्य सत्ता अवलोकन रूप
 केवलदर्शनना तथा कोइ पण काले जरा पण हीण
 क्षीण न थाय एवुं सहज आत्मीय अनंत वीये
 प्रगट कयुं प्राप्त कयुं तथा क्रोधादिक सर्वे कषायोनो
 अत्यंत अभाव करी दायक चरित्र प्राप्त कयुं-प्रगट
 कयुं, अनंत आत्मीय परमानंदना भोक्ता थया ॥५॥

विश्रामी विश्रामी निज भावना हो जी,
 स्यादद्वादी अप्रमाद । परमात्म परमात्म
 प्रभु देखतां हो जी, भागी भ्रांति अनादि ॥
 नमि० ॥ ६ ॥

अर्थ:-तथा हे दयानिधान ! आप सर्वे परद्र-
 व्योना गुण पर्यायोमांथी रमण तथा आराम विश्रा-
 मनो त्याग करी पोताना केवलज्ञानादि शुद्ध
 स्वभावमां रमण करनारा स्थिरतापणे विराजमान
 थया छो वली हे भगवंत ! आप स्याद्वाद धर्मयुक्त
 सदा छो अर्थात् स्यात्अस्ति स्वभाववंत छो,
 स्यात्नास्ति स्वभाववंत छो स्यात्एक स्वभाववंत
 छो, स्यात्अनेक स्वभाववंत छो, स्यात्वक्तव्य
 स्वभाववंत छो, स्याद् अवक्तव्य स्वभाववंत छो,

स्याद् अनित्य स्वभाववंत छो, स्यात् अनित्य स्वभाव-
 वंत छो, स्यात् भव्य स्वभाववंत छो, स्यात् अभव्य
 स्वभाववंत छो, विगेरे अनंत स्याद्वाद धर्मयुक्त
 आप सदाकाल विद्यमान छो, तथा हे भगवंत !
 आप निरंतर अप्रमादभावमां वत्तो छो, क्षणमात्र
 पण पोताना शुद्धात्मधर्मथी च्युत तथी नथी, कारण
 के प्रमादना हेतु जे निद्रा विकथा विषय कषाय
 मद स्नेह विगेरे छे तेनो आपे सर्वथा नाश करेलो
 तेथी हे परमेश्वर ! आप परमात्म पदने संपूर्ण-
 पणे प्राप्त थया छो. एवा आप परमात्मानुं साची
 रीते दर्शन थतां माहरी अनादीकालनी अनात्मां
 आत्मपणानी भ्रांतिनो नाश थयो ॥ ६ ॥

जिन सम जिन सम सत्ता ओलखी हो जी,
 तसु प्राग्भावनी ईह ॥ अंतर अंतर आत-
 मता लही हो जी, पर परिणति निरीह ॥
 नमि० ॥ ७ ॥

अर्थ:-एम हे परमात्म प्रभु ! केवलज्ञान केवल-
 दर्शनादि अनंत शुद्धधर्मयुक्त आप स्वजातिनुं यथार्थ
 रीते दर्शन थतां में माहरी सत्ताने आप समान

जाणी, सहही, आपना केवलज्ञानादि शुद्धात्म धर्म मने रुच्या, ते प्रगट करवानी ईच्छा थई, परपरि-
णतिथी विरागभाव उपज्यो, अंतर आत्मताना प्राप्ति थई. ॥ ७ ॥

प्रतिछंदे प्रतिछंदे जिनराजने हो जी, करतां
साधक भाव । देवचंद्र देवचंद्र पद अनुभवे
हो जी, शुद्धात्म प्राग्भाव ॥ नमिप्रभ० ॥ ८ ॥

अथे:-स्तुति-कर्त्ता श्रीदेवचंद्र मुनि कहे छे-
हे भगवंत ! आप जेम मिथ्यात्व अविरति प्रमाद
कषाय योगनो त्याग करी परमात्म अवस्थाने प्राप्त
थया तेमज हुं जो आप प्रमाणे साधक भाव
आदरुं तो हुं पण निःसंदेह देवमां चंद्रमा समान
परमात्म पदनो आस्वाद लेनार भोगवनार थाउं;
शुद्धात्म धर्मनी संपूर्ण प्रगटता थाय. ॥ ८ ॥

॥ संपूर्ण ॥

अथ सप्तदशम श्री वीरसेन जिन स्तवनम् ॥

॥ लाळलदे मात मल्हार ॥ ए देशी ।

वीरसेन जगदीश, ताहगी परम जगीश,

અખજહો દીસેરે વીરજતા ત્રિભુવનથી ઘણીજી ॥ ૧ ॥

અર્થ:-અતુલ્ય આત્મીય વીરપણું (પ્રાક્રમ) સ્ફુરાયમાન કરી, અત્યંત દુર્જય દુષ્ટ પરિણામી મોહ શત્રુનો લીલા માત્રમાં નાશ કરી પોતાના નામને સાર્થપણે આ જગત્ ત્રયમાં પ્રસિદ્ધ કર્યું છે, એહવા હે ત્રિલોકપૂજ્ય દેવાધિદેવ શ્રી વીરસેન પ્રભુ ! તમે જ્ઞાનાવરણાદિ દુષ્ટ કર્મનો અત્યંત અભાવ કરી જ્ઞાનાદિ અનંત સર્વોત્કૃષ્ટ સંપદા પોતાને સ્વાધીન કરી છે, તેના ભોગ-આસ્વાદમાં નિરંતર મગ્નપણે પરમાનંદ ભોગવો છો. એવી આપની જ્ઞાનાદિ લક્ષ્મી આપથી અભેદપણે હાંવાથી કોઈ પણ તેને નાશ કરી શકે તેમ નથી તથા મોહરાજાને વશ પડેલા જગત્વાસી જીવોમાં એહવી જ્ઞાનાદિ અનંત લક્ષ્મીનું સ્વામિત્વ નથી તેથી આપની જગીશ અર્થાત્ સંપદા પરમ (સર્વોત્કૃષ્ટ) પદને વાસ્તવિક રીતે યોગ્ય છે.

વલી જગત્વાસી જીવોનું વીર્ય ક્ષાયોપશમિક ભાવે હોવાથી અલ્પ છે-અપૂર્ણ છે. અને વીર્યની અલ્પતા તથા ચલપણાને લીધે કર્મબંધ કરી પરાધિન

થાય છે, પણ હે ભગવંત ! આપે વીર્યાતરાયનો સમૂહ ક્ષય કરી, અલ્પ, અનંત, અચલ વીર્ય સંપૂર્ણ પણે પોતાને સ્વાધીન-પ્રગટ કરી લીધું છે; તેથી આ સર્વે જગત્વાસી જીવોમાં ઉત્કૃષ્ટ વીર્યવંત આપજ છો, એવા આપના દ્રઢ સ્થિર અને સતેજ વીર્ય સામે મોહરાજા દ્રષ્ટિ કરવાને પણ સમર્થ થઈ શકતો નથી તો નર્જીક આવવાની શી વાત ! માટે આપનીજ વીરજતા સર્વોપરી પદ ધરાવે છે ॥ ૧ ॥

અગાહારી અશરીર, અક્ષય અજય અતિ ધીર
આજ હો અવિનાશી અલેશી ધ્રુવ પ્રમુતા
વાળીજી ॥ ૨ ॥

અર્થ:-શરીર તે અનંત પુદ્ગલોના સમૂહ રૂપ અચેતન પદાર્થ છે, અને જીવ દ્રવ્ય પોતે એક તથા સચેતન પદાર્થ છે. તેથી જીવ દ્રવ્યથી શરીર તદન વિલક્ષણ, વસ્તુતઃ ભિન્ન પદાર્થ છે. તથાપિ અનાદિ અવિદ્યા વડે. ભેદ વિજ્ઞાનના અભાવે સંસારી આત્મા અનેક પ્રકારનાં કર્મ બાંધી, તે કર્મના ઉદય વડે પ્રાપ્ત થયેલા શરીરનેજ આત્મપણે જાણે છે સદહે છે, તેથી મનુષ્યના શરીરમાં રહેલા જીવને મનુષ્ય તથા દેવના શરીરમાં રહેલા જીવને દેવ

વિગેરે મનાય છે, અને તેથી સંસારી આત્મા સશરીરી બને છે. પણ હે ભગવંત ! આપ તો તે અવિદ્યાનો નાશ કરી સંપૂર્ણ ભેદ વિજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરી, સ્વપર દ્રવ્યને તદન ભિન્ન ભિન્ન જાણી શરીરમાંથી અહં મમત્વ ઉઠાવી શરીરથી સર્વથા અતીત થયા છો માટે હે પ્રભુ ! આપ અશરીરી છો.

શરીર અનંત પુદ્ગલોના સંયોગથી બનેલું હોવાથી સચલ તથા અસ્થિર છે, તેથી તેમાંથી કેટલાક પુદ્ગલો સ્થલાંતરે જતાં બીજા પુદ્ગલો આહારવાની (લેવાની) જરૂર પડે છે. માટે શરીર-ધારીને આહારની જરૂર પડે; પરંતુ હે ભગવત ! આપ તો અશરીરી છો માટે આપને આહારની જરૂર નથી. આપનું અંગ એકતા ધારી છે તેથી તેમાંથી કોઈ પણ કાલે રંચમાત્ર પણ ઘસાવાનો, ક્ષીણ થવાનો સંભવ નથી માટે નિઃસંદેહ આપ અણા-હારી છો.

અનેક પુદ્ગલોના મલવાથી જે વસ્તુ બનેલી હોય, તેજ ઘસાઈ. भागी શકે, પણ એક પુદ્ગલ પરમાણું આદિ જે જે પદાર્થમાં એકત્વ છે, અસંયોગી છે, તે તે પદાર્થ ઘસાઈ, भागी અથવા વિણશી શકે નહિ. માટે હે ભગવંત ! આપ અસંયોગી તથા

એકત્વ મહિત હોવાથી આપના આત્મ અંગમાં કોઈ પણ કાલે રંચમાત્ર પણ ક્ષય થવાનો સંભવ નથી, આપ અક્ષય પદમાં નિત્ય વિરાજમાન છો.

સર્વે દ્રવ્યો પોતાની સત્તાભૂમિમાં પોતાના ગુણ પર્યાયોના સ્વામી પણે વર્તવાને સદા કાલ સત્તાધારી છે. કોઈ પણ અન્ય દ્રવ્ય તેમાં પ્રવેશ કરવાનેજ સમર્થ નથી તો આપને જીતવાની શું વાત ? માટે હે ભગવંત ! આપ સદા અપરાજિત (અજય) છો.

વલી આપનું વીર્ય ક્ષાયિકભાવે હોવાથી આપ અત્યંત ધીર વીર છો. જેમ સૂર્યના પ્રતાપ સામે અંધકાર અત્યંત અભાવ પામે છે, તેમ આપ શ્રીના ક્ષાયિકવીર્ય જન્ય ધીર વીરતાના પ્રતાપથી આપના કર્મ શત્રુ અત્યંત અભાવને પ્રાપ્ત થઈ ગયા છે.

જો કે સર્વે દ્રવ્યો વસ્તુતઃ અવિનશ્વર છે. તથાપિ અનેક પુદ્ગલોથી વનેલા શરીરમાં ડ્યાંસુધી અહં મમત્વ બુદ્ધિ હોય છે ત્યાં સુધી તે શરીરનો નાશ થતાં આત્મા પોતાનો નાશ માની નાશપણના દુઃખને અનુભવે છે. પણ આપે પોતાના આત્મ અંગમાં આત્મપણું જાણ્યું સ્વીકાંયું, પોતાના એકત્વ પિંડના અનુભવી થયા. તેથી વિનાશપણાનો પ્રસંગ નાશ

थयो माटे आप निरंतर अविनश्वर पदमां परमानंद भोगवो छो.

लेश्याना हेतु कषाय, योग छे पण आप तो कषाय तेमज योगथी सर्वथा सुक्त थया छो माटे अलेशी छो.

बली हे भगवंत ! आपनी प्रभुता पण हवे ध्रुव (निश्चल) थई छे, संसारी जीवो अज्ञान वशे पोतानी सत्ताभूमिनी मर्यादा उलंघी परक्षेत्रे परगुण पर्यायोनी प्रभुता चाहे छे, एहवा अन्यायी पुरुषोनी कृत्रिम प्रभुता नाश पामे. परंतु आम न्याय शिरोमणी होवाथी परगुण पर्याय विषे पोतानी प्रभुता स्थापन करता नथी. निरंतर पोताना गुण पर्यायमां संतुष्ट छो. एम आपनी प्रभुता एक क्षेत्री, अप्रथग्भूत, तथा समवाय संबंधे होवाथी तेनो कोइ पण कारणे वियोग थवा संभव नथी माटे आपनी प्रभुता खरेखर ध्रुव निश्चल छे. आपनी प्रभुताने कोइ पण स्खलना करवा समर्थ थई शके तेम नथी. जे अन्यायी पुरुष पोतानुं घर छोडी पारके वेर चोरी करवा जाय तेनुं धन बीजा चोरो वडे पहेलां लूटाइ जाय, पण जे न्यायी पुरुष बीजाना. पदार्थनी आकांक्षा नहि राखतां पोतानी

विभूतिमां संतोष पणे निरंतर सचेत रहे तेनी
विभूति बीजो कोण लुंटी शके ? ॥ २ ॥

अतींद्रिय गत कोह, विगत माय मय लोह ॥
आज हो सोहेरे मोहे जग जनता भणीजी ॥ ३ ॥

अर्थ: हे भगवंत ! आप अतींद्रिय छो. पांच
ईंद्रियोना स्पर्श, रस, गंध, रूप, अने शब्द ए पांच
विषयो छे, माटे ईंद्रियोनो विषय फक्त पुद्गल छे,
परंतु आप अरूपी द्रव्य होवाथी ईंद्रिय विषयथी
तदन भिन्न छो तेथी आप ईंद्रियो वडे अगोचर
(अतींद्रिय) छो.

शरीरादि परद्रव्यमां जेने अहं ममत्व बुद्धि
होय तेने क्रोध उपजवानो संभव छे कारण के ते
शरीरादि अनित्य अने परक्षेत्री पदार्थो होवाथी
कोइ तेने बगाडे विणशावे अथवा वियोग करे
उपर तेने क्रोध उपजे छे. पण हे भगवंत ! आपतो
ते शरीरादि परद्रव्यनुं सर्वथा ममत्व तजी पोताना
नित्य, अभेद्य समवाय संबंधी ज्ञानादि गुणोमां
पोतानुं स्वामित्व अनुभवो छो. तेने कोइ पण अन्य
द्रव्य रंचमात्र पण हरकत करवा समर्थ नथी तो
आपना परिणाममां क्रोधने अवकाश क्यांथी ?

ક્ષમા સરોવરમાં નિરંતર ક્રીડા કરતા આપ
ભગવંતની પાસે ક્રોધાગ્નિ કેમ આવી શકે ?

વલી સર્પ જેવી અવિશ્વાસ્ય, જગત્માં ફમા-
વવાને અત્યંત બલવત્તર જાલ સમાન જે યાયા
પરિણતિ, તેને આપે તીક્ષ્ણ ધારવાલી આર્યવ રૂપી
તરવાર વડે હિન્ન ભિન્ન કરી નાંચી છે.

વલી જાતિ, લાભ, કુલ, વિદ્યા, અધિકાર
વિગેરે આઠ પ્રકારના મદરૂપ અતિશય દ્રઢ પર્વતને
આપશ્રીએ માર્દવરૂપ વજ્રદંડવડે ચૂરેચૂર કરી
નાંચ્યો છે.

તથા પરદ્રવ્યાદિને ગ્રહણ સંગ્રહ કરવારૂપ
મૂર્છાજલે ભરેલા અતિશય વિસ્તીર્ણ લોભસમુદ્રને
આપ નિસ્પૃહરૂપ વહાણમાં આરૂઢ થઈ સહજ લીલા
માત્રમાં તરી સંતોષ ભૂમિમાં વિરાજમાન થયા છો.

એમ આત્મગુણનો ઘાત કરનાર તથા ભવતરુના
મૂલ રૂપ ક્રાંધાદિક કષાયોને આપ ભગવંતે સમૂલ
ક્ષય કરી ક્ષમા, માર્દવ, આર્યવ, નિસ્પૃહતા વિગેરે
અનુપમ ગુણાલંકાર વડે આપ સર્વોત્તમ શોભાય-
માન છો, એવી આપની નિઃકષાય પરમ શાંત મુદ્રા
અવલોકતા જગદ્વાસી જી વો અત્યંત વિસ્મય
થાય છે. ॥ ૩ ॥

અમર અઁડ અરૂપ, પૂર્ણાનંદ સ્વરૂપ । આજ
હો ચિદ્રૂપે દીપે થિર સમતા ધનીજી ॥ ૪ ॥

અર્થ:—ઈન્દ્રિય, બલ, આયુ અને શ્વાસોશ્વાસ એ
ચાર જીવનાં વ્યવહાર પ્રાણ છે અને તે પ્રાણના
વિયોગે મરણ કહેવાય છે. પણ હે ભગવંત ! આપે
તે વ્યવહાર પ્રાણને પૌદ્ગલીક પર દ્રવ્યથી નિષ્પન્ન
સાક્ષાત્પણે જાણી તે પ્રાણ ઉપરથી સમસ્ત ઉઠાવી
પોતાના શુદ્ધ ચેતના પ્રાણવડે પોતાનું જીવન
સ્વિકાર્યું છે, તે ચેતના પ્રાણનો આપથી કોઈ પણ કાલે
વિયોગ થાય તેમ નથી, માટે આપ સદા અમર છો.

જે સંયોગી પદાર્થ હોય તેમાં સંધિ હોય, અને
જેમાં સંધિ હોય તે ભાંગી તૂટી શકે. પણ હે
ભગવંત ! આપ અસંયોગી શુદ્ધ એક તત્ત્વ છો, આપના
અંગમાં સંધિ નથી, તેથી આપ સદા અઁડ છો.

પરમ સ્વભાવને અનુયાયીપણે દ્રવ્યના સર્વે
ગુણો હોય છે. જીવ દ્રવ્યનો પરમ ગુણ ચેતનત્ત્વ છે
માટે જીવના સર્વે ગુણો ચેતનાનુગત હોય, એ
શિવાયના ગુણો જીવ દ્રવ્યમાં હોઈ શકે નહિ; માટે
રૂપ, રસ, ગંધાદિ ગુણો ચેતનાનુગત નથી માટે
રૂપાદિગુણોનો જીવ દ્રવ્યમાં અત્યંતાભાવ છે તેથી

हे भगवन्त ! आप सदा अरूपी छो.

जगत्वासी जीवो इष्ट पुद्गलोनी प्राप्ति, प्रभुता, तथा भोगवडे आनंद माने छे, पण ते परद्रव्यना तावे होवाथी जगत्जीवनो आनंद पराधीन, अवास्तविक, तथा क्षणभंगुर छे. पण हे भगवंत ! आप त मात्र पोताना गुण पर्यायोनीज प्रभुता, तथा भोगवडे आनंद मानो छो तेथी आपनो आनंद निरूपचरित पूर्ण तथा नित्यछे, एम् हे प्रभु ! आप पूर्णानंद स्वरूप छो.

तथा हे भगवंत ! आपना आत्मोद्य ज्ञान प्रकाश किरणो के जे सर्वे द्रव्यना त्रैकालिक परिणामथी अधिक छे, ते अनंत ज्ञान प्रकाश वडे आप निरंतर सर्वोपरी देदिप्यमान छो. आपना ज्ञान प्रकाशनं आ जगत्त्रयमां कोइ उपमान नथी.

वली हे भगवंत ! आप सर्वज्ञ तथा वीतराग होवाथी पूर्ण समतावंत छो. इष्टानिष्ट विकल्पथी सर्वथा मुक्त छो. ते समता क्षायिक भाव जन्य होवाथी हवे कोइपण काले आपना परिणाममां विसमतानो संभव नथी तेथी आप पूर्ण निश्चल समताना स्वामी छो. ॥ ४ ॥

वेद रहित अकषाय, शुद्ध सिद्ध असहाय ।

आज हो ध्याय के नायकने ध्येय पदे
ग्रह्योजी ॥ ५ ॥

अर्थ:-नपुंसक वेद, स्त्रीवेद, अने पुरुषवेद ए त्रणे
वेदनो नवमे गुणस्थाने तथा सर्वे कषायनो दशमा
गुणस्थानना अंतसुधीमां समूल क्षय करी दीधो छे,
तेथी हे भगवंत ! आप वेद तथा कषाय रहित छो,
तथा “स्वय परिणामे सिद्धा” ए सूत्र प्रमाणे
आपमां क्षायिक अने परिणामिक ए बे भावज वर्त्त
छे, सकल कर्मनो क्षय करी क्षायिकभाव पोतानु
शुद्धात्म स्वरूप संपूर्ण सिद्ध प्रगट कर्युं छे. अनंत-
ज्ञान, दर्शन, चारित्रना स्वामी थया छो. अने
पारिणामिक भाववडे अनंतकालसुधी आपना
ज्ञानादि गुणो असहायपणे निरंतर परिणमशे.
कोइपण काले कोइपण आपना ज्ञानादि परिणामने
स्खलना करी शकशे नहि माटे हे भगवंत ! आप
सादिअनंतकाल सुधी शुद्ध सिद्ध तथा असहाय छो.
उपर वर्णवेला गुणो सहित शुद्ध सिद्ध तथा
असहाय आप भगवंतने अवलोकी आप समान
सिद्धपदनो कामी हुं सेवक ध्याता, आप त्रिलोक-
पूज्य भगवंतने ध्येयपदे स्थापुं छुं, आपना पदनुं
ध्यान करुं छुं. ॥ ५ ॥

દાન લાભ નિજ ભોગ, શુદ્ધ સ્વગુણ ઉપ-
ભોગ । આજ હો અજોગી કર્તા ભોક્તા
પ્રભુ લહ્યોજી ॥ ૬ ॥

અર્થ:-અંતરાય કર્મના ક્ષયવડે હે ભગવંત !
આપમાં દાનાદિક લબ્ધિઝ ક્ષાયિક ભાવે વર્તે છે.

વીર્યગુણની સહાયવડે સર્વે ગુણો પરિણમે છે.
તેમ જ્ઞાનગુણના ઉપયોગ વિના વીર્યગુણ સ્ફુરાયમાન
થઈ શકે નહિ માટે વીર્યને જ્ઞાનગુણની સહાયતા છે
તથા શુદ્ધજ્ઞાન પરિણામને ચારિત્રનું સહાય છે. વહી
ચરિત્ર પરાચરણ રૂપ ન પરિણમે તે ચારિત્રને જ્ઞાન-
ગુણનો ઉપકાર છે. એમ એક ગુણને બીજા ગુણોની
સહાય છે, તે સહાયરૂપ દાનના કર્તા હે ભગવંત !
આપજ છો. વલી એબુ દાન આપ નિરંતર આપ્યાં
કરો છો માટે આપ અક્ષય દાતા છો. તથા તે
દાનના પ્રભાવવડે સર્વે ગુણો પોતાની શુદ્ધ પરિણતિ
પરિણમે છે, તે રૂપ લાભ લેનાર પણ આપજ છો.
એમ આપમાં દાતા પાત્ર અને દેયની અભેદતા છે.
એમ જ્ઞાનાદિ પરિણામ હમેશાં શુદ્ધપણે વર્તે છે.
તજ્જન્ય આનંદના વેદનારા છો તેથી જ્ઞાનાદિ
પર્યાયના આપ નિઃપ્રયાસ પણે હમેશાં ભોક્તા છો.

जे एकवारज भोगववा योग्य होय ते भोग,
अने जे अनेकवार भोगववा योग्य होय ते उपभोग
कहेवाय छे माटे ज्ञानादि शुद्धगुणो सहभावी
होबाथी हमेशा आपमां कायमपणे रहेनारा छे,
माटे आपमां ते गुणोनो उपभोग छे.

वली हे भगवंत ! मन, वचन, काया तथा
कोइ षण पुद्गलयोग विना आप परकर्तृत्व तथा
परभोक्तृत्व निवारी स्वभावना कर्ता भोक्ता
वन्या छो, एहवा आप त्रिलोकपूज्य प्रभुनुं मनं
कोइ महत् पुण्यना पसाये आज्ञे दर्शन मल्युं छे.
इंद्रिय गोचर वस्तुनुं दर्शन तो सहजे सर्वे पामी
शके.पण आप तो अरूपी निष्कर्म छो. आपना
दर्शननी प्राप्ति तो विरलानेज थई शके छे. ॥ ६ ॥

दारिसण ज्ञान चरित्र, सकल प्रदेश पवित्र ॥ आज
हो निर्मल निःसंगी अरिहा वंदियेजी ॥ ७ ॥

अर्थ:-आपनुं दर्शन थतां आपना सर्वे प्रदेश
अत्यंत निर्मल ज्ञान दर्शन अने चारित्र वडे परिपूर्ण
पवित्र जोइ तथा आपनेज जगत् त्रयमां निर्मल
तथा निःपरिग्रही अवलोकी कर्मशत्रुनो अंत आण-
नार आप श्री वीरसेन प्रभुने कर्म क्षय निमित्ते
त्रिकरण योगे बंदु छुं ॥ ७ ॥

देवचंद्र जिनचंद्र, पूर्णानंदनो वृंद ॥ आज
हो जिनवर सेवाथी चिर आनंदियेजी ॥ ८ ॥

अर्थ:-स्तुती कर्ता श्री देवचंद्र मुनि कहे के
सर्वे जिनोमां चंद्रमा समान वर प्रधान हे वीरसेन
प्रभु ! स्वाभाविक, निःप्रयासिक, अनंत आनंदना
समूह रूप आप जिनेश्वरनी आज्ञा सेवनरूप सेवाथी
हुं पण आप समान अनंत परमानंदने प्राप्त थइश;
शिवकमलानो चित्तासी थइश. ॥ ८ ॥

॥ अथ श्री अष्टादशम श्री महाभद्र
जिन स्तवनम् ॥

तद यमुनानुरे अति रलीयामणुं रे ॥ ए देशी ॥

महाभद्र जिनराज, राज राज विराजे हो
आज तुमारडोजी । क्षायिक वीर्य अनंत,
धर्म अभंगे हो तुं साहिब षडोजी ॥ हुं
बलिहारीरे श्री जिनवर तणीजी ॥ १ ॥

अर्थ:-सर्वे जिनोमां शिरोमणी परमकल्याणना
निधान हे श्री महाभद्र प्रभु ! आपनुं राज्य
सर्वोपरी समाधि तथा अनंत विभूति युक्त निर्वि-
घ्नताए अलौकिक रीते शोभे छे, आपनुं राज्य,

પરાક્રમ અજ્ઞય, અજય તથા અપરિસીમ છે, આપે
સર્વે કર્મશત્રુઓ સપરિવાર નાશ કર્યો છે, નિર્વંશ
કર્યો છે તેથી હવે કોઈપણ આપના રાજ્યમાં વિઘ્ન
કરી શકે તેમ નથી તથા આપની અનંત પર્યાયરૂપ
પ્રજા, અત્યંત સરલ પંડિત તથા સદાચરણી છે,
આપના ધર્મરૂપ કાયદાનો જરા પણ ભંગ કરે તેમ
નથી, આપના સર્વે ધર્મ કાયદા સંપૂર્ણ ન્યાય તથા
દયા યુક્ત હોવાથી સદા સર્વત્ર અભગ છે; એમ આપ
સર્વોત્તમ રાજાપણે વિરાજો છો, આપના રાજ્યની
વલિહારી છે. ॥ ૧ ॥

કર્તા ભોક્તા ભાવ, કારક કારણ હો તું
સ્વામી છતોજી । જ્ઞાનાનંદ પ્રધાન, સર્વ
વસ્તુનો હો ધર્મ પ્રકાશતોજી ॥ હું૦ ॥ ૨ ॥

અર્થ:-વલી તે પર્યાયરૂપ પ્રજાના ઉત્પન્ન કર્તા
પણ આપજ છો તથા તેના ઉપાદાન કારણરૂપ પણ
આપજ છો, તેના અધિકરણાદિ અન્ય કારકો પણ
આપમાંજ અભેદપણે શોભે છે તથા તે પ્રજાને સદા-
ચરણ યુક્ત-ન્યાયાનુસાર ગમન કરનાર નિરંખી
તજ્જન્ય રાજ્યાનંદના ભોક્તા પણ આપજ છો.

તે સર્વે પ્રજામાં શિરોમણી, આદરણીય તથા

अत्यंत बल्लभ एवा ज्ञानानंद स्वदेशी शेठने आपे प्रधान पदे स्थाप्यो छे, ते ज्ञान प्रधान सर्वे प्रजाथी संपूर्ण रीते माहितगार छे, जेना हृदयमां सर्वे प्रजाना भाव निरंतर प्रकाशित रहे छे बली ते ज्ञानानंद प्रधान निरंतर आप समीप हाजर रहे छे समयमात्र पण दूरवर्त्ती नहि थतां सर्वे प्रजानुं सदैव निरिक्षण तथा संरक्षण करे छे तथा कोइने पण त्रास नहि आपतां अस्थन्त हर्षपूर्वक न्यायानुसार वर्त्तावे छे, लेशमात्र पण न्यायातिक्रम थवा देतो नथी, एवो अद्भुत चातुर्य तथा विवेकवंत छे. ॥ २ ॥

सम्यकदर्शन मित्त, थिर, निर्धारे अविस्वादताजी । अव्यावधि समाधि, कौश अनश्वरे रे निज आनंदताजी ॥ हुं० ॥ ३ ॥ देश असंख्य प्रदेश, निज निज रीते रे गुण संपत्ति भर्याजी । चारित्र दुर्ग अभंग, आतम शक्ते हो परजय संचर्याजी ॥ हुं० ॥ ४ ॥

अर्थ:-अभिग्रहादिक पांच मिथ्यात्वने समूल नाश करी जेणे पोतानुं अंग निर्मल करेलुं छे तथा जे, सम, संवेग, निर्वेद, आस्तिक्यता अने

અનુકંપાદિ લક્ષણે યુક્ત, તથા કુશલતા, તીર્થસેવા, ગુરુભક્તિ, દૃઢતા તથા શાસનની અનુમોદના વિગેરે ભૂષણોથી ભૂષિત, શંકા, કાંક્ષાદિ સર્વે વિસંવાદ ટાલી અવિસંવાદતાને સ્થિર દૃઢપણે પોતાના હૃદયમાં ધારણ કરતો મહા વિનયવંત, આપના શાસનનો પ્રભાવક ગુણનિધાન એવો “ સમ્યક્દર્શન ” નામે મહાધીર વીર શુભટ આપનો મિત્ર છે, જેની સાથે આપનો સમ્યક્જ્ઞાન પ્રધાન પણ એટલી તિવ્ર મૈત્રી રાખે છે કે ક્ષણમાત્ર પણ તેથી છૂટો પડી શકતો નથી, જેડનાં અંગ માત્ર જૂદા જણાય છે પણ જીવ તો જાણે. એકજ છે ।

‘ એવા સમ્યક્દર્શન અને સમ્મજ્ઞાન છે મહાન્ પુરુષો આપનું રાજ્ય અત્યંત આતુર્ય, ન્યાય અને દયા પૂર્વક સર્વ પ્રજાને આનંદમાં રાખતા નિષ્કંટકપણે ચલાવે છે તથા અવ્યાવાધ સમાધિરૂપ અનેક પ્રકારના રત્નો-વડે આપના સ્વજાનાંને સદા પરિપૂર્ણ તથા અસ્ખૂટ રાખે છે, નિરંતર તજ્જન્ય પરમાનંદમાં આપુ વલિસો છો;

વલી આપ જ્યાંનું રાજ્ય કરો છો તે દેશ અસંખ્યાતે, પ્રદેશવાલો, જેન સીમામાં કોઈપણ વધઘટ કરી શકે નહીં એવો છે તથા જેના સર્વે પ્રદેશ

अनंता गुणाविभागरूप संपत्तिवडे तथा पर्यायरूप प्रजावडे ? भरेला छे.

एवा आपना अनुपम देशना, तथा तेमां वसती सरल प्रजाना रक्षण निमित्ते आपना मित्र तथा प्रधाने मली पोताना अत्यंत बल तथा चातुर्यवडे चारित्ररूप अत्यंत मजबूत तथा अभंग किल्लो बांध्यो छे. हे भगवंत ! एवा अलौकिक राज्यना आप स्वामी बन्या छो. एहवुं अलौकिक राज्य के जे मोहराजाए अनादिथी पोताना कदजे करा राख्युं हतुं तेने आपे केवा रीते प्राप्त कर्युं ? — “ आतम शक्त हो परजय संचर्याजी ” अन्यनी मदद शिवाय मात्र पोतानी आत्मशक्ति स्फुरायमान करी सम्यक्दर्शन मित्र, तथा सम्यक्ज्ञान प्रधानने सा राखी मोहशत्रुने पराभव करवा रणभूमिमां प्रवेश कर्यो ॥ ३ ॥ ४ ॥

धर्मक्षमादिक सैन्य, परिणति प्रभुताहो तुज बल आकराजी । तत्त्व सकल प्राग्भाव, सादि अनंतीर रीते प्रभु धर्योजा ॥ हुं० ॥ ५ ॥

अर्थः--मोहराजाना लश्करने शीघ्रमेव नाश करनारा “ क्षांति, मार्दव-आर्जव, मुक्ति, तव,

संयम, सत्य, शौच, अकिंचन, अने ब्रह्मचर्य,
 एवा अपरिमित बलवाला सैन्य सज्ज कर्या अने ते
 सर्वे सैन्योनी प्रभुता (सेनाधिपति पणुं) शुद्धोप
 योगरूप महा अजीन अने निडर शुभदने आपी
 एवा अत्यंत तीक्ष्ण बलवडे मोहराजाना लश्करनो
 नाश कर्यो. क्षांति सैन्ये क्राध लश्करनो, मादेवे
 मान लश्करनो, आर्यवे माया लश्करनो, मुक्ति
 लोभ-स्पृहा लश्करनो, तपे पराकांक्षानां, सयमे
 हिंसानो मत्ये असत्यतानां, शोचे मलिनतानो,
 अकिंचने पर संग्रहबुद्धिनां अने ब्रह्मचर्ये पररमणनां
 एम मोहराजाना सर्वे लश्करनो तथा परिवारनो
 नाश करी मोहराजाने प्राण रहित कर्यो अने
 सादिश्वनंत भांगे “ तत्त्व सकल प्राग्भाव ”
 पोतानो संपूर्ण राज्याधिकार प्रगट कर्यो ॥ ५ ॥

द्रव्य भाव अरि लेश, सकल निवारीरे
 साहिब अवतर्योजी । सहज स्वभाव विलास,
 भोगी उपभोगीरे ज्ञानगुणे भर्योजी ॥ हुं० । ६ ॥

अर्थ:-द्रव्य तथा भाव ए वने प्रकारना शत्रुनो
 समूल नाश करी आप शिवक्षेत्रना राजा बन्या छो

तथा पोताना नैरुपाधिक सहज स्वतंत्र भोगना विलासी थथा छोटथा आप ज्ञानानंदे परिपूर्ण सदा उपयोगवंत अर्थात् पोताना राज्यनी संभालमां निरंतर वर्त्तो छो ॥ ६ ॥

आचारिज उवझाय, साधक मुनिवर हो देश विरत धरुजी । आत्म सिद्धि अनंत, कारण रूपे रे योग क्षेमंकरुजी ॥ हुं० ॥७॥

अर्थ:-ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार अने वीर्याचार, ए पंचाचारमां वर्त्तनार तथा शिष्यजनने तेमां वर्त्तावनार (जोडनार) एहवां छत्रीशं गुणवान् श्रीआचार्य, तथा सूत्रपाठना दातार श्री उपाध्याय, तथा पोताना शुद्धात्म-तत्त्वने साधनार श्री मुनिराज, तथा पंचम गुणस्थानवर्त्ती देशव्रत धारीऊं, ए सर्वे आप महाराजनी आज्ञामां वर्त्तनार, पोताना मनवचन कायायोगने सयममां वर्त्तावनार होवाथी अनंत आत्म सिद्धि-रूप आप समान राज्य भोग पामवाना कारण छे अर्थात् तेऊ अल्पकालमां आप समान शिवभूमिनुं राज्य प्राप्त करशे तथा ते आचार्यादिकोने शिव-भूमिनुं राज्यप्राप्त करवामां आप भगवंत कारणरूपे

अर्थात् मददगार छे । । ७ ॥

सम्यग्दृष्टि जीव, आणारागी हो सहु जिन-
राजेनाजी । आतम साधन काज, सेवे पदकज
हो श्री महाराजनाजी ॥ हुं० ॥ ८ ॥

अर्थ:-बलीचतुर्थ गुणस्थानवर्ती उपशम क्षयो-
पशम वा क्षायिक सम्यग्दृष्टि सर्वे जीवो हे भगवंत
भवसमुद्रमां सेतु समान आपनी आज्ञानारागी छे,
आपनी आज्ञा पालवाने उत्सुक छे, तेउं पोतनुं
शुद्धात्म स्वरूप प्रगट करवा माटे आप भगवंतना
द्रव्यभाव चरणकमलने सन्माने छे ॥ ८ ॥

देवचन्द्र जिनचन्द्र, भगते राचो हो भवि
आतम रुचिजी । अव्यय अक्षय शुद्ध, संपत्ति
प्रगटे हो सत्तागत शुचिजी ॥ हुं० ॥ ९ ॥

अर्थ:-स्तुतिकर्ता श्रीदेवचंद्रमुनि मित्र भावनाना
आवेशमां पोताना मुखकमलमांथी परम कल्याण-
कारी उपदेश आपे छ के पोतानी शुद्धात्म सिद्धिना
इच्छु हे भव्यात्माउं ! शिवक्षेत्रना महाराजा श्री
जिनेंद्रभगवाननी आणा सेववामां लीन थाउं जेथी

तभारी सत्तामा रहेली पवित्र, अविनश्वर, अखूट,
अक्षय शुद्धात्म सपदा सहज प्रगट थडो ॥ ६ ॥

॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ एकोनविंशतिम श्री देवजसाजिने
स्तवनम् ॥

॥ महाविदेह क्षेत्र सोढामणु ॥ ए देशा ॥

देवजसा दरिसण करो, विघटे मोह विभाव
लाल रे ॥ प्रगटे शुद्ध भवभावना, आनंद
लहरी दाव लाल रे ॥ देवजसा ० १ १ ॥

अर्थ:- सर्वकर्म कलकथी रहित अत्यंत पवित्र
तथा अनंत ज्ञान दशन आदि अंतातीत अभ्यंतर
लक्ष्मियुक्त विलोकी चार निकायना देव तथा
इंद्रादिना समूह जेनी अनुपम यशवाद बोले के
एवा श्री देवजसा प्रभुनुं हे भव्यात्माओ ! दर्शन
करो, ते पृज्य भगवंतना स्वरूपनुं सम्यक् प्रकारे
अवलोकन करो, जेथी अनादिथी बलगेला अज्ञान
मिथ्यात्व ओह विगेरे दुःखदायक विभाव समस्त

नाश पामे तथा जेमांथी निरंतर परमानदनी
कल्लोलो उठ्यां करे एवो संवर पूरे भरेलो पवित्र
रत्ननिधान शुद्धात्म स्वभाव प्रगट थाय. एवा
आपना प्रत्यक्ष दर्शननी हे प्रभु ! मने अत्यंत
अभिलाषा छे परंतु ॥ १ ॥

स्वामी वसो पुष्करवरे जंबू भरते दास
लाल रे ॥ क्षेत्र विभेद घणो पड्यो, किम
पोहोंचे उल्लास लाल रे देव० ॥ २ ॥

अर्थ:-हे भगवंत ! आप तो पुष्कलावर्त
विजयमां विचरो छो अने आपना दर्शननो अभि-
लाषी सेवक हुं जंबुद्विपना भरतक्षेत्रमां वसु छुं
एम आपना तथा माहरा स्थानकने घणुं अंतर छे
तेथी आपना प्रत्यक्ष दर्शननी मनोकामना शीगीते
पूर्ण थाय

प्रकारांतरे-हे भगवंत ! ज्यां कर्म कलंकनो
रंच मात्र पण प्रवेश नथी एवा पवित्र ज्ञानादि
लक्ष्मीना निवासरूप विदेह अर्थात् देह रहित
अरूपी सिद्धक्षेत्र आप विराजमान छो अने हुं
सेवक कर्मकलंक वडे मलिन, अज्ञान अने मोह अंधकार
वडे भरपूर संसार क्षेत्रमां परिभ्रमण करुं छुं एम

आपना तथा माहरा क्षेत्रमां अत्यंत भेद (अंतर)
पढ्यो छे तो आपना प्रत्यक्ष दर्शननी माहरी
मनोकामना शीरीते पूर्ण थाय ? ॥ २ ॥

होवत जो तनु पांखडी, आवत नाथ हजूर
लालरे ॥ जो होती चित्त आंखडी, देखत
नित्य प्रभु नूर लालरे ॥ देव० ॥ ३ ।

अर्थ:-पण हे भगवंत ! जो माहरा शरीरे पांखो
होत तो हुंते पांखो वडे उडी पूरकलावर्त विजयमां
आप प्रभुना समीप आवी आपलुं दर्शन, वंदन
करत अथवा जो मने चित्त आंखडी अर्थात् ज्ञान
नेत्र अवधिदर्शन होत तो अहिंआं रहीने पण
चोत्रीश अतिशय अने अष्ट महा प्रातिहार्यादिक
विभूति सहित आपना तेजस्वी रूपने हमेशां,
निरख्यां करत.

प्रकारांतरे-हे भगवंत ! जो माहरा आत्म अंगे
सम्यक्चारित्र रूप प्रवल पांखो होत तो ते पंखे वडे
चिदाकाशमां उडतो-विहार करतो आप ज्यां वसोछो
एवा विदेह-देह रहित सिद्ध क्षेत्रमां आप समीप
आवी हाजर थात अथवा जो कदाच चित्त आंखडी
कहेतां केवलदर्शन होता तो आ क्षेत्रमां रहीने

पण अनंत ज्ञान दर्शन आदि अत्यंत अभ्यंतर
विभूति युक्त आपना लोकालोक प्रकाशक अनंत
प्रकाश युक्त महान् तेजस्वी स्वरूपने निरंतर
निरख्यां करत पण ते बंदे शक्तिओथी हुं रहित छुं
तो आपनुं दर्शन केस पासु ? ॥ ३ ॥

शासन भक्त जे सुरवरा, विनवुंशीष नमाय
लालरे ॥ कृपा करो मुज ऊपरे, तो जिन
वंदन लालरे ॥ देवजसा० ॥ ४ ॥

अर्थ:-ऊपर प्रमाणे माहरामां देवजसा प्रभुनुं
दर्शन पामवानी शक्ति नहि होवाथी जिनशासनना
भक्त हे महान् देवा ! हुं आपनी सहाय चाहुं छुं,
मस्तक नमावी विनति करुं छुं के जो आप माहरा
ऊपर कृपा करी जो अपना सामर्थ्य वढे देवजसा
प्रभु पासे मने लेई जाऊं तो ते प्रभुनां दर्शन
वंदननो मने लाभ मले .

प्रकारांतरे-ऊपर प्रमाणे सस्यक्चारित्ररूप पांखो
अथवा केवल दर्शनरूप आंखो मने नहीं होवाथी
देवजसा प्रभुनुं दर्शन वंदन प्राप्त करवामां जिन
शासन अर्थात् जिनेश्वरन आज्ञानुं पालन कर-
नारा तथा बीजाने तेमां जोडनारा हे सुरवरा
अर्थात् महान् आचार्यो हुं आपने मस्तक नमावी

अंतरंग बहु मन्मान (विनय) युक्त आपने
 विनंती करूं हूं के जो आप माहरा ऊपर कृपा
 करो, मने सम्यक् चारित्रमां जोड़ो तो हूं ते चारित्र
 रूप पांख वडे श्री देवजसा प्रभुनी समीप जई शकुं,
 ते प्रभुना प्रत्यक्ष दर्शननो मने लाभ मले ॥ ४ ॥

पूछूं पूर्व विराधना, शी कीधी ईणे जीव
 लाल रे ॥ अविरति मोह टले नहीं, दीठे
 आगम दीव लाल रे ॥ देवजसा० ॥ ५ ॥

अर्थ:-हे प्रभु ! आ माहरा जीवे पूर्वे आत्म
 धर्मनी केवा तीव्र विराधना करी छे के आत्म
 अनात्मनं स्वरूप यथार्थ प्रकाश करनार जिनागम-
 रूप दीपकनी प्राप्ति थया छता, पण पंचेंद्रियना
 विषय जे पुद्गल परिणाम ते ऊपर रागकूप अवि-
 रति तथा स्वपर जीवना द्रव्यभाव प्राण हणवारूप
 हिंसा, तथा क्रोधादिक कषाय तिगेरे आत्म भावने
 अत्यंत अप्रशस्त तथा दुःखदायक परिणाम हजु-
 सुधी टलता नथी ॥ ५ ॥

आत्म शुद्ध स्वभावन, बोधन शोधन काज
 लाल रे ॥ रत्नत्रयी प्राप्तितणो, हेतु कहो
 सहाज लाल रे ॥ देवजसा० ॥ ६ ॥

અર્થ:-કર્મ કલંકથી (સર્વ વિભાવથી) રહિત શુદ્ધાત્મ તત્ત્વનું સ્વરૂપ યથાર્થ પળે જે વડે જણાય તથા અનાદિથી વલગેલા મિથ્યાત્વ અજ્ઞાન કષા-યાદિ વિભાવનો સર્વથા અભાવથઈ જે વડે મહારો આત્મા કર્મ કલંકથી રહિત પરમ પવિત્ર થાય તે સમ્યક્જ્ઞાન સમ્યક્દર્શન સમ્યક્ચારિત્રરૂપ રત્નત્રયની પ્રાપ્તિ શીરીત થાય તે કરુણા કરી કહો ॥૬॥

તુજ સરિખો સાહિવ મિલ્યો, માંજે ભવ ભ્રમ
ટેવ લાલરે ॥ પુષ્ટાલંબન પ્રભૂ લહી, કોણ કરે
પર સેવ લાલરે ॥ દેવજસાં ॥ ૭ ॥

અર્થ:-સમસ્ત દૂષણોથી રહિત પરમ પવિત્ર અનંત ગુણનો નિધાન, લોકાલોક પ્રકાશક, રત્નત્રયની પ્રાપ્તિ કરાવી અનાદિથી લાગેલી ભવ ભ્રમણની દેવથી મુક્ત કરનાર, ભવ સમુદ્રથી તારવામાં પુષ્ટાલંબનરૂપ આપ ભગવંતનું દર્શન પામ્યા પછી અન્ય કુદેવાદિકનું કોણ સેવન કરે ! કલ્પવૃક્ષને ત્યાગી ધંતુરાને કોણ સેવે ॥ ૭ ॥

દીનદયાલ કૃપાલુઓ. નાથ ભવિક આધાર
લાલરે ॥ દેવચંદ્ર જિન સેવના, પરમામૃત
સુખકાર લાલરે ॥ દેવજસાં ॥ ૮ ॥

अर्थ:-संसारमां भ्रमण करता अनेक प्रकारना दुःख सहता ज्ञानादिक लक्ष्मी रहित दीन कंगाल जीवो ऊपर अत्यंत करुणा करी मोक्ष मार्गे दोरनार होवाथी हे प्रभु ! आपज दीन दयाल छो तथा कृपालुओ कहेतां कृपाना आलय (निधान) छो, दीन अनाथ जीवोना नाथ छो, संसार समुद्रमां डूबता मग्य जीवोने उद्धारवा माटे आप पुष्ट अवलंबन छो, सर्वे देवोमां चंद्रमा सामन हे देवजसा प्रभ ! आपनी सेवना सर्वोत्कृष्ट अमृत समान परमानंद दातार तथा शिव सुखनी करनार छे ॥ ८ ॥

॥ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ विंशति श्री अजितवीर्यजिन स्तवनम् ॥

अजितवीर्य जिन विचरतारे, मन मोहनारे लाल ॥ पुष्कर अर्द्ध विदेहरे, भवि मोहनारे लाल ॥ जंगम सुरतरु सारिखोरे, मन मोहनारे लाल ॥ सेवे धन्य धन्य तेहरे, भवि मोहनारे लाल ॥ १ ॥

अर्थ:-अतिशय दुर्जय मोहराजानो जेणे लीला मात्रमां समूल क्षय करीनांख्योछे, तथा जेनुं वीर्य हणवाने कोइ पण समर्थ नथी एहवा अतिशय निश्चल

અનંત વીર્યવંત, પુષ્કલાવર્ત વિદેહમાં વિચરતા હે
 શ્રી અજિતવીર્ય પ્રભુ ! જેમ કમલને સુગંધનું આવાસ
 જાણી અમર તેમાં મોહી રહે છે, તેન શુદ્ધાત્મ
 અનુભવ વડે भरपूर आपनी अस्थित शान्त मुद्रा
 विलोकी प्रशस्त राग वडे भव्य जीवोनुं चित्त
 आपमां मोहित रहे છે, एवी रीते आ त्रिलोकमां
 आप मनमोहन छो, तथा अज्ञानरूप अंधकार वडे
 आवृत थएला भव्य जीवोना हृदय कमलने विक-
 श्वर करनार छो, तथा कल्पवृक्ष तो स्थावर होवाथी
 हमेशां एकज ठेकाणे रही ईच्छित फल आपी शके
 છે तो पण ते पौद्गलीक तथा विनश्वर છે पण आप
 तो अनेक स्थले विहार करी कोई पण काले नाश
 अथवा विरस न थाय एहवुं स्वाधिन तथा सर्व
 कामना जेथी पूर्ण थाय एहवुं रत्नत्रयरूप फल
 भव्यजीवोने निरतर प्रदान करो छो माटे हें भगवंत !
 खरेखर आपज आ जगत्त्रयमां अद्वितीय कल्प
 वृक्ष छो. तेथी છે भगवंत ! જે प्राणीउ आपना
 चरणकमलની સેવામાં લીન છે તેડને ધન્ય છે ! વલી
 ધન્ય છે ! તેડને કે જે આ અપાર ભવસમુદ્રને
 गोपदनी पेठे सहज उलंघी जनारा છે. ॥ ૧ ॥

जिन गुण अमृत पानथी रे, मन ० । अमृत

ક્રિયા સુપસાયરે, ભવિ ૦ ॥ અમૃત ક્રિયા
અનુષ્ઠાનથી, મન ૦ । આતમ અમૃત થાયરે
॥ ભવિ ૦ ॥ ૨ ॥

અર્થ :- જિનેશ્વરના જ્ઞાનાદિ શુદ્ધ ગુણોનું
સેવન વહુમાનરૂપ અમૃતનું પાન કરવાથી અમૃત
ક્રિયા (અમૃતાનુષ્ઠાન) ની પ્રાપ્તિ થાય, અને
અમૃતાનુષ્ઠાન વડે સકલ મોહનો ક્ષય થઈ આત્મા
અજર અનર અવિનશ્વર શુદ્ધ સિદ્ધપદને પ્રાપ્ત થાય,
અને અન્ય જીવોને અમૃત સમાન ભવ રોગથી મુક્ત
કરવાનો હેતુ થાય. અનુષ્ઠાન પાંચ પ્રકારનાં છે--
વિષાનુષ્ઠાન, ગરલાનુષ્ઠાન, અનાનુષ્ઠાન તદ્દેતુ
અનુષ્ઠાન, અને અમૃતાનુષ્ઠાન.

વિષાનુષ્ઠાન-આહારોપધિ પૂજાર્થિ, પ્રભૃત્યા-
શંસયા કૃતં, શીઘ્રં સચ્ચિત્તહન્તૃત્વા દ્વિષાનુષ્ઠાન
મુચ્યતે ॥ અધ્યાત્મસાર પા. ૪૫૬

અર્થ:-મિષ્ટાન્ન ભોજનની લાલચે, વસ્ત્રાદિક
ઉપકરણની લાલચે, પૂજાની લાલચે, રિદ્ધિની
લાલચે જે તપ જપાદિ ક્રિયા કરે તે ક્રિયા ચિત્ત
શુદ્ધિની હણનારી છે તેથી તે વિષાનુષ્ઠાન કહેવાય
છે, આ ભવમાં પૌદ્ગલીક ભોગોની પ્રાપ્તિ થવાની

લાલચે ઈચ્છાએ જે તપાદિ અનુષ્ઠાન આદરવું તે વિષાનુષ્ઠાન છે.

ગરલાનુષ્ઠાન-દિવ્યભોગાભિલાષેણ, કાલાંતર
પરિક્ષયાત્ । સ્વાદિષ્ટ ફલ સંપૂર્ણે ગરાનુષ્ઠાન
મુચ્યતે ॥ યથા કુદ્રવ્ય સંયોગ, જનિતં, ગર
સંક્ષિતં । વિષં કાલાંતરે હન્તિ તથેદમપિ
તત્ત્વતઃ ॥

અધ્યાત્મ સાર પા૦ ૪૫૭

અર્થ:-પરભવે દેવ ઈંદ્રાદિકના દિવ્ય ભોગ મલે
પૌત્રી ઈચ્છા, લાલચવડે જે તપાદિ અનુષ્ઠાન આદ-
રવું તે ગરલાનુષ્ઠાન છે. જેમ ચંગડીચૂર્ણ પ્રમુખ
દ્રવ્યનાં સંયોગે પ્રગટ થતું વિષ તે ગરલ નામા વિષ
કાંદા, તે ઘણા દિવસ કષ્ટ પમાડી મારે છે; તેમ
ગરલાનુષ્ઠાન પણ અહિતકારી કુગતિ આદિઆપે છે.

અન્યોન્યાનુષ્ઠાન-પ્રણિધાનાયભાવેન કર્માન
ધ્યેવસાયિનઃ ॥ સંમૂર્છિમ પ્રવૃત્ત્યામ મનનુષ્ઠાન-
મુચ્યતે ॥ ડંઘ સંશ્રાત્રિ સામાન્યં, જ્ઞાનરૂપા-
નિબંધન । લોક સંજ્ઞા ચ નિર્દોષ સૂત્ર માર્ગા-
નપક્ષણી ॥ અધ્યાત્મસાર પા૦ ૪૫૭

अर्थः--सूत्र कथित निर्दोष मार्गनी अपेक्षा
 विना तथा शुद्ध प्रणिधानादिकने अभावे उपयोग
 शून्ये संसृद्धिमनी पेठे बीजाना देखादेखी जे क्रिया
 करवी तें अन्योन्यानुष्ठान जाणवुं-सूत्रनी शैली
 रहित पणे मतानुगतिक पणे ओघसंज्ञाए तथा लोक
 संज्ञाए जे करवुं ते अन्योन्यानुष्ठान छे ते उपयोग
 शून्य अर्थात् ज्ञान रहित होवाथी ते वडे सकाम
 निर्जरा थई शके नहि, आ विषादि त्रणे अनुष्ठानमां
 अशुद्ध क्रियानो आदर उपजे छे माटे आ त्रणे
 अनुष्ठान त्यागवा लायक छे.

यद्युक्तं सूत्रकृतांगे-“ जे अबुद्धा महाभागा,
 वीरा असमत्त दंसिणो । अशुद्धं तेसि परक्कनं,
 सफलं होई सव्वसो ॥ ”

अर्थः-व्याकरणादिक लोकिक अनेक शास्त्रने
 जाणनारा पण जैन सिद्धांतना शुद्ध तत्त्वज्ञानथी
 अजाण अर्थात् सम्यक्त्व परिज्ञानथी रहित
 होवाथी अबुध, एहवा पुरुषो जो के शूरवीर होय
 तथा त्यागादि गुण वडे लोकमां पूज्य गणता होय
 तथापि तेओनो दान, तप, नियम आदिकने विषे
 उद्यम पराक्रम ते सर्व अशुद्ध जाणवो. कारण के

તેઓનું તપાદિક સર્વે, અનુષ્ઠાન કર્મબંધના કારણ
 વિષે સફલ થાય એટલે નવા કર્મબંધનનું કારણ
 થઈ શકે નહિ; કારણ કે સકામ નિર્જરા તો
 સમ્યક્જ્ઞાનેજ થાય—“ જય બુદ્ધા મહાભાગા,
 વીરા સમ્મત્ત દંસિણો, સુદ્ધં તેસિં પરક્કંતં,
 અફલં હોઈ સવ્વસો, ॥

અર્થ:—જે સમ્યક્જ્ઞાન સમ્યક્દર્શન સહિત છે
 તેજ બુદ્ધ પુરુષ છે, જે ધૂંઝ્ય છે, જે સાચા શૂરવીર
 છે, અને તેઓનોજ તપાદિક અનુષ્ઠાનમાં ઉદ્યમ-પરા-
 કર્મ શુદ્ધ જાણવો, અને તેઓનું અનુષ્ઠાન નવાં કર્મ-
 બંધન અટકાવી શકે છે તથા સકામ નિર્જરાનો
 હેતુ છે.

તદ્દેતુ અનુષ્ઠાન—સદનુષ્ઠાન રાગેણ, તદ્દેતુ-
 માર્ગિગામિનાં । એ તદ્ધ ચરમાવર્તેન્નોભોગાવ્યો
 દેર્વિના ભવેત્ ॥ ધર્મયૌવનકાલોયં, ભવવાલ-
 દશા પરા ॥ અત્રસ્યાત્ સત્ક્રિયા રાગોઽન્યત્ર
 ચાસત્ ક્રિયાદરઃ ॥

અર્થ—ચરમપુદ્ગલ પરાવર્તે ધર્મના યૌવનકાલે
 બાલદશા દલે થકે માર્ગાનુસારી પુરુષ શુદ્ધાનુષ્ઠાનનાં

રાગ વડે ઉપયોગ સહિત જે કઈ ક્રિયા આદરે તે તદ્દેતુઅનુષ્ઠાન જાણવું.

અમૃતાનુષ્ઠાન-સહજો ભાવ ધર્મોહિ શુદ્ધ શ્રંદન ગંધવત્ ॥ એતદ્ગર્ભમનુષ્ઠાનમમૃતં સંપ્રચક્ષ્યતે ॥ જૈનીમાજ્ઞાં પુરસ્કૃત્ય, પ્રવૃત્તં ચિત્ત શુદ્ધિતઃ । સંવેગ ગર્ભમત્યંતમમૃતં તદ્વિદો વિદુઃ ॥

અર્થ:-સહજ ભાવધર્મ તે શુદ્ધ ચંદનની સુગંધ સમાન છે. અને તે ભાવધર્મ સહિત જે અનુષ્ઠાન તે અમૃતાનુષ્ઠાન છે. અત્યંત સંવેગ ગુણ સહિત ચિત્ત શુદ્ધિ જિનેશ્વરની આજ્ઞામાં વર્તવું તેને ગણ-ધરાદિક અમૃતાનુષ્ઠાન કહે છે તેજ મોહનો સંપૂર્ણ ક્ષય કરવા સમર્થ છે. ॥૨॥

પ્રીતિ ભક્તિ અનુષ્ઠાનથી રે ॥ મ૦ ॥ વચન અસંગી સેવરે ॥ ભવિ૦ ॥ કર્તા તન્મયતા લહેરે ॥ મ૦ ॥ પ્રભુ ભક્તિ નિત્યસેવરે ॥ ભવિ. ૧૩ ॥

અર્થ:-સર્વે પુદ્ગલ ભાવમાંથી પ્રીતિ ડઠાથી માત્ર એક જિનેશ્વરના સ્વાભાવિક પવિત્ર જ્ઞાનાદિ ગુણોમાં અત્યંત પ્રીતિ ભાવ કરવો તેમાં ચિત્તની

તહીનેતા કરવી તે પ્રીતિ અનુષ્ઠાન છે.

તથા શ્રી જિનેશ્વરને પરમ કરુણાના નિધાન,
ભવસાગરમાંથી ભવ્ય જીવોને મુક્ત કરનાર, ધર્મ-
ધુરંધર, તીર્થના પ્રવર્તક જાણી તેઓના ગુણનું વહુ-
માન કરવું, અતિશય આદર વિનય પૂજા સેવના
વિગેરે કરવાં તે ભક્તિઅનુષ્ઠાન છે.

બલી લોકાલોક પ્રકાશક કેવલજ્ઞાનવડે સર્વે
તત્ત્વના યથાર્થ વેત્તા તથા ઉપદેશક પરમ વીતરાગ
આપ શ્રી જિનેશ્વરના વચનની યથાર્થ શ્રદ્ધા કરવી
તદનુસાર હર્ષયુક્ત આચરણમાં પ્રવર્તવું તે વચના-
નુષ્ઠાન છે.

હે પ્રભુ ! એ ત્રણ અનુષ્ઠાન જે ભાવયુક્ત સેવન
કરે તેને સર્વે વિભાવિક ક્રિયાથી નિવૃત્તિ તથા
સહજ આત્મીક પરિણામીકતાની પ્રાપ્તિ ક્ષય અસંગ
અનુષ્ઠાન થાય.

એમ એ ચાર અનુષ્ઠાનનો કર્તા હે ભગવંત !
આપ સ્વરૂપને પ્રાપ્ત થાય. માટે, હે પ્રભુ ! આપની
ભક્તિમાં માહરું ચિત્ત નિરંતર લીન રહે એમ ભાવના
ભાવું છું ॥ ૩॥

પરમેશ્વર અવલંબનેરે ॥ મન૦ ॥ ધ્યાતા
ધ્યેય અભેદરે ॥ ભવિ૦ ॥ ધ્યેય સમાપ્તિ હુવેરે ॥

મન૦ ॥ સાધ્ય સિદ્ધિ અવિછેદરે ॥ ભવિ. ૧૪।

અર્થે:—હે પરમેશ્વર ! આપના અવલંબનથી આપના અનુકરણવડે ધ્યાતા પુરુષ પોતાના શુદ્ધ સિદ્ધ સમાન પરમાત્મપદથી અભેદ થાય અર્થાત્ પોતે પરમાત્મા થાય. એમ ધ્યેય જે પરમાત્મપદ તેની સમાપ્તિ કહેતાં સંપૂર્ણ પ્રાપ્તિ થાય, નિષ્કંટકપણે અવિનશ્વર સાધ્યની સિદ્ધિ થાય. ॥૪॥

જિન ગુણ રાગ પરાગથીરે ॥ મન૦ ॥ વાસિત મુક્ત પરિણામેરે ॥ ભવિ૦ ॥ તજશે દુષ્ટ વિભાવતોરે ॥ મન૦ ॥ સરશે આતમ કામેરે ભવિ. ૧૫।

અર્થે:—જેમ મલયાગિર ચંદનના સંસર્ગવડે નિંબાદિક સુગંધમય થઈ જાય છે. તેમ હે ભગવંત ! આપના દિવ્ય સ્તુતિ પાત્ર પવિત્ર ગુણના રાગરૂપ સુગંધીવડે જો માહરું હૃદય સંશ્લેષિત થાય તો અનેક પ્રકારનાં અસહ્ય દુઃખ આપનાર પરકર્તૃત્વ, પરભોક્તૃત્વ, પરગ્રાહકત્વ, પરવ્યાપકત્વ વિગેરે વિભાવનો નાશ થાય અને પરમાત્મપદ પામવાનો માહરો મનોર્થ પૂર્ણ થાય. ॥ ૫ ॥

જિન ભક્તિરત ચિત્તનેરે ॥ મન૦ ॥ વેધકરસ ગુણ પ્રેમેરે ॥ ભવિ૦ ॥ સેવક જિનપદ પામ-

शेरे । मन० । रसवेधित अय जेमरे । भवि० ॥ ६ ॥

अर्थः—कठोर अने कुरूप एवं अय कहेतां लीढुं ते रस वेधित थवाथी जेम सुंदर अने कोमल एहवा सुवर्णपणाने प्राप्त थई जाय छे. तेम जिनेश्वरनी भक्तिमां चित्त लीन थाय ते चित्तने ते जिनेश्वरना गुण रागरूप वेधकरसनो योग थाय तो ते चित्त पूर्ण निर्मलपणाने प्राप्त थाय. एम सेवक आप समान अरिहंत पदने प्राप्त करे. ॥ ५ ॥

नाथ भक्तिरस भावथीरे । मन० । तृण जाणुं पर देवरे । भवि० । चिंतामणि सुरतरु थकीरे । मन० । अधिकी अरिहंत सेवरे । भवि० । ६ ।

अर्थः—आ घोर भवाटवीमां भ्रमण करता अशरण प्राणीओने हे भगवंत! मात्र एक आपज शरण छो, शिवपुरीए दोरवावाला छो साटे आपज नाथ छो तथा हे प्रभु! आपनीज भक्तिरूपरसमां माहुरुं चित्त लीन थाय छे. विषय कषाययुक्त कुदेवो तरफ तृणनी पेटे त्याग भाव उपज छे. चिंतामणी तथा कल्पवृक्षथी पण प्रभनी सेवाने अत्यंत आदरणीय मानुं छुं. आपनी सेवा आगल ते चिंतामणी तथा कल्पवृक्षादि अतिशय तुच्छ पदार्थ भासन थाय छे. ६ ।

પરમાત્મ ગુણ સ્મૃતિ થકીરે ॥ મન૦ ॥
 ફરશ્યો આત્મ રામરે ॥ ભવિ૦ ॥ નિયમા
 કંચનતા લહેરે ॥ મન૦ ॥ લોહ જ્યું પારસ
 પામરે ॥ ભવિ૦ ॥ ૭ ॥

અર્થ:-વલી હે પ્રભુ ! સંપૂર્ણ સમ્યક્જ્ઞાન,
 સમ્યક્ચારિત્ર, અનંત નિશ્ચલ ઘી^૧ વિગેરે આપ
 પરમાત્માના ગુણોના ચિંતનમાં જો માહરો આત્મ
 પરિણામ સૃષ્ટ થાય તો જેમ પારસ મણિના સ્પર્શ
 થકી લોઢા જેવી કુધાતુ કાંચન થઈ જાય છે; તેમ
 વિષય કષાયમાં પરિણમતો માહરો આત્મા તે પણ
 કાંચન સમાન શુદ્ધ પરમાત્મ પદને પ્રાપ્ત થાય ॥ ૭ ॥

નિર્મલ તત્ત્વ રુચી થઈરે ॥ મન૦ ॥ કરજો
 જિનપતિ ભક્તિરે ॥ ભવિ ॥ દેવચંદ્ર પદ
 પામશોરે ॥ મન૦ ॥ પરમ મહોદય યુક્તિરે ॥
 ભવિ૦ ॥ ૮ ॥

અર્થ:-ભાવદયાના આવેશે મિત્રભાવના યુક્ત
 સ્તવનકર્તા શ્રી દેવચંદ્ર મુનિ ભવ્યજીવો પ્રતિ
 સદુપદેશ આપે છે કે આભવ પરભવ સંબંધી વિષય-
 ભોગ તથા માન પૂજા વિગેરે પૌદ્ગલીક ભાવની

आशंसा तजी, मात्र एक शुद्धात्म तत्त्वना रुचिवान
 थई, ओघसंज्ञा तथा लोक संज्ञा परिहरी, विधि
 विवेक पूर्वक सर्वे जिनमां शिरोमणि श्री अरिहंत
 भगवंतनी भक्तिमां आणा सेववामां लीन थजो
 तो सर्वे देवोमां चंद्रम १समान अरिहंत भगवंत
 सदृश परमात्म पदने पामशो. एज उत्कृष्ट स्वाधीन
 अविनश्वर महोदय प्राप्त करवानी युक्ति छे ॥८॥

॥ संपूर्ण ॥



॥ कलश ॥ राग धन्याश्री ॥

वंदो वंदोरे जिनवर विचरंता वंदो, कीर्तन
 स्तवन नमन अनुसरतां ॥ पूरव पाप निकंदोरे
 जिनवर विचरंता वंदो ॥ १ ॥

अर्थः—विहरमान जिनेश्वरने हे भव्यो ! भाव सहित
 वंदो, तेओना सद्गुणोनुं कीर्तन करो, तेओनुं स्तवन करो,
 मार्दव परिणामी थई तरण तारण जिनेश्वरने नमो, तेओनी
 आक्षाने अनुसरो, जेथी पूर्वे बांधेलां अनेक प्रकारनां
 कर्मो निर्मूल थाय ॥ १ ॥

જંબુ દ્વીપે ચાર જિનેશ્વર, ધાતકી આઠ
આણંદો ॥ પુષ્કર અદ્ધે આઠ મહામુનિ, સેવે
ચોસઠ ઇંદોરે ॥ જિનવર૦ ॥ ૨ ॥

અર્થ—જંબુદ્વીપમાં ચાર, ધાતકીમાં આઠ અને પુષ્ક-
રાર્ધમાં આઠ એમ સર્વે મલી વીશ તીર્થંકર વિહરમાન
જેને મહારિદ્ધિના ધારક એવા ચોસઠ ઇંદો પણ સેવે
છે ॥ ૨ ॥

કેવલી ગણધર સાધુ સાધવી, શ્રાવક શ્રાવિકા
વૃંદો ॥ જિન મુખ ધર્મ અમૃત અનુભવતાં, પામે
મન આણંદોરે ॥ જિન૦ ॥ ૩ ॥

અર્થ:—શ્રી તીર્થંકરના મુખ કમલમાંથી વહેતા
અમૃત સમાન વચનોને અનુભવતાં તેનો આસ્વાદ લેતાં
કેવલી ગણધર સાધુ સાધવી શ્રાવક શ્રાવિકા સમ્યક્દ્રષ્ટી
જીવો શદ્ધ આનંદમાં મગ્ન રહે છે ॥ ૩ ॥

સિદ્ધાચલ ચોમાસ રહીને, ગાયો જિનગુણ
છંદો ॥ જિનપતિ ભક્તિ મુક્તિનો મારગ, અનુપમ
શિવસુખ કંદોરે ॥ જિન૦ ॥ ૪ ॥

અર્થ:—સિદ્ધાચલ ક્ષેત્રમાં ચોમાસુ રહીને જિનેશ્વરનાં
પવિત્ર ગુણોનું જેમાં વચાણ છે એવા છંદો (સ્તવનો)

વનાવ્યા-કારણકે જિનેશ્વરની ભક્તિ તેજ મુક્તિનો માર્ગ છે
તથા તેજ અનુયમ અવ્યાવાધ સ્વાભાવિક શિવસુખનું મૂલ
છે ॥ ૪ ॥

સ્વરત્તર ગણ જિનચંદ સૂરિવર, પુણ્યપ્રધાન
મુણિંદો ॥ સુમતિસાગર સાધુરંગ સુ વાચક,
પીધો શ્રુત મકરંદોરે ॥ જિન૦ ॥ ૫ ॥

અર્થ:—હવે સ્તવન કર્તા શ્રી દેવચંદ્ર મુનિ પોતાની
પરંપરા વચ્ચાણે છે, જેણે જિનપ્રણીત સૂત્રનો શુદ્ધ આસ્વા-
દન લીધો છે એવા સ્વરત્તર ગણમાં શ્રી જિનચંદ્ર સૂરિ મહા-
રક નામે પ્રધાન આચાર્ય થયા, તેઓ શ્રીના શિષ્ય પ્રધાન
પુણ્યવાન મુનિશિરોમણિ શ્રી પુણ્યપ્રધાન નામે મહોપાધ્યાય
થયા, તેઓના શિષ્ય સુમતિના સમુદ્ર જેવા શ્રી સુમતિસાગર
નામે ઉપાધ્યાય થયા, તેઓના શિષ્ય મુનિપણામાં જેને રંગ
લાગ્યો છે એવા સાધુરંગ વાચક થયા ॥ ૫ ॥

રાજસાર પાઠક ઉપકારી, જ્ઞાનધર્મ દિણદો ॥
દીપચંદ સદ્ગુરુ ગુણવંતા, પાઠક ધીરગયંદોરે
॥ જિન૦ ॥ ૬ ॥

अर्थः—ते पछी आवश्यकोद्धार प्रमुख ग्रंथना कर्ता सुविहित सामाचारी धारक श्रीराजसारजी महोपाध्याय थया, ते पछी न्यायादिक ग्रंथ अध्यापक सूर्यसमान तपस्वी ज्ञानधर्म उपाध्याय थया, ते पछी माहरा सद्गुरु ज्ञान दर्शन चारित्र गुणना धारक, पंचाचारना पालक, उपसर्ग परिसह सामे गजेन्द्रनी पेठे निश्चल रहेवावाला महाधीर वीर दीपचंद्र पाठक थया ।

देवचंद्र गणि आत्म हैते, गाया वीश
जिणंदो ॥ रिद्धि वृद्धि सुख संपत्ति प्रगटे
सुजस महोदय वृंदोरे ॥ जिन० ॥ ॥६॥

अर्थः—एमना शिष्य में देवचंद्र गणिए आत्म पदार्थने कर्म कलंकथी मुक्त करवाना हेतुए विहरमान वीश तीर्थकरना गुण गाया जेथी कर्म कलंक वडे आछा-दित थएली आत्मानी ज्ञानदश नादि अनेक रिद्धिओ प्रगटे, वृद्धिने पामे तथा तजन्त्य सुख संपत्ति प्रगट थाय, अखूट निर्मल यश विस्तरे, आत्मीय गुण समूहनो महोदय थाय, सर्वत्र कल्याण वर्ते, सर्व जीव परमानंद ने प्राप्त थाय ॥ ६ ॥

॥ संपूर्ण ॥

વાલાવબોધકાર પ્રશસ્તિ

॥ કલશ ॥ હરિગીત ઇંદ ॥

વિહરમાન જિનંદ મંગલ, કંદ જ્ઞાન દિનંદ જે,
વિકસાવતા નય કર સમૂહે, ભવ્ય ઊર અરવિંદ જે;
ઉપશમ સુધા સાગર ઉલાસન, પૂર્ણ અનુપમ ચંદ જે,
ભવદંદ ફંદ નિકંદિ પાયક, શુદ્ધ પરમાનંદ જે ॥ ૧ ॥

મોહ મદિરામાં મચેલા, કુમતિ મત માતંગના,
મહ ગંજવા બલ ભંજવા, બલવાન ગ્રંથ પંચાનના;
તે તીર્થનાયક તત્ત્વદાયક, વીશ જિનવર ગુણમણી,
“ દેવચંદ્ર ગણિ ” પવિત્ર મતિએ, સ્તવ્યા ગુણમાલા
મણી ॥ ૨ ॥

તે સ્તવન વીશ વિષે અતિશે, ઘોષ અનુપમ વરણવ્યો,
ત્યાં ચિત રમણ હિત મુજ મનોરથ, અરથ લખવાનો થયો;
મધુ માસમાં અતિ મધુર સ્વરથી, કોકિલા જે ગાય છે,
તે તો સ્વરેસ્વર આમ્ર તરુના, પુષ્પનોજ પસાય છે ॥ ૩ ॥

तेम गुण निधि “ सद्गुरु, मनसुख ” तणो

आश्रय लही । ,

“ संतोष ” प्रेमे अर्थ आ, मैं लख्यो ‘दोहदमां’

रही;

उगणीश छ्वासठ साल आसो, शुक्ल सातम शशि दिने,
जिनराज भक्ति पसायथी, पूर्ण थयो उलसित मने ॥५॥

हे भव्य शुभ मति विनति आ, मम क्षमायुत उरमां धरी,
गुण क्षीर ग्रहजो हंस पेठे, नीर अवगुण परिहरी;

भरपूर सुखप्रद ग्रन्थ आ, शशि स्वर सम शाश्वत रहो,
चांचन मनन अनुभव करी, भवि शशि रमा अनुपम

लहो ॥ ५ ॥

श्रीमद् देवचन्द्रजी रचित अप्रकाशित स्तवन संग्रह

संग्राहक—अगरचंद नाहटी

१ ऋषभ स्तवन ।

ढाल—मोरा आतमराम, कईयइ दरसण पास्यु ए देशी ॥

मोरा ऋषभ जिणंद, कईयइ दरसण पास्यु ॥ मो० ॥

सिद्धाचलनी पाजइ चढतां, मरु देवा सुत ध्यासुं ।

घणा दिवस नो अग षमाहो, ते पामी सुख भास्युं । १ मो०॥

निरमल नीरइ प्रभु नइ अगइ, कहीय(इ) न्हवण करास्युं ।

केसर चंदन मृगमद घसि नइ, तोरइ देह लगास्युं ॥ २ मो० ॥

पूज करी नइ आगलि बइसी, पांचे ङंग नमास्युं ।

भाव धरीनइ मननइ रंगइ, नाभ नंदन गुण गास्युं ॥३ मो०॥

भार २ तुम्ह मुख निरखी, हीयडइ हरखति थास्युं ।

तोरो ध्यान धरी अति सारो, सकल मिथ्यात विनास्युं ॥४मो०॥

आठ करमनो अत करीने, दुरगति दूरि गमास्युं ।

चंद कहइ इम मननै रंगइ, तुम्ह ध्यानइ मन लास्युं ॥५ मो०॥ इति

(देवचंद्रजी लिखित पत्र में होने से उनका रचित संभव है)

ध्यान चतुष्क विचार गर्भित

शीतल जिन स्तवन

अथ ध्यान च्यार स्तवन ।

दूहा—

प्रणमी शीतलनाथ पय, सुख संपति दातार ।

विघन विडारण भय, हरण, धरि मनि भाव अपार ॥ १ ॥

श्री सदगुरु ना पय नमी, मन सूं करीय विचार ।

ध्यान भेद सखेप सू, कहिसुं मति अनुसार ॥ २ ॥

ढाल—रामचंद्र कइ वाग, एहनी ।

च्यार ध्यान विसतार, सुणिज्यो भाव धरी री ।

कहिस्युं श्रुत अनुसार, ग्रहि मनि टेक खरी री ॥ १ ॥

आर्त्त रौद्र बलि धर्म, चउथउ शुक्ल थुण्यउ री ।

कहिस्युं मति इक चित्त, जिम गुरु पास सुण्यउ री ॥ २ ॥

संका शोक प्रमाद, कलह चित भयकारी ।

अम उनमाद विशेष, धन संग्रह अधिकारी ॥ ३ ॥

काम भोग नी चीत, जे जन मन मइं राखइ ।

आर्त्त ध्यान तिण माहि, लहीयइ इम श्रुत साखइ ॥ ४ ॥

प्रथम ध्यान ना पाय, च्यार कहा श्रुत संगइ ।

प्रथम अनिष्ट-संयोग, बीजउ इष्ट-वियोगइ ॥ ५ ॥

तीजउ रोग-निमित्त, मन मइं चित धरइ री ।

चउथउ सुख नइ काजि, जीव नियाण करइ री ॥ ६ ॥

यत्त दैत्य विष साप, जल थल जीव सहू री ।
 सायण दायण भूत, गाजै सींह बहू री ॥ ७ ॥
 नयडइ आव्यइ दुक्ख, जे मन क्रोध करइरी ।
 टालू दूरइ एह, मन मइ - एम धरइ री ॥ ८ ॥
 एहवउ दुष्ट स्वभाव, जिण रइ चित्त रहइ री ।
 आर्त्त अनिष्ट-संयोग, जिनवर तेथि कहइ री ॥ ९ ॥
 भोग सुहाग विशेष, चित वंछित सुह दाता ।
 बांधव मित्र कलत्र, ऋद्धि पितृ वलि माता ॥ १० ॥
 हुयइ इष्ट-वियोग, एहवउ ध्यान मिलइ री ।
 करुं कोइ रूपाय, जिणसुं इष्ट मिलइ री ॥ ११ ॥
 इष्ट मिलेवा काज, मन संकल्प वहइ री ।
 ध्यान ए इष्ट वियोग, बीजउ आर्त्त कहइ री ॥ १२ ॥
 कास स्वास जर दाह, जरा भगंदर रोगा ।
 पित्त श्लेष्म अतिसार, कोष्ठादिक ना योगा ॥ १३ ॥
 एहवइ ऊपनइ रोग, मन मइ चित करइ री ।
 ओखध कर : अपार, सुख कारण विचरइ री ॥ १४ ॥
 क्रोध मोह मद लुद्ध, मन मइ दुष्ट धरइ री ।
 रोग चित्त इण नाम, तीजउ आर्त्त वहइ री ॥ १५ ॥
 राज रिद्धि सुख पूर, काम भोग नित चाहइ ।
 धन संतान निमित्त, देह कष्ट बहु साहइ ॥ १६ ॥
 वासुदेव चक्रवर्त्ति, सुर किन्नर पद काजइ ।
 इह लोक नइ परलोक, सुख बांछा मन छाजइ ॥ १७ ॥

करइ तपस्या नित्य, मन मइ जे पद चाहइ ।
 भण्यउ नियाणो नाम, आर्त्त अंत्य अवगाहइ ॥ १८ ॥
 ॥ इति आर्त्त ध्यान ॥

दूहा—

सदा त्रिशूलउ शिर रहै, आंखे क्रोध अपार ।
 बोलइ इम कहुआ वचन, मखइ मुकार चकार ॥ १ ॥
 दुष्ट परिणामी खल सदा, विनय हीन वाचा (ल)
 ॥ २ ॥
 ।

(पत्रांक २ नहीं मिलने से रौद्र ध्यान का शेष वर्णन व
 धर्म ध्यान का प्रारंभिक वर्णन अधूरा रह गया है)

..... नवि करइ, प्रथम पायौ तिको जाण रे ॥ ३ ॥ ए० ॥
 एह मुक्त जीव अनादिनो, कर्म जंजीर संयुक्त रे ।
 पाहुआ कर्म कलंक थी, कीजस्यइ किण दिनइ मुक्त रे ॥ ४ ॥
 आत्मगुण परगट कदि हुसै, छोडि पर पुद्गल संग रे ।
 एह विचार अहनिशि करइ, यह बीजो ध्रम अंग रे ॥ ५ ॥
 जोव उदय सुभ कर्म रहइ, पामइ छइ सुख अपार रे ।
 अशुभ उदय दुख उपजइ, एह निश्चय करि धार रे ॥ ६ ॥
 नरक मइ दुख जेतइ सहा, तेह आगे किसुं एह रे ।
 पाय तीजइ इसउ चीतिवइ, इम करइ भव तणउ छेह रे ॥ ७ ॥
 शब्द आकाररस फरस सब, गध संस्थान संवयण रे ।
 रूप ध्यावइ वली आपणउ, तजीय मोहादि बलि मयण रे ॥ ८ ॥

जीव जग तीन मइ छइ किना, जीव मइ तीन जग सार रे ।
जीव बडउ जगत्रय बडउ, जीव जग तीन सिणगार रे ॥ ६
एह सरूप जगत्रय तराउ, चीतवइ चित्त मइ नित्य रे ।
तेथि संस्थान-विचय भलउ, पाय चउथउ ध्रम कित्त रे ॥ १०

दूहा—

धरम ध्याने ध्यायां पछी, सुख शिव पद दातार ।
शुक्ल ध्यान ध्यावे भविक, आतम रूप उदार ॥ ११ ॥
च्यार पाय तिण शुक्ल ना, पृथक्क-वितर्क विचार ।
बीजउ शुक्ल सुहामणउ, एक-तर्क अविचार ॥ १२ ॥
तीजउ शुक्ल श्रुतइ कह्यौ, सुदम-क्रिया प्रतिपाति ।
चउथउ शुक्ल ध्यावइ सदा, छिन्न-क्रिया प्रतिपाति ॥ १३ ॥

ढाल-मालीय केरे वांग मइ एह नी

एक द्रव्य परयाय सु, शुक्लइ मन लावउ लो ॥ अहो०
उतपति थिति इम अंग सु, तिण मांहि मिलावउ लो । अहो० ॥ १ ॥
साते नय दो नय थकी, जग रूप विचारइ लो । अ० ।
तीन योग इक योग सु, मन माहि उचारइ लो ॥ २ ॥ अ०
पृथक्क-वितर्क विचारते, शुक्ल ध्यान कह्योवइ लो । अहो० ।
निश्चय मन ध्यावइ सदा, ते चढतइ दावइ लो । अहो० ॥ ३ ॥
एक वर्तु नय-सात । सु, माहो माहि मिलावइ लो । अहो० ।
एह मिलइ दो नय थकी, ए च्यार मिलावइ लो । अहो० ॥ ४ ॥
केवल तदितामी करी, ते ध्यान ज ध्यावइ लो ॥ ५ ॥ अ०

એક-તર્ક અવિચાર તે, શુક્લ વીજડ પાવડ લો ॥ અહો ॥૫॥
 અંતર્મુહુરત આયુષ થકડ, ધ્યાન તીજડ આવડ લો ॥ અ૦ ॥
 નિજ ગુણ મોક્ષ આવી રહ્યાં, દોય યોગ રૂંધાવડ લો ॥ અ૦ ॥૬॥
 એક યોગ બાદર અછડ, તેહિજ પિણ રોકડ લો ।
 સુદમ ઉસાસ નીસાસ સૂં, નિજ રૂપ વિલોકડ લો ॥ ૭ ॥
 સુદમ રહાસ લેતડ થકડ, નિશ્ચય પદ ધારડ લો । અ૦ ।
 સુદમ-ક્રિયા પ્રતિપાતીયડ, તીય શુક્લ સંભારડ લો । અ૦ ॥૮॥
 શૈલેશી કરતાં થકાં, સવ જોગ રાખાડ લો ॥ અ૦ ॥
 પાંચ અક્ષર પરિણામ મંડ, અદ્ભુત પદ ધ્યાવડ લો ॥ ૯ ॥
 પરબત જિમ દેહ છોડિ નહ, તે મોક્ષડ જાવડ લો ॥ અ૦ ॥
 હસ્થ વરણ હમ પાંચમડ, ચર્યથ શુક્લ ભાવડ લો ॥ ૧૦ ॥
 દોય ધ્યાન સવ જીવ તડ, નિશ્ચય કરિ ધ્યાવડ લો । અ૦
 ધર્મ ધ્યાન ભવ્ય જીવ જે, તેહિજ ધ્રુવ પાવડ લો ॥ ૧૧ ॥
 શુક્લ ધ્યાન પંચમ અરડ, નિશ્ચય કરિ નાવડ લો ॥ અ૦
 પહિલો સંઘયણનો ધણી, શુક્લ ધ્યાન જ પાવડ લો ॥ ૧૨ ॥
 શ્રી શીતલ જિન વંદતાં, દોય ધ્યાન રાખડ લો ॥ અ૦ ॥
 ધરમ ધ્યાન મન ભાવીયડ, દેવચન્દ્ર હમ ભાવડ લો ॥ ૧૩ ॥

પાસ જિણંદ જુહારીયડ એ ઢાલ

ધ્યાન ઝ્યાર મડ વર્ણવ્યા, શ્રી આગમનડ અનુસારડ રે ।
 આર્ત રૌદ્ર નહ પરિહરિ, ભવિક ધરમ ચિત ધારડ રે ॥૧॥
 શ્રી શીતલ જિન વંદના, હું કરું સદા વાર વાર રે ।
 મવિયણ પ્રાણી જે હુવડ, તે તીજડ ધ્યાન સંભારડ રે ॥૨॥

शुक्ल ध्यानं हिवणां नहीं, इण पंचम दूसम आरइ रे ।
 धरम शुक्ल दोइ ध्यानं सूं, तिण प्रीति खणी मन माहरइ रे ॥३॥
 युग प्रधानं जिणचंद ना, शिष्य पाठक गुणो सवाया रे ।
 पुन्यप्रधान शिष्य गुण निला, श्री सुमतिसागर उवकाया रे ॥४॥
 साधुरंग वाचक वरु, तसु सीस पंडित विख्याता रे ।
 राजसार पाठक अछइ, जे जिनमत सूं अति राता रे ॥५॥
 ज्ञानधरम शिष्य तेहना, वाचक पदना घारी रे ।
 तासु सीस राजहंस × नउ, मुनि राजविमलां सुविचारी रे ॥६॥
 तिण ए ध्यानं तणउ रच्यउ, तवन शीतल जिन केरउ रे ।
 भणतां गुणतां संपदा, दिन २ छव अधिकेरउ रे ॥७॥
 इति ध्यानं चतुष्क स्तवन ॥ पं० देवचन्द्र कृतं ॥

लिखतं पं० दुर्गदास मुनिना

(पत्रांक २ नहीं मिला) पत्र ४ पंक्ति ११ अ० ३६।४०
 × दीपचंद्रजी का दीक्षावस्था का नाम है ।
 † देवचन्द्रजी का दीक्षावस्था का नाम है ।

३ लींबडी शान्ति जिन स्थापना स्तवनम्

आवो सजन जन जिनवर वंदन, श्री शान्तिनाथ गुण वृंदा रे ।
 जस गुण रागे निज गुण प्रगटे, भाजे भव भय फंदा रे ॥१॥
 विश्वसेन अचिरा नो नंदन, पूरण पुन्ये लहीये रे ।
 ध्यानं एकत्वे तत्व विबुद्धे, शुद्धात्म पद ग्रहीये रे ॥२॥

संवत अठारसैं सातैं वरसैं, फागुण सुदि बीज दिवसे रे ।
 श्री शांति जिणेसर हरपैं थाप्या, (अति) बहु माने सिव सुख
 वरसे रे ॥३॥

लीवढी नयरी मडण मनोहर, शांति चइत् प्रसिद्धो रे ।
 वृद्ध शाख पोरवाड़ प्रगट जस, वोहरे डोसैं, की(ली?)घो रे ॥४॥
 जिन भगते जे धन आरोपे, धन धन तुसी मत धारो रे ।
 गुणी राग थी तनमय चितैं, पुद्गल राग उतारो रे ॥५॥
 तीर्थकर गुण रांगी बुद्धे, रत्नत्रयी प्रगटावो रे ।
 'देवचन्द्र' गुणरंगे रमतां, भव भय सर्व मिटावो रे ॥६॥
 इति शांति स्तवन सपूर्ण ।

(पत्र १८७ वां) आनंदजी कल्याणजी पेढी भंडार लीवढी ।

४ पार्वनाथ गीत

ढाल-सखी री प्यारउ २, एहनी

सखी री वामा राणी नदा, अश्वसेन पिता सुखकंदा ।
 प्रभावती राणी इदा, दीजै मुक्त परम आणदा हो लाल ॥१॥
 वीनती ए मुक्त धरियइ, पातक सगला हरीयइ ।
 मुक्त उपरि मेहिर जकरीयइ, तिम केवल कमला वरीयइ होलाज ॥२॥
 सखीरी तुम्ह सेवन पाई दुहली, योनि गई सहु-अहिली ।
 द्विष सेवा कीजइ सहिली, मुक्त इच्छा पूरउ वहिली हो लाल ॥३॥
 सखीरी ते सहु पातक रोकइ, तेजय पामइ इण लोकइ ।
 रिद्धि नहइ बहु थोकइ, जे तुम्ह पद पंकज धोकइ हो लाल ॥४॥

श्रीफलवधिपुर राया, जब तुम दरसण मई पाया ।
 दुख दोहग दूर गमाया, हिव आणद थया सवाया हो लाल ॥१॥
 मइ योनि सहू अवगाही, तुम सेवा कबहि न साही ।
 हिव मइ तुम आण आराही, मुम लीजइ बाह संभारी हो लाल
 जब तुम मुख दरसण दीसइ, तब मुम मन अधिकउं हीसइ ।
 गणि राजहंस सु सीसइ, कहे देवचंद सुजगीसइ हो लाल ॥७॥

इति श्री पार्वनाथ गीत (स्वयं लिखित, पत्र २)

प्रारंभ में दीपचंद कृत लोद्ववा पार्व जिन स्तवन गा० १२
 पार्वस्तवन गा० ८ राजहंस (दीपचंद) कृत उसके बाद
 उपयुक्त स्तवन फिर चंदकृत स्तवन है जो प्रारंभ में जा चुका है

५ श्री मौनेकादशी नमस्कार

तिहुअण जण आणंद कंद, जय जिणवर सुखकर ।
 कल्याणक तिथि मांहि, जेह परमोत्तम सुन्दर ॥
 मगसिर सुदी एकादशी, वसी सुगुण मेन मांही ।
 आराधो पोसह करी, तो पामो सुख जाहि ॥१॥
 श्री अरजिन दीक्षा प्रधान, नमि केवल भासन ।
 मल्लिनाथ जनम, दीक्षा शुचि वासन ॥२॥
 केवल नाण ॥ कल्याण, पंच श्री जबू भरते ।
 इम दश क्षेत्रे एक काल, जिन महिमा वरते ॥३॥
 अतीत - अनातीत, वर्तमान, कल्याणक सतति ।

आराधो पंचास अहिय, इगलय शुभ परिणति ।
 काल अन्ते रीत एह, गुण गेह मनोहर ।
 परमात्तम सेवन, नमन, परमारथ सुखकर ॥ ३ ॥
 दर्शन ज्ञान चारित्र वीर्य, तप गुण आराधन ।
 अक्षय अव्यय शुद्ध सिद्धि, समता पद साधन ॥
 कल्याणक कल्याण कंद, सुरतरु जे भक्ते ।
 आराधै तसु आत्म भाव, थायै सवि व्यक्ते ॥ ४ ॥
 तीर्थे तीर्थंकर साधु संघ, आराधन निर्मल ।
 जनम महोच्छव प्रमुख भक्ति, करतां हुवै शिवफल ॥
 देवचन्द्र जिनराय पाय, प्रणमो अति रीमै ।
 परम महोदय ऋद्धि सिद्धि, मन वंछित सीमै ॥ ५ ॥

॥ इति मौन एकादशी नमस्कार ॥

(नित्य-मणि-जैन लायब्रेरी, कलकत्ता से प्राप्त)



६ श्री पद्मनाभ जिन स्तवन

श्री वीरप्रभु उपगार थी रे, श्री श्रेणिक गुणधाम ।
 क्षायिक श्रद्धा गुण वशे रे, नीपायो जिननामो रे ॥
 प्रथम जिनेश्वरु, भावि भरत मभारो रे ।
 मुक्ते तारो रे, भवी आशा अवधारो रे ॥ प्रथम० ॥ १ ॥
 वस्तु स्वरूप प्रकाशता रे, ज्ञान चरण गुण खाण ।
 वांछुं प्रभुता ओलखी रे, तेहिज मुनि सुविहाणो रे ॥ प्रथम ॥ २ ॥

पद्मनाभ प्रभु देशनारे, साधन साधक सिद्ध ।
 गौण मुख्यता वचन में रे, ज्ञान ते सयल समृद्धो रे ॥ प्रथम ३
 वस्तु अनंत स्वभाव छेरे, अंत कथक तसुनाम ।
 ग्राहक अवसर बोधथी रे, कहेवे अर्पित कामो रे ॥ प्रथम ४
 शेष अनर्पित धर्म ने रे, सापेक्ष श्रद्धा बोध ।
 उभय रहित भासन हुवे रे, प्रगटे केवल बोधो रे । प्रथम ५
 छती परिणति गुण वर्तना रे, भासन भोग आनंद ।
 सम काले प्रभु ताहरे रे, रम्य रमण गुण वृंदो रे । प्रथम ६
 निज भावे सीय अस्तिता रे, परनास्तिअ स्वभाव ।
 अस्तिपण्यो ते नास्तिता रे, सोयते उभय स्वभावो रे । प्रथम ७
 अस्तित्वभावते आपणो रे, रुचि वैराग्य समेत ।
 प्रभु सन्मुख वंदन करीरे, मागीस आतम हेतो रे । प्रथम ८
 करुणानिधि गुरु तारीअ रे, दाखी शुद्ध स्वभाव ।
 मुज आतम सुख स्वादनो रे, बीजो कवण उपावो रे । प्रथम ९
 काल अनादिनो विसर्यो रे, माहरो आतमानंद ।
 प्रभु विण मुज कुण सीखेवेरे, त्रिभुवन करुणा कंदोरे । १० ।
 मुजने तुज शासन तणी रे, छै मोटो उमेद ।
 निर्मल आतम संपदा रे, थाशे प्रगट अभेदोरे । प्रथम ११
 दीपचंद गुरु सेवतां रे, पाम्यो देव अभंग ।
 देवचंद ने नित होजोरे, जिन शासन दृढ़ रंगो रे । प्रथम १२
 (सूचना-इस स्तवन की ३ सेवर्ती गाथा चौबीसी के अंतगत
 कुंथुनाथ स्तवन के सदृश हैं ।

७ अष्ट रुचि सज्जाय ।

सुरपति नतदेव अमित गुणी, श्री भाव प्रकाशक दिनमणी ।
शासनपति वीर जिनेश ना, गणधर सोहम शुचि मना ॥१॥
शुचिमना सोहम सीस जंबू, भणी सीख कहीं भली ।
सुणो आतमेतत्व रोचक, करी निज मति निरमली ॥
ए आठ कारण मोक्ष साधक, परम संवर पद तणी ।
करी आदर अतिहि उद्यम, यतन साधन अति घणी ॥
अभिनवा गुणनी वृद्धि थास्यै, दोष क्षय जोसै सबै ।
ते माटि सेवो सृत्र आणा, सुख लहौ जिमे भव भवै ॥२॥

‘अनुभव रंगीले आतमा’—ए ढाल

पहिलुं कारण सेवियै, भाखै वीर जिणंद रे ।
नित नित नवुं नवुं सांभली, शुद्ध धरम सुख कंद रे ॥
थास्यै परम आणंद रे, ऊगै ज्ञान दिणंद रे, फलके अनुभव चंद रे ॥१॥
आणा रंगी रे आतमा, तजिसुं सर्व प्रमाद रे ।
करि आंगम आस्वाद रे, वसि निज तत्व प्रसाद रे ॥ आंकणी ॥
गीतार्थ श्रुत-धर मिलै, आणी अति बहु मान रे ।
नय निक्षेप प्रमाण थी, अभ्यासौ श्रुत ज्ञान रे ॥
भजितुं जितवर आणरे, पामै सुख निरवाणरे, परममहोदय ठाणरे ॥२॥
बीजे थानक श्रुत तणी, लाघो तत्व विचार रे ।
स्व पर समय निरधार थी, चउ अनुयोग प्रकार रे ॥
ज्ञेय पणै सवि भाव रे, रहस्यो आत्म स्वभाव रे, तजि पर
समय विभाव रे ॥३॥

आगम अर्थनी धारणा, थिर राखो भवि जीव रे ।
 ज्ञान ते आतम धर्म छै, मोह तिमिर हर दीव रे ।
 श्रुत अमृतरस पीव रे, साधन एह अतीव रे, संवर ठाण
 सदीव रे ॥४॥

पूरव सचित कर्म नी, निर्जरा थायै जेम रे ।
 तिम तम संवर सेवज्यो, साधि धर्म धरि प्रेम रे ॥
 चिन्तवजो मनि एम रे, कर्म लहै हिव केम रे, मुक्त
 पद निर्मल केम रे ॥५॥

पंचम थांनक आश्रयो, धर्म रुची जीव जेह रे ।
 तेहनी करवी रक्षण, बाधइ धर्म सनेह रे ॥
 निम करसण जल त्रेह रे, धरमावष्टंभ देह रे, तो लहस्यो
 निज ध्रुव गेह रे ॥६॥

छट्ट, चौविह संघनै, सीखावौ आचार रे ।
 क्रिया करता रे गुण वधै, सधै क्षमादि प्रकार रे ।
 नासै दोष विकार रे, थायै ध्यान विसतार रे आलय शुद्ध
 विहार रे ॥७॥

गुणवंत रोगी ग्लान नौ, वेयावच्च करौ रंग रे ।
 अनुकंपा सवि दीन नी, उत्तम भक्ति प्रसंग रे ।
 बाधै विनय तरंग रे, शासन राज (ग?) उमंग रे, सहज
 सुभाव उत्तंग रे ॥८॥

साधर्मिक जन सर्व में, कहवी थाय कसाय रे ।
 तजि सवि दोष अनुष्ठान नो, क्षमण कर्या सम थाय रे ।

इम जंपे जिनराय रे, समता शिव सुख दाय रे
 समनिधि मुनि गुण गाय रे, सुरपति सेत्रै तसु पाय रे ॥६॥
 तीजे अगेरे उपदिस्थो, ए उपदेश उदार रे ।
 जिण आणा ए वर्त्तस्यै, ते गुणनिधि निरधार रे ॥
 ज्ञानसुधा (जल) दिल धार रे, वरसै श्री गणधार रे,
 पामै तसु सुख सार रे ॥१०॥ आ
 रयण सिंहासन वैसी नै, दाखे जगत दयाल रे ।
 देवचन्द्र आणा रुचि, होइज्यो बाल गोपाल रे ।
 आतम तत्त्व संभाल रे, करज्यो जिन पति बाल रे, थास्यो
 परम निहाल रे ॥११॥

८ पद

राग धन्यासिरी

मेरे जीउ क्या मन मइं तूं चीतइ ।
 इक आवत इक जात निरंतर, इण संसार अनंतइ १। मेरे जीउ ।
 करम कठोर करे जीउ भारीं, परत्रिय धन निरखंतइ ।
 जनम मरण दुख देखे बहुले, चउगइ मांदि भमंते २। मे० ।
 काम भोग क्रीड़ा मत करना, जे बांधे हरखते ।
 वेर वेर तेहिज भोगवता, नवि छूटे विलवंतइ रे ३। मे० ।
 क्रोध कपट माया मद भूलइ, भूरि मिथ्याति भमतइ ।
 कहै देवचंद्र सदा सुख दाई, जिन ध्रम एक एकंतइ ४। मे० ।

६ मेरे प्रीउ क्यु न आप विचारो ।

कइसै हो, कइसै गुणधारक, क्या तुम लागत प्यारो ।१। टेक ।
 तजि कुसंग, कुलटा ममता को, मानो वयण हमारो ।
 जो कछु भूठ कहे, इन में तौ, भौकूं सुंस तुम्हारो ।२। मे ।
 यह कुनार जगत की चेरी, याकौ संग निवारौ ।
 निरमल रूप अनूप अबाधित, आतम गुण संभारौ ।३। मे
 मेटि अज्ञान क्रोध दसम गुण, द्वादश गुण भी टारो ।
 अक्षय अबाध अनंत अनाश्रित, 'राजविमल' पद सारो ।४। मे० ।

१० चरित्र सुख वर्णन द्वादश दोधक

पर गुण सै न्यारे रहै, निज गुण के आधीन ।
 चक्रवर्त्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन ।१।
 इह नित इह पर वस्तु की, जिने परिख्या कीन ।
 चक्रवर्त्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन ।२।
 जिणहुं निज निज ज्ञान सुं, प्रहे परिख तत्त्व तीन ।
 चक्रवर्त्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन ।३।
 दस विध धरम धरइ सदा, शुद्ध ग्यांन परीवीन ।
 चक्रवर्त्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन ।४।
 समता सागर में सदा, भील रहे ज्युं मीन ।
 चक्रवर्त्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन ।५।
 आसा न धरै काहू की, न कबहूँ पराधीन ।
 चक्रवर्त्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन ।६।

स्व संयम पावस वसै, दहै प्रमाद दुख भीन ।
 चक्रवर्त्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन ।७।
 पुदगल जीव की सक्ति सब, जरत सप्त भय हीन ।
 चक्रवर्त्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन ।८।
 सप्तम गुण थानक रहै, कीयो मोह मसकीन ।
 चक्रवर्त्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन ।९।
 क्षपकोपशम पयड़ी चहै, आतमरस सुधीन ।
 चक्रवर्त्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन ।१०।
 तूर्य ध्यान ध्याते समे, कीयै करम सब छीन ।
 चक्रवर्त्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन ।११।
 देवचन्द्र वाचै सदा यह मुनिवर गुण वीन ।
 चक्रवर्त्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन ।१२।
 (इति प्राकृत भाषया समस्या दोधक द्वादश, कृता पं० देवचंद्रेण)

११ हीयाली ।

॥ ढाल राय कुयारि वरि बाई भलो भरतार ए देशी ॥
 इक नारि रूपी रूयड़ी, जनमी ज साते तात ॥
 मलपती मानव भूलरइ, सगलां चित्त सुहात ।१।
 कहो रे चतुर नर ए हीयाली सार ॥
 जो तुम्हे चतुर विचार ॥ क० ॥ आकणी ॥
 भरतार पासै नित रहै, बोलइ न भरता संग ।
 अवर पुरख आवी मिल्यां, वात करइ मन रंग ॥२॥ क०॥

दोई नेत्र पति सांम्हा सदा, देखै न पतिनो अंग ।
 वार्तालू-जीहा विना, मोटा कान अभंग ॥३॥ क०॥
 विचि विचै उज्जल नर मनोहर, भरि साख द्यो हुंकार ।
 पर कांधइ न चढे कदे, चरण विना चलै सार ॥४॥ क०॥
 इक नार सुं जासु वैर छै, वेवै न शीत न ताप ।
 देवचंद्र भाखइ तेहनी, मोटां सू मेलाप ॥५॥ क०॥

इति हीयाली संपूर्ण ॥

(हीयाली १ सुमतरंग १ दुर्गदास कृत सह । पत्र १)

(नं० ३-५ को छोड़ सभी रचनार्ये शाखा भंडार
 बीकानेर से प्राप्त हुई हैं)

उदय स्वामित्व पंचाशिका

बद्धित्तु वद्धमाणं, निणं च गुरु-राजसार-पय-कमलं ।
 गईआइएसु तुच्छं, समासओ उदय-सामित्तं ॥१॥
 धीणतिगं पुम इत्थी, नरतरि-सुर-निरय-आउगई पुव्वी ।
 वेउन्विदुगं जाई, चौ आईल्लाई - सउरत-दुगं ॥२॥
 आहार-दुगं संघयण-छक्क, आगई आइज्जल पंच सुभखगई ।
 थावर सुभग चउक्कं, आयव-उज्जोय-जिए-उच्चं ॥३॥
 मीसंसम मिच्छ अणचउ, दुहग-इग बीय कसाय चउ-परघा ।
 उसास पय पयही, अवहरणिज्जा उदय मज्जे ॥४॥
 धीणपण मणुय नवगं, एगिंदिय जाइमाइ दुगतीसं ।
 बलित्तु नरय ओहो, छसयरि विणुमीस दुगमिच्छे ॥५॥

इम जंपे जिनराय रे, समता शिव सुख दाय रे ।
समनिधि मुनि गुण गाय रे, सुरपति सेत्रै तसु पाय रे ॥६॥

तीजे अंगेरे उपदिस्यो, ए उपदेश उदार रे ।

जिण आणा ए वर्त्तस्यै, ते गुणनिधि निरधार रे ॥

ज्ञानसुधा (जल) दिल धार रे, वरसै श्री गणधार रे,

पामै तसु सुख सार रे ॥१०॥ आ

रथण सिंहासन वैसी नै, दाखे जगत दयाल रे ।

देवचन्द्र आणा रुचि, होइब्बो बाल गोपाल रे ।

आतम तत्त्व संभाल रे, करज्यो जिन पति बाल रे, थास्यो

परम निहाल रे ॥११॥

८ पद

राग धन्यासिरी

मेरे जीउ क्या मन मइं तूं चीतइ ।

इक आवत इक जात निरंतर, इण संसार अनंतइ १। मेरे जीउ ।

करम कठोर करे जीउ भारीं, परत्रिय धन निरखंतइ ।

जनम मरण दुख देखे बहुले, चउगड मांदि भमंते २। मे० ।

काम भोग क्रीड़ा मत करना, जे बांधे हरखते ।

वेर वेर तेहिज भोगवता, नवि छूटे विलवतइ रे ३। मे० ।

क्रोध कपट माया मद भूलइ, भूरि मिथ्याति भमतइ ।

कहै देवचंद्र सदा सुख दाई, जिन ध्रम एक एकंतइ ४। मे० ।

६ मेरे प्रीउ क्यु न आप विचारो ।

कइसै ही, कइसै गुणधारक, क्या तुम लागत प्यारो । १। टेक ।
 तजि कुसंग कुलटा ममता को, मानो वयण हमारो ।
 जो कछु भूठ कहे, इन में तौ, भौकूं सूंस तुम्हारो । २। मे ।
 यह कुनार जगत की चेरी, याकौ संग निवारौ ।
 निरमल रूप अनूप अबाधित, आतम गुण संभारौ । ३। मे
 मेदि अज्ञान क्रोध दसम गुण, द्वादश गुण भी टारो ।
 अक्षय अबाध अनंत अनाश्रिन, 'राजविमल' पद सारो । ४। मे० ।

१० चरित्र सुख वर्णन द्वादश दोधक

पर गुण सै न्यारे रहै, निज गुण के आधीन ।
 चक्रवर्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन । १।
 इह नित इह पर वस्तु की, जिने परिख्या कीन ।
 चक्रवर्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन । २।
 जिणहुं निज निज ज्ञान सुं, ग्रहे परिख तत्व तीन ।
 चक्रवर्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन । ३।
 दस विध धरम धरइ सदा, शुद्ध ग्यांन परीवीन ।
 चक्रवर्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन । ४।
 समता सागर में सदा, मील रहे ज्युं मीन ।
 चक्रवर्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन । ५।
 आसा न धरै काहू को, न कबहूँ पराधीन ।
 चक्रवर्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन । ६।

स्व संयम पावस वसै, दहै प्रमाद दुख भीन ।
 चक्रवर्त्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन । ७।
 पुदगल जीव की सक्ति सब, जरत सप्त भय हीन ।
 चक्रवर्त्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन । ८।
 सप्तम गुण थांनक रहै, कीयो मोह मसकीन ।
 चक्रवर्त्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन । ९।
 क्षपकोपशम पयड़ी चढ़ै, आतमरस सुधीन ।
 चक्रवर्त्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन । १०।
 तूर्य ध्यांन ध्याते समे, कीयै करम सब छीन ।
 चक्रवर्त्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन । ११।
 देवचन्द्र वाचै सदा यह मुनिवर गुण वीन ।
 चक्रवर्त्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन । १२।
 (इति प्राकृत भाषया समस्या दोधक द्वादश, कृता पं० देवचंद्रेण)

११ हीयाली ।

- ॥ ढाल राय कुयारि वरि बाई भलो भरतार ए देशी ॥
 इक नारि रूपी रुयड़ी, जनमी ज साते तात ॥
 मलपती मानव भूलरइ, सगलां चित्त सुहात । १।
 कहो रे चतुर नर ए हीयाली सार ॥
 जो तुम्हे चतुर विचार ॥ क० ॥ आकणी ॥
 भरतार पासै नित रहै, बोलइ न भरता संग ।
 अवर पुरख आवी मिल्यां, वात करइ मन रंग ॥ २॥ क० ॥

दोई नेत्र पति सांम्हा सदा, देखै न पति-नो अंग ।
 वार्तालू जीहा विना, मोटा कान अभंग ॥३॥ क०॥
 विचि विचै उज्जल नर मनोहर, भरि साख छै हुंकार ।
 पर कांधइ न चढे कदे, चरण विना चलै सार ॥४॥ क०॥
 इक नार सुं जासु वैर छै, वेवै न शीत न ताप ।
 देवचंद्र भाखइ तेहनौ, मोटां सू मेलाप ॥५॥ क०॥

इति हियाली संपूर्ण ॥

(हियाली १ सुमतरंग १ दुर्गदास कृत सह । पत्र १)

(न० ३-५ को छोड़ सभी रचनायें शाखा भंडार
 बीकानेर से प्राप्त हुई हैं)

उदय स्वामित्व पंचाशिका

बंदित्तु वद्धमाणं, जिणं च गुरु-राजसार-पय-कमलं ।
 गर्दभाइएसु वुच्छं, समासओ उदय-सामित्तं ॥१॥
 धीणतिगं पुम इत्थी, नरतरि-सुर-निरय-आउगई पुव्वी ।
 वेउत्विदुगं जाई, चौ आईल्लाई सउरल-दुगं ॥२॥
 आहार-दुगं संघयण-छक्क, आगई आइल्ल पंच सुभखगई ।
 थावर सुभग चउक्कं, आयव-उज्जोय-जिए-उक्कं ॥३॥
 मीसंसम मिच्छ अणचउ, दुहग-इग बीय कसाय चउ-परघा ।
 वसास पय पयही, अवहरणिज्जा उदय - मज्जे ॥४॥
 धीणपण मणुय नवगं, एगिदिय जाइमाइ दुगतीसं ।
 बज्जित्तु नरय ओहो, छसयरि विणुमीस दुगमिच्छे ॥५॥

मिच्छ निरयाणुपुव्वी, विणु सासारो संमी मीस-गुरो ।
 अणचउ विणु (दु) गहीणा, सयरी पुण सयरि सम्मत्ते ॥६॥
 सम्मनिरयाणु-पुव्वी, सहिया विणुमीसमोह-धम्माए ।
 वंसादिसु सम्मत्ते, निरयणु-पुव्वीविणा उदओ ॥७॥
 तिरतिग विणुमरनवगं, विउव्वी आहार तित्थ दुगहीणा ।
 सगहिय सय ओहो, तिरिपण हिय मिच्छत्त सव्व बीए ॥८॥
 मीसादि सुसगन्नुवय, एगिंदिसो दयाइ पण गई ।
 वियलतिय चिय अडविणु, पणंदि तिरि ओह नवनवई ॥९॥
 मीस दुगहीण मिच्छे मिच्छ अपजत्त नाम विणु बीए ।
 अणतिरि-पुव्वी-विहूणा, मिसज्जामीसि इगनवई ॥१०॥
 सम्मतिरि पुव्वी सहिआ, अमीस सम्मे दुहग सग पुव्वी ।
 विणु देसे पज्जते, अणिच्छि अपजत्त सगनवई ॥११॥
 पुंमपज्ज नपुंविण, जोणिमई सुओ हत्थन्नवई ।
 अपजत्ते तिरि परघा, मीस दुचौ सुभग उज्जोयं ॥१२॥
 सुह असुहखगई दुस्सरं, पज्जत्तय थीण पणग सधयणा ।
 आगइ पण आदित्ता, पणिंदिमोहेसु वज्जेज्जा ॥१३॥
 मिच्छोहे एगत्तरि, भरे सुथावर दुगंच साहरणं ।
 आयव दुगतिरि पणदस, विणुदुसयं ओह मिच्छत्ते ॥१४॥
 मीस आहार दुगतित्थ, विणु सासणि अपज्ज मिच्छविणा ।
 अण चउत्तर पुव्वि विणा, समीसमीसेतु इगनवई ॥१५॥
 सम्मनरं पुव्विखेवे, अमीस सम्मेय दुहगसग-पुव्वी ।
 विणुदेसे सपमाए, इगसी पचक्ख तीय विणु ॥१६॥

अपमादीये सुओ हृज्ज, पज्जनरेवी अपज्ज विणुओहो ।
 इत्थीसुय आहार दुगे, दुवेद अपज्ज विणु ओहो ॥१७॥
 अपजत्तयतिरि समनर, अपज्ज नाणतूण च नरतियगं ।
 उदओत्तिरिति गुणु उदओ, देवेतिय थीण न पुंवेओ ॥१८॥
 नरतिरि निरयाण नवं, एगिंदिय चउदस च संठाणा ।
 पण अंतिम थावर चऊ, अपवदुहगति दुस्सरय ॥१९॥
 कुखगई वज्जिहु, सगसयरी ओहमास दुगदीण ।
 मिच्छे मिच्छं वाए, उणुसुर पुव्वी विणा तइए ॥२०॥
 मीस जुआ संमत्ते, सुर पुव्वी सम्मजू अमीस विणा ।
 देवात्थी विणुदेवी, पुरिस विणा सेसओ उच्च ॥२१॥
 एगिंदिएसु पुंपुण, सुर एगिंदिहिण चौजाई ।
 उरलोवंगय पणदस, सुभगति जिण चौग दुस्सरयं ॥२२॥
 तसजखगई विणुओहे, मिच्छे अस्सीइ थाण सुद्धमतिगं ।
 परघायव दुगमिच्छ, वज्जिय गुणसयरि सासाणो ॥२३॥
 विणुसाहरणं पुढवी, साहरणायव विहिण आऊसुं ।
 आयव विणुवण आयव, दुग साहरणं विणातेव ॥२४॥
 वाव तसेयवज्जं, एगिंदिसोदयाइपण पगई ।
 सगलिंदिये सुचिवलं, वज्जियं ओहोइ ओहुच्च ॥२५॥
 एगिंदिय ओहेपिव, ओराल उवग कुगइ छेवटुं ।
 तस्सदुस्सरय वज्जहु, थावर आयाव साहरण ॥२६॥
 सुद्धम वियलस्सेहो, मणवय जोनेसु नव सयं ओहो ।
 पुव्वी चउ अपजत्तं, एगिंदिओहे सुधजिका ॥२७॥

अणुभयवयणे वियत्तं, खविज्ज सुर तिरि नरय विउव्वि आहारे ।
 दुगचौ पुव्वी अपज्जा, वकिय सामन्न मुरत्तंगे ॥२८॥
 चरलोहे थीण तिगं, सुस्सर दुस्सर पसत्थ अपसत्था ।
 गई आयव पणदुग, सीसं विणु अपज्ज जुअमीसे ॥२॥
 देवोहे नाययुग, दुहग तिग कित्ति कुखगईहुड ।
 सदनीय खेवहु, सुर पुव्वी हीण वेउव्वे ॥३०॥
 परघादुगसर दुस्सर, यगई सगई पमीस विणुमीसे ।
 संघयण छक्क संठाण, पंच अंतिम ओराल दुग पमत्तोहे ॥३१॥
 आहारे न पुमित्थि, थीणनिय कुगई दुसरयं ।
 वज्जहु तम्मीसे पुण, सुसर सुगई अपरघा दुगं ॥३२॥
 थावर चउजाइ आयम, नारय तियं च तित्थं च ।
 आयवपुंथीवेओ, विणु पुरसे ओह सत्तसयं ॥३३॥
 इत्थिसुइत्थिखेवो, हारगदुगपुरसवेअविच्छेओ ।
 सढे सुरतियहारग, पुंदुगतित्थ विणा ओहो ॥३४॥
 अन्नाण दुगे ओहे, मिच्छेपगईय मिच्छ पञ्चइया ।
 विव्वभंगे चउजाई, थावर अणपुव्विहार दुग ॥३५॥
 मीस दुगायवतित्थं, विणुमिच्छोहे पि मिच्छ सासणि ।
 ताणतिगे समदिट्ठी, पञ्चइया आहार दुग सहिआ ॥३६॥
 कोहादिसु परवारस, कसायतित्थं विमुत्तुहव्व ।
 वेयकसायतिपनव, लोभे दश गुणि सुगुणठाणा ॥३७॥
 समई एत्थेएपुण, पम्मत्त जुग्गा इवन्ति इगसीई ।
 संढित्थो हाण दुग, विणुमण नाणेय परिहारे ॥३८॥

सुहमेदेसेमिच्छे, सासाणमिसे सुनीय गुण ओहो ।
 समजिण जुगा जिणजुत्त, सट्ठिपगइ अहक्खाए ॥ ३६ ॥
 अविरय किएहानीला, काउसु आहारतिथ विणु ओहो ।
 तेऊपम्हासु नारय, तियथावर जाइ चउत्तिथ ॥ ४७ ॥
 तिरि पुव्वी आयविणु, ओहुट्ट संयस जिण सुक्कोहे ।
 केवल दुग जोमीस, समओहदं सोहनाणव्व ॥ ४१ ॥
 जिणविणु अवरकुदसण, थावर दुग आयव चजाईतिग ।
 साहरण विण चक्खु, अवरकुसमा जावलीण जिणं ॥ ४२ ॥
 चउसय अविरय जुगा, हारग दुग जत्तवेअगे ओहो ।
 सजिणाअसम्म कोहा, खायगे ओह पगईओ ॥ ४३ ॥
 सुरविणु पुव्वीतियग, आहार दुगं च सम्म मोहविणा ।
 अक्समओहो सयगं, भव्वे ओहुव्व उवयगई ॥ ४४ ॥
 मिच्छुच्चय भव्वियरो, सत्रीसु अतिथजाइ चउभावं ।
 थावर दुग साहरणं, विणुतेरसयं ओह पुव्विणव्व ॥ ४५ ॥
 नरतियगं देवट्ठं, आहार दुगंसुभगतिग सुगइं ।
 संवयणागिइदसगं, आइल्लाणं जिणचउक्कं ॥ ४६ ॥
 वज्जितुससत्रीसुअ, ओहे मिच्छे असुहमथीणतिगं ।
 आयवपरधा दुगमिच्छा, दुस्सरकुगई विणावीए ॥ ४७ ॥
 पुव्वी विणु आहारे, ओहुव्वय थीण तिगविउन्विदुगं ।
 ओरालिय सत्तरसं, आयव परघादुगं मीसं ॥ ४८ ॥
 सुस्सर दुस्सरपत्तेय, साहारण खगइ दुगं विणाओहो ।
 अणहारे कम्मणए निय निय गुण संभवं भणह ॥ ४९ ॥

दयवु दीरणापर, मयमस्ताइ गुणसुं मणु-आळ ।
 वेअणिय दुग छेओ, अजोगि अणुदीरणो निच्चं ॥ ५० ॥
 सिरि “राजसार” पाया, वायगवर “नाणधम्म” सीसस्स ।
 “रायहंसस्स” सीसेण, “देवचंदेण” भणियमिणं ॥ ५१ ॥

॥ इति श्री उदय स्वामित्व पंचाशिका समाप्ता ॥

जयनगरीय भण्डारस्थ पुस्तिकायाः प्रतिलिपिकृता मुनिविनय
 सागरेण विक्रमाब्दे २००२ अ.श्विन शुक्ला पूर्णिमा ।

